॥

॥ अथ षट् कल्याणक निर्णयः ॥

अब श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोका निर्णय करके तत्वाभिलाषी पुरुषोको दिखाताहूं भी जैसे हरवर्षपर्युषणाके व्याख्यान में वर्तमानिक श्रीतपगच्छके अनेक महाशय अधिकमासकी गिनती निषेध करनेकेलिये उत्सूत्रभाषणोसे कुयुक्तियो करके भोलेजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका परिश्रम करतेहुवे संसारवृद्धिका भय नही रखतेहैं और मिथ्या बातको सत्य ठहरानेके लिये खंडन मंडन करके वादविवादसे धर्मकार्योंमें विघ्नकारक झगडा बढाकर कर्मबंधकेहेतु करतेहै तैसेही श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकोका निषेध करनेके लियेभी पंचांगीके अनेक शास्त्रोके पाठोको प्रत्यक्षपने उत्थापन करके उत्सूत्र भाषणोसे कुयुक्तियोका संग्रहकरके बालजीवोको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कार्यकरके संसारवृद्धिकाहेतु भूत महान् अनर्थ करतेहैं और धर्मकार्योंमें विघ्नकारक खंडनमंडन करके अपनी कल्पित बातको जमानेकेलिये पर्युषणाके व्याख्यानमें शासन नायक श्रीवीरप्रभुकीखास अवज्ञाकरके शासनप्रेमियोके दिलमें बडा रंज उत्पन्नकरतेहुये अपना तथा अपने गच्छकदाग्रहियोका सम्यक्त्वको नष्टकरनेका उद्यमकरतेहैं जिन्होंके उपगारकेलिये तथा भव्यजीवोको सत्यबातमें निःसंदेह होनेके लिये और श्रीजिनाज्ञा इच्छुक तत्वाभिलाषी पुरुषोको सत्या सत्यका निर्णय दिखानेके लिये पंचांगीके अनेक शास्त्रप्रमाणपूर्वक न्यायकी युक्तियोके अनुसार श्रीवीरप्रभुके छ

कल्याणकों संबंधी संक्षिप्तसे इसजगह लिखके दिखाताहूं जिसमें प्रथमतो इसीहीग्रन्थके पृष्ठ २४१ वेमें न्यायरत्नजीको तरफके (श्रीवीरप्रभुके कल्यणकोंके) लेख संबंधो जो सूचना करीथी जिसका निर्णय यहां दिखाताहू सो न्यायरत्न विद्यासागरकाविशेषणको धारणकरनेवाले श्रीशांतिविजयजीने अपनेगच्छका पक्षपातसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें सन् १९०८ के सप्टेम्बरमासकी२७ वीं तारीख वारसंवत् २४३४ आश्विनशुदी २ का जैनपत्रके २४ वा अंकके चौथेपृष्ठमें कल्याणक संबंधी जो लेख लिखा है सो नीचेमुजब जानो:—

[पंचाशक सूत्रके मूलपाठमें पांच कल्याणक तीर्थंकर महावीर स्वामीके फरमाये है, पंचाशक सूत्र पूर्वधारी हरिभद्रसूरिजीका बनाया हुवा है और अभयदेव–सूरिजीने उसपर टीका किइ है खरतर गछवालोंको पुछना चाहिये, गर्भापहारको अगर कल्याणिक मानते हो अछेरा किसको मानते हो ? दश अछेरेमें गर्भापहारको एकतरहका अछेरा कहा फिर कल्याणक कैसे हो सकता है:—पांच कल्याणककी खुबीका पाठ पंचाशक सूत्रका नीचे मुजब है ।

आसाढ सुद्धछठी–चेंतहसुद्धतेरसीचेव, मगसिरकिन्हदसमी वइसाहेसुद्ध दसमीय, कत्तियकिन्हे चरिमा–गब्भाइदिणा जहक्कमंएते, हत्थुत्तर जोएणं–चउरोतहसातिणाचरिमे ॥ यहपाठपूर्वधारी आचार्यमहाराज हरिभद्रसूरिजीका फरमाया हुवा है। अब अभयदेव सूरिजीकी फरमाइहुइ टीका का पाठ सुनिये (व्याख्या) आषाढमासे शुक्लपक्षस्य षष्टि तिथिरेकं दिनंएवचैत्रमासेतथेति समुच्चये शुक्ल त्रयोदश्येवेति द्वितीयं, चेत्य वधारणे–तथा मार्गशोर्षकृष्ण दशमीति–तृती-

र्य, वैशाख शुद्ध दशमीति चतुर्थं च शब्दःसमुच्चयार्थः—कार्तिक कृष्णेषमर्जा पचदशीति पचम-एतानि इति आह-गर्भादिदिनानि १ गर्भ २ जन्म ३ निक्रमण ४ ज्ञान ५ निर्वाणदिवसा यथाक्रम क्रमेणैव-त न्यनतरोक्ता न्येपा च मध्ये हस्तोत्तरयोगेन हस्तउत्तरोयासा हस्तोपलक्षिता वा उत्तरा हस्तोत्तरा फाल्गुनन्येताभिःयोग सबधश्चेति हस्तोत्तरा योगस्तेन कणभुतेन चत्वारि आद्यानिदिनानि भवति तथेतिसमुच्चये स्वातिना स्वातिनक्षत्रेणयुक्तश्चरमोति चर्मकल्याणिक दिन, इति गाथा द्वयार्थ—देखिये ! इसमें अभयदेवसूरिजीने खास तीर्थंकर महावीरस्वामी पांच कल्याणक फरमाये अगर जैन शास्त्रोंमें छ कल्याणक होते तो नव अगशास्त्रकी टीका करने वाले महाराज अभयदेवसूरिजी खुद पांच कल्याणक क्यों बयान करते]

न्यायरत्नजी श्रीशातिविजयजी के उपरकेलेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाताहू कि-हेसज्जन पुरुषोदेखोन्याय रत्नजीने उपरकेलेखमें सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें बालजीवोको भ्रममें गेरनेके लिये पूर्वा परके सविस्तारवाले पाठको छोड़कर विनासबधका अधूरा पाठ भोलेजीवोको दिखाकर श्रीवीरप्रभुके पाचकल्याणकोंको स्थापन करके अच्छेरेकी भ्रांतिसे छ कल्याणकों का निषेध किया सो उत्सूत्रभाषणरूपहै क्योंकि अच्छेरा है तोभी कल्याणकत्वमें गिनकरके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक श्रीतीर्थंकर गणधर-पूर्वधरादि महाराजोने अनेकशास्त्रोंमें खुलासापूर्वक कहेहैं सोही दिखाताहू-यथा;—

श्रीसीमन्धरस्वामीजी भगवान्ने श्रीआचारागजी सूत्रकी

चूलिकामें १, श्रीशीलांगाचार्यजी कृत श्रीआचारांगजी सूत्रके चूलिकाकी बृहद्वृत्तिमें २, श्रीजिनहंस सूरिजीकृत तद् दीपिका वृत्तिमें ३, श्रीगणधर महाराजकृत श्रीस्थानांगजीसूत्रमें ४, श्रीखरतरगच्छनायक श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीकृत श्रीस्थानांगजीकीवृत्तिमें ५, तथा श्रीपूर्वाचार्यजीकृत दूसरी वृत्तिमें ६, श्रीभद्रबाहुस्वामीजीकृत श्रीदशाश्रुतस्कंधमें ७, श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्यजीकृत श्रीदशाश्रुतस्कंधकी (पर्युषणाकल्प की) चूर्णमें ८, श्रीब्रह्मर्षिजीकृत उपरोक्त सूत्रकी वृत्तिमें ९ श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीआवश्यकसूत्रकी निर्युक्तिमें १०, श्रीजिनदासगणिमहत्तराचार्यजी कृत श्रीआवश्यक चूर्णिमें ११, श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत तत्सूत्रकी बृहद्वृत्तिमें १२ तथा श्रीतिलकाचार्यजीकृत लघुवृत्तिमें १३, श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रमें १४, श्रीजैनतत्वादर्शके बारहवें परिच्छेदमें श्रीतपगच्छकी पट्टावली लिखी है जिसमें ४० वें पट्टमें श्रीनेमिचंद्रसूरिजीको लिखे हैं जिन्होंके शिष्य श्रीमुनिचंद्रसूरिजीहुए इनकेशिष्य श्रीरत्नसिंहसूरिजी हुवे और इनके शिष्य श्रीविनयचंद्रजी कृत श्रीकल्पसूत्रके निरुक्तमें १५, श्रीचंद्रगच्छके श्रीदेवसेनगणिजीके शिष्य श्रीपृथ्वीचंद्रजीकृत श्रीकल्पसूत्रके टिप्पणमें १६, श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजीकृत श्रीकल्पसूत्रकी संदेह विषौषधि वृत्तिमें १७, तथा श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुम कलिका वृत्तिमें १८, और श्रीसमयसुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्पलता वृत्तिमें १९, मलधारी श्रीहेमचंद्रसूरिजीके शिष्य श्री विजयसिंहसूरिजी कृत श्रीकल्पावबोधिनी वृत्तिमें २१, श्री तपगच्छके श्रीकुलमंडनसूरिजीकृत श्रीकल्पावचूरिमें २२, तथा

श्रीसोमसुंदर सूरिजीकृत श्रीकल्पांतर वाच्यमें २३-तथा प्रसिद्ध तीनो महाशयोकृत (श्रीकल्पकिरणावली दीपिका सुखबोधिका इन) तीनोवृत्तिओमें २६, श्रीअ चलगच्छके श्रीउदयसागरजी कृत श्रीकल्पावचूरिरूप वृत्तिमें २७, कलिकाल सर्वज्ञ बिरुदधारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत श्रीत्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रके दशवा पर्व श्रीवीरचरित्रमें २८, श्रीचंद्रतिलकोपाध्यायजी कृत श्रीअभयकुमार चरित्रमें २९, श्रीपूर्वाचार्योंके-बनाये श्रीवीरप्रभुके प्राकृत तीनो चरित्रोमें ३२, श्रीजयतिलक सूरिजी कृत श्रीसुलसाचरित्रमें ३३, श्रीजिनपति सूरिजी कृत श्रीसंघपट्टक बृहद्वृत्तिमें ३४, तथा श्रीसमाचारीमें ३५, श्रीसमयसुंदरजी कृत श्रीसमाचारीशतकमें ३६, श्रीतपगच्छ के श्रीपूर्वाचार्यों के बनाये श्रीकल्पसूत्रके चारो बालावबोधोमें ४०, श्रीसंघविजयजी कृत श्रीकल्पप्रदीपिका नामा वृत्ति में ४१, श्रीसहजकीर्तिजीकृत श्रीकल्पमंजरीवृत्ति में ४२, श्री हीरविजय सूरिजी के संतानिय श्री शांतिचंद्रगणिजी कृत श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में ४३, इत्यादि अनेक शास्त्रोमें श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने तथा श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्वाचार्योंने श्रीवीर-प्रभुके छ कल्याणको की खुलासा पूर्वक व्याख्याकरी हैं सो छ कल्याणक संबंधी सब पाठ यहां लिखनेसे बहुत विस्तार हो जावेगा इसलिये थोडेसे शास्त्रोके पाठ इस जगह पाठक गणको निःसंदेह होनेके लिये लिखकर दिखाताहूं।

१-श्रीचौदहपूर्वधर श्रुत केवलि श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रकी आदिमेंही श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोकी व्याख्याकी है जिसको श्रीखरतरगच्छ वाले तथा श्रीतपग-

च्छादि वाले सब कोई वार्षिक पर्व श्रीपर्युषणामें वांचते हैं सो पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच ह-त्थुत्तरे होत्था, तंजहा; हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भंवक्कते ॥१॥ हत्थुत्तराहिं गब्भाओगब्भं साहरिए ॥२॥ हत्थुत्तराहिं जा-ए ॥३॥ हत्थुत्तराहिं मुंडेभवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥४॥ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए नि-रावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल वर नाण दंसणे समुप्पन्ने ॥५॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवं ॥६॥

भावार्थः—तिसकाल तिस समयके विषे श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीके पांच कल्याणक हस्तोतरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्रमें हुवे वही दिखाते है—दशमें देवलोकके पुष्पोतर नामा विमानसे चवकरके जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें माहण कुंड ग्रामके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानंदानामा स्त्रीकीकूक्षिमें हस्तोतरा नक्षत्रमें आषाढशुदी ६ को उत्पन्न हुवे सो प्रथम च्यवन कल्याणक ॥ तथा हस्तोत्तरानक्षत्रमें इंद्रकी आज्ञासे हरिनैगमेषिदेवने देवानंदाकी कूक्षिसे संहरण करके क्षत्रियकुंड नगरके सिद्धार्थराजाकी त्रिशला देवीपटराणीकी कूक्षिमें आश्विन वदी १३ को स्थापित किये सो गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन कल्याणक॥ तथा हस्तोतरा नक्षत्रमें चैत्रसुदी १३ को त्रिशला देवीकी कुक्षिसे जन्महुवा सो तीसरा जन्म कल्याणक ॥ तथा हस्तोत्तरा नक्षत्रमें मार्गशीर्ष सुदी १० के दिन गृहस्थावास छोड़कर द्रव्यभावसे मुंडहुवे अणगार पणा-पाये अर्थात् श्रीवीरप्रभूने दीक्षाली सो चौथा दीक्षा कल्या-णक ॥ तथा हस्तोत्तरा नक्षत्रमें वैशाख शुदी १३ के दिन अनन्त

अर्थके विषयरूप अनु तर प्रधान निर्व्याघात सर्वप्रकारके आव-रण रहित सपूर्ण वर (प्रधान) केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्तहुआ सो पचम ज्ञान कल्याणक ॥ और स्वाति नक्षत्रमे कार्तिक अमावस्याको श्रीवीरप्रभु निर्वाण पाये अर्थात् मोक्ष पधारे सो छठा मोक्ष कल्याणक ॥

अब देखिये चौदहपूर्वधर श्रुत केवली श्रीभद्रबाहुस्वा-मीजीने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक खुलासा पूर्वक कहे हैं जिसको नही मानने तथा मानने वालोंको दूषित ठहराना-सोतो मिथ्यात्वके क रणसे भोलेजीवोंको सत्यबातपरसे श्रद्धा भ्रष्टकरके मूलमत्ररूपशास्त्र पाठको प्रत्यक्ष उत्थापन करना सो उत्सूत्र भाषण करनेवालोंही का काम है।

२–तथा श्रीबडगच्छके श्रीविनयचद्रसूरिजी कृत श्रीकल्प-सूत्रके निरुक्त का छ कल्याणक सम्बन्धी पाठ नीचे मुजब है यथा–

तेण कालेण मित्यादि,ते पत्ति प्राकृत शैलीवशात् तस्मिन् काले, तस्मिन् समये,य पूर्व तीर्थकरै श्री वीरस्य च्यवनादि हेतुत्वात कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थंकर च्यवनं स एव समय उच्यते। समय कालनिर्द्धारणार्थो यत कालो वर्णोपि, तथा हस्तउत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यो, बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्ष तस्या विभोश्च्यवन, गर्भाद्गर्भे सक्रांति, जन्म, व्रतं, केवल, चाभवत्, निर्वृति स्वातौ, इति ॥

३–और श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीकल्प-सूत्रकी सन्देहविषौषधि वृत्तिका पाठ नीचे मुजब जानो यथा;–

वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वात् प्रथम श्रीवर्द्धमानस्वामिनश्चरितमाहु ॥ श्रीभद्रबाहु स्वामी पादा. ॥

तेणं कालेणमित्यादि । तेणंति प्राकृत शैली वशात् तस्मिन-काले वर्त्तमानावसर्पिण्य श्चतुर्थारक लक्षणे, एवं तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानंदायाः कुक्षौदशम देवलोकगत पुष्पोत्तर विमानादवतीर्णः,णंशब्दो वाक्यालंकारे, अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एवं हेतौवा । ततस्तेन कालेन तेनच समयेन हेतुभूतेनेतिव्याख्येय, अथ तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वादत्र किं परा मृश्यते, इतिचेत् उच्यते । यौका-लसमयौ भगवता श्रीऋषभस्वामिनाऽन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्ध-मानस्य षण्णां च्यवनादिनां कल्याणकानां हेतुत्वेन कथितौ तावेवेतिब्रूमः । श्रमणस्तपस्वी भगवान् समग्रैश्वर्ययुक्तःमहावीरः कर्म्म शत्रुविजयादन्वर्थनामा चरमजिनः पंच हत्थुत्तरेति,हस्त-स्यैवोत्तरस्यांदिशि वर्त्तमानत्वात् हस्तोत्तरा, हस्तउत्तरोयामां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः । बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं, पंचसु च्यवन,गर्भापहार,जन्म,दीक्षा,ज्ञानकल्याणकेषु,हस्तो-त्तरा यस्य स,तथा च्यवनादीनि पंचोत्तराफाल्गुनी जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ संभूतत्वादिति भावः, होत्थति अभवन्

४–और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमंडनसूरिजी कृत श्रीकल्पा-वचूरिकापाठ नीचे मुजब जानो यथा:—

वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासान्नोपकारित्वात्प्रथमं श्रीवर्द्ध-मानस्वामिनश्चरितमूचुः।श्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः। तेणंकाले-णमित्यादि तेणंति प्राकृतशैलीवशात् तस्मिन्काले वर्त्तमाना-वसर्पिण्या श्चतुर्थारक लक्षणे, एवं, तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानन्दायाःकुक्षौदशमदेवलोकगतपुष्पोत्तर-विमानादवतीर्णः । णं शब्दोवाक्यालंकारे । अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एवं हेतौवा, ततस्तेन कालेन तेनच समये

न हेतुभूतेनेति व्याख्येयं। अथ तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वादत्र किं परामृश्यते, इतिचेत् उच्यते। यौकालसमयौ भगवताश्रीऋषभदेवस्वामीना अन्यैश्च तीर्थंकरै श्रीवर्द्धमानस्य पश्चां च्यवनादीनां कल्याणकाना हेतुत्वेन कथितौ तावेवेति ब्रूम.। श्रमणस्तपस्वी समग्रैश्वर्ययुक्त. भगवान् महावीर· कर्म्मशत्रु विजयादन्वर्थनामा चरमजिन। पचहत्थुत्तरेत्ति, हस्तस्यैवोत्तरस्या दिशिवर्त्तमानत्वात् हस्तोत्तरा, हस्तउत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्य। बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, पचसु च्यवन १, गर्भापहार २, जन्म ३, दीक्षा ४, ज्ञान ५ कल्याणकेषु. हस्तोत्तरा यस्य स। तथा च्यवनादीनि पचोत्तराफाल्गुनीषु जातानि। निर्वाणस्य स्वाती। स जातत्वादिति भाव इत्यत्ति अभवन्॥

५—मौरत्नी श्रीतपगच्छके श्रीसोमसुन्दरसूरिजी वा अन्याचार्यजी कृत श्रीकल्पान्तरवाच्यका पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

तेणकालेणमित्यादि, तेणं त्ति—प्राकृत शैलीवशात् तस्मिन् काले चतुर्थारकलक्षणे, तस्मिन् समये,यत्रासौ श्रमणो भगवान् महावीर देवानन्दाया. कुक्षौ दशमदेवलोकगत प्रधान पुष्पोत्तर विमानादवतीर्ण.॥ पचकल्याणकानि उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्रे जातानि, तद्यथा,श्रीवर्द्धमानस्वामी हस्तोत्तराया उत्तरा फाल्गुन्या च्युत आगत समुत्पन्न।१। हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गुन्या देवानन्दाया. गर्भात् कुक्षे. शक्रादेशात् त्रिशला कुक्षौ संक्रामित।२। हस्तोत्तराया उत्तरा फाल्गुन्या भगवान् जात,।३। हस्तोत्तराया उत्तराफाल्गुन्या द्रव्यभाव मुण्डितो भूत्वा, आगारात् गृहवासात् निष्क्रम्य अनगारितां

साधुतां प्रव्रजितः प्रकर्षेणगतः ।४। हस्तोत्तरायां उत्तरा फाल्गु-न्यां अनंतं अनंतार्थ विषयत्वात्, अनुत्तमं सर्वोत्तमत्वात्, निर्व्याघात कटकुड्यादिष्वप्रतिहततत्वात्, निरावरणं क्षायिकत्वात्, कृत्स्नं सकलार्थग्राहकत्वात्, प्रतिपूर्णं सकलं स्वांश समन्वितंपूर्णचंद्रमंडलमिव, केवलमसहायं, अतएव वर ज्ञान दर्शनं चेति । तत्र ज्ञानं विशेषावबोधकरूप, दर्शनं सामान्यावबोधकरूपं, समुत्पन्नं, समुत्पन्ने ।५। स्वाति नक्षत्रेण परिनिर्वृतः निर्वाण प्राप्तो भगवान् मोक्षं गत इत्यर्थः ।६। एतानि भगवतो वर्द्धमानस्य षट्कल्याणकानि कथितानि ॥

६–औरभी श्रीतपगच्छके श्रीविनयविजयजीकृत्त श्रीकल्पसूत्र की सुखबोधिका वृत्तिका पाठ नीचे मुजबहै–यथा,–

तत्र प्रथमाधिकारे जिनचरित्रेषु आसन्नोपकारितया प्रथमं श्रीवीरचरितं वर्णयन्तः, श्रीभद्रबाहु स्वामिनो जघन्य मध्यम वाचनात्मकं प्रथमं सूत्रंरचयंति,'तेणंकालेणमित्यादितः परिनिव्वुडे भयवमिति पर्यन्तं' तेणं कालेणंति, तस्मिन्काले अवसर्पिणी चतुर्थारक पर्यंत लक्षणे, णंइति सर्वत्र वाक्यालंकारार्थः । तेणं समयेणंत्ति,विशिष्टः कालविभागः समयो यः श्रीवर्द्धमानस्वामिनः चस्तां च्यवनादि वस्तूनां कारणं वभूव, तस्मिन् समये, समणे भगवं महावीरेत्ति, श्रमणस्तपोनिरतः भगवंति भगवान्, अर्कयोनि वर्जित द्वादश भगशब्दार्थवान्, यदाहुः ॥ भगोर्क ज्ञान महात्म्यं, यशो वैराग्य मुक्तिषु ॥

रूप वीर्य प्रयत्नेच्छा, श्रीधर्म्मैश्वर्ययोनिषु ॥ १ ॥

अत्र आद्यंत्यौ अर्थौ वर्जनीयौ, ननु अंत्योर्थस्तु वर्ज्यं एव, परं अर्कःकथं वर्ज्यः सत्यं उपमानतयाअर्को भवति परं वत्प्रत्ययांतत्वेन अर्कवान् इत्यर्थो न लगतीति वर्जितः ।

महावीरेत्ति,कर्मवैरि पराभव समर्थः,श्रीवर्द्धमान स्वामीत्यर्थः स, पञ्चहत्थुत्तरेत्ति, हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्य गणनया ताभ्यो हस्तस्य उत्तरत्वात् ता, पञ्चसु स्थानेषु यस्य स पञ्च हस्तोत्तरो भगवान् होत्थत्ति अभवत् ॥

पञ्च हस्तोत्तरत्व भगवतो मध्यम वाचनया दर्शयति ॥ हत्थुत्तराहिं चुएत्ति, उत्तरा फाल्गुनीषु च्युत. प्राणताभिधान दशम देवलोकात्, चइत्तागब्भ वक्कतेत्ति, च्युत्वागर्भे उत्पन्न. । १ । हत्थुत्तराहिं गब्भाओगब्भसाहरिएत्ति, उत्तरा फाल्गुनीषु गर्भात् गर्भं सहृत., देवा नदागर्भात्त्रिशलागर्भे मुक्त इत्यर्थः ।२। हत्थुत्तराहिं जाएत्ति, उत्तराफाल्गुनीषु जातः ।३। हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइएत्ति, उत्तराफाल्गुनीषु मुण्डोभूत्वा, तत्रद्रव्यतो मुण्ड केशलुंचनेन, भावतो मुंडो रागद्वेषाभावेन, आगारात् गृहात् निष्क्रम्येति शेष अनगारितां साधुतां, पव्वइएत्ति, प्रतिपन्न ।४। तथा उत्तराफाल्गुनीषु।अणंतेत्ति, अनन्तवस्तु विषय, अनुत्तरेत्ति, अनुपम, निव्वाघाएत्ति, निर्व्याघात भित्तिकटादिभिरस्खलित, निरावरणेत्ति, समस्तावरणरहित, कसिणेत्ति, कृत्स्न सर्व पर्यायोपेत, सर्ववस्तू ज्ञापक, पडिपुणेति, परिपूर्णं सर्वावयव सपन्न, एवं विध यत् वर प्रधानं केवलज्ञानं केवल दर्शन च तत् समुपन्नेत्ति, उत्पन्न उत्तरा फाल्गुनीषु प्राप्त ।५। साइणापरिनिव्वुडे भयवं इति स्वाति नक्षत्रे मोक्षगतो भगवान् ॥६॥

३—और भी श्रीपार्श्वचन्द्रगच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत श्रीदशाश्रुत स्कंध सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है.—

वर्तमान तीर्थाधिपतित्वेनासन्नोपकारित्वात् आदौ

श्रीवीरचरितमुच्यते तच्चसूत्रानुगमेसति भवति तच्चेदं, तेणं कालेणं इत्यादि, तेणत्ति प्राकृत शैली वशात् तस्मिन् काले वर्तमानावसर्पिण्याश्चतुर्थारकलक्षणे, एवं तस्मिन् समये तद्विशेषे, यत्रासौ भगवान् देवानंदायाः कुक्षौ दशमदेवलोकागत पुष्पोत्तर नाम्नो विमानादवतीर्णः, णमिति शब्दो वाक्यालङ्कारार्थो, यथा इमाणं पुढवी इत्यादा विति द्वितीयोपिणं शब्दो एवमेव, अथवा सप्तम्यर्थे आर्षत्वात् तृतीया एव हेतौवा, ततस्तेन कालेन तेन च समयेन हेतु भूते नेतिव्याख्येयम्, अथतच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वादत्र किं परामृश्यते, इतिचेत्, उच्यते, यौकालसमयौ भगवता श्रीऋषभस्वामिना अन्यैश्च तीर्थंकरैः श्रीवर्द्धमानस्य षण्णां च्यवनादीना हेतुत्वेन कथितौ तावेवेतिभ्रमः, श्रमणस्तपस्वी भगवान् समग्रैश्वर्यादिगुणयुक्तो महावीरः कर्मशत्रु जयाद न्वर्थनामा चरम जिनः, पंच हत्थुत्तरेत्ति हस्तस्यैवोत्तरस्यां दिशिवर्तमानत्वात्हस्तोत्तरा,हस्तउतरोयासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफलगुन्यः, बहुवचनं बहुकल्याणकापेक्षं,पंचसु च्यवन, गर्भापहार, जन्म, दीक्षा, ज्ञान कल्याणकेषु, हस्तोत्तरायस्य स तथा च्यवनादीनि पंचोत्तरा फाल्गुनीषु जातानि,निर्वाणस्यच स्वातौ संभूतत्वा दितिभावः होत्थति अभवन् ॥

अब उपरोक्त चारोंही गच्छोंके विद्वानों कृत ६ पाठों का संक्षिप्त भावार्थः—कहतेहैं सो पर्वाधिराज श्रीपर्युषण पर्वमें मांगलिक के लिये श्रीजिनेश्वर महाराजोंके चरित्र कथन करने में आते हैं जिसमें प्रथम वर्तमान शासन नायक नजीक उपकारी जानकर श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रकी आदिमेंही, तेणं कालेणं तेणं समयेणं इत्यादि,

व्याख्यासे जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवर्द्ध-मान स्वामिका चरित्र कथन कियाहै सोही यहां दिखाते हैं कि—तिसकालके विषे, याने—वर्त्तमान अवसर्पिणीके चोथे आरेमें, ऐसेही तिस समयके विषे सो समय कालमें विशेष भेद नहीं है और इसमें 'तेण' शब्दके ण शब्द को प्राकृत शैली मुजब वाक्यालङ्कारमें शोभा रूप समझना अथवा सप्तमीके अर्थमें, या—आर्षत्वात् तृतीया, अर्थात् चौदह पूर्वधरश्रुतके-वलि महाराजकी सूत्र रचना होनेसे तृतीयाका भी अर्थ किया जाता है इसलिये तिसकाल और तिस समयको कहा है सो हेतु भूत करके है ऐसा समझना और 'तत्' 'यत्' इन दोनो शब्दोका पूर्वापरमें अनेरा नित्य नियम है सो 'तत्, शब्दकी तो ऊपरमें व्याख्या होगईहै इसलिये अब यहा 'यत्' शब्दकी व्याख्या करते हैं कि जिसकाल और जिस समयको भगवान् श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराजोंने श्रीवर्द्धमान स्वामीके च्यवनादि छ कल्याणकोके होनेका हेतु रूप कहा है उसीकाल और उसी समयको यहा भी कहाहै सो उसीकाल और उसी समयमें 'समणे भगव महावीरे' सो श्रमण भगवान् महावीर, याने-सर्वप्रकारके कर्मोंको क्षय करनेके लिये हमेशा तपश्चर्या करने वाले, तथा सर्व प्रकारके ऐश्वर्यसें युक्त, और भगवान् सो 'भग' शब्दके ज्ञान महात्म्यादि ऊपरके श्लोकमें कहे हुये १२ अर्थ गुणयुक्त भगवान् श्रीमहावीर-स्वामी सो कर्मरूपी शत्रुओके विजय करने वाले होनेसे गुण निष्पन्न सार्थक नामके चरम तीर्थंकर हुएहैं इनहीं महा-राजके पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमे हुए हैं, याने हस्त नक्षत्रहीहै उत्तरमे जिसके ऐसा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र समझना

क्योंकि चौथे आरेमें जैनपञ्चाङ्ग की रीति मुजब युगका ३७ वा महिना अर्थात् तीसरा अभिवर्द्धितसंवत्सरमें आषाढ़ सुदी ६ के दिन सूर्यके उदयमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था सो सूर्योदयसे ३२। घटीका पर्यंत व्यतीत होजाने बाद रात्रिको भगवान्के च्यवन समय हस्तनक्षत्र आगया था इसलिये हस्तोत्तरा कहा गया परन्तु सूर्योदयके व्यवहारमे उत्तराफाल्गुनी कहा जाता है इसलिये व्याख्याकारोंने हस्तोत्तराके तात्पर्यार्थसे उत्तराफाल्गुनीके नामसे खुलासा पूर्वक व्याख्या करी है सो 'उत्तराफाल्गुन्यः' इससें बहुवचन है सो बहुत कल्याणकोंकी अपेक्षासे दिया गया है, सोही बहुत कल्याणक दिखातेहै—प्रथम च्यवन, तथा गर्भापहाररूप दूसरा च्यवन, तीसरा जन्म, चौथा दीक्षा, पांचवा ज्ञान इन, पांचों कल्याणकोंमें हस्तोत्तरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र समझना और छठा स्वातिनक्षत्रमें भगवान्का मोक्ष पधारना हुआ यही श्रीवर्द्धमान स्वामिजीके छ कल्याणक कहेजातेहै सो विवेक बुद्धिसे समझने चाहिये।

और उपरकी व्याख्याओंके पाठोंमें श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छः कल्याणकोंकी खुलासा पूर्वकव्याख्याकरीहै जिसमें श्रीविनय विजयजीने च्यवनादि छःकल्याणकोंके शब्दकी जगह पर च्यवनादि छः वस्तु लिखी, तथा उपरकी व्याख्याओंमें च्यवन गर्भापहारादिसे केवल पर्यंत पांच कल्याणकों को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें कहेहैं उसी जगह परभी विनय विजयजीने च्यवन गर्भापहारादिसे केवल पर्यंत पांच कल्याणकोंके शब्दकी जगह पर पांच स्थान लिखेहैं सो उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें श्रीवीरप्रभुके पांच वस्तु हुइ कहो, या,

पांच स्थान हुये कहो अथवा पाच कल्याणक हुये कहो, इन तीनो शब्दों का तात्पर्यार्थ एकही होताहै इस बातका विशेष निर्णय आगे करनेमें आवेगा ॥

और स्वाति नक्षत्रमें भगवान् का मोक्षहुवा इस तरह से गिनती मुजब श्रीवीरप्रभु के छः कल्याणक पचागीके अनेक शास्त्रानुसार प्रत्यक्षपने सिद्धहै इस लिये छ कल्याणको को निषेध करने वाले गच्छकदाग्रही उत्सूत्र भाषणसे और कुयुक्तियोसे बाल जीवो की सत्य बातपरसे श्रद्धाभ्रष्ट करके मिथ्यात्व बढाते हुये संसार वृद्धिका हेतु करतेहै सो न्याय दृष्टि से विवेकी पुरुषों को विचार करना चाहिये, तथा गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेके लिये कुयुक्तियो करके भोले जीवोको भ्रमानेमें आतेहै जिसका भी निर्णय आगे करनेमे आवेगा ।

और गणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामीजीने श्रीस्थानांगजी सूत्रके पचमें स्थानाग के प्रथम उद्देशमे श्रीपद्म प्रभुजी श्रीसुविधिनाथजी श्रीशीतलनाथजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजो के च्यवनादि पाच पांच कल्यणको की व्याख्या करीहै उसीमें भी श्रीवीरप्रभुके कल्याणकाधिकारे गर्भापहार को कल्याणकत्वपनेमें खुलासा पूर्वक गिनाहै जिसका भी पाठ यहां पाठक वर्गको नि.सदेह होने के लिये दिखाताहू, सो सूत्र वृत्ति सहित (जैनागम सग्रह के भाग तीसरेमें) छपाहुवा श्रीस्थानांगजी सूत्र के पृष्ठ ३६३ । ३६४ का पाठ नीचे मुजब जानो यथा,—

पउमप्पभेणं अरहा पंचचित्ते होत्था, तजहा, चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भवक्कते, चित्ताहिं जाए, चित्ताहिं मुंडे

भविं१ त अगाराओ अणगारियं पव्वइए, चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल वर नाण दंसणे समुप्पन्ने, चित्ताहिं परिनिव्वुए।१। पुप्फदंते णं अरहा पंच मूले होत्था, मूलेणं चुण चइत्ता गब्भंवक्कंते, एवं चेव एएणं अभिलावेणं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुणहोइ पुप्फदंतस्स। पुव्वासाढा सीयलस्स, उत्तरा विमलस्स भद्दवया।।१।। रेवइय अणंतजिणो, पूसो धम्मस्स–संतिणो भरणी। कुंथुस्स कत्तियाओ, अरस्स तहा रेवईओय।।२।। मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि नमिणो तह नेमिणो चित्ता। पासस्स विसाहाओ, पंच हत्थुत्तरे वीरो।।३।। समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था, तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुएचइत्ता गब्भंवक्कंते, हत्थुत्ताराहिं गब्भाओ गब्भं साहरइए, हत्थुत्ताराहिं जाए, हत्थुत्ताराहिं मुंडेभविता जाव पव्वइए, हत्थुत्ताराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवल वर नाण दंसणे समुप्पन्ने, ।।इति।।

भावार्थः–छठे श्रीपद्मप्रभुजी अरिहंतके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए सो कहतेहै। चित्रा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमें उत्पन्नहुवे, चित्रा नत्रमें जन्म लिया, चित्रा नक्षत्रमें गृहस्थावास त्यागके अणगार पणापाये दीक्षाली, चित्रा नक्षत्रमें अनन्त, सर्वसे उत्तम उत्कृष्ट, व्याघात रहित, आवरणरहित, कृत्स्नं-सर्वअर्थके जानने वाला, प्रतिपूर्ण सम्पूर्ण चंद्रमंडलकीतरह प्रकाशमान, प्रधान केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुवा, चित्रा नक्षत्रमें मोक्ष पधारे १, तथा नवमें श्रीसुविधिनाथजी अरिहंतके पांच कल्याणक मूल नक्षत्र से हुए, सो मूल नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमें

उत्पन्न हुए॥ इसी तरहसे श्रीपद्मप्रभुजीके पांच कल्याणकों के मूत्र सुनकरही श्रीसुविधिनाथजी आदि सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोकी खुलासा पूर्वक व्याख्या समझ लेना सो श्रीतीर्थंकर महाराजोंके नाम पूर्वक कल्याणकोंके नक्षत्र मात्रही यहां दिखातेहैं। छठे श्रीपद्मप्रभुजी महाराजके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए १, और श्रीसुविधीनाथजीके पांच कल्याणक मूल नक्षत्रमें हुए २, श्रीशीतलनाथजीके पांच कल्याणक पूर्वाषाढा नक्षत्रमें हुए ३, श्रीविमलनाथजीके पांच कल्याणक उत्तराभाद्रपदमें हुए ४, श्रीअनंत नाथजीके पांच कल्याणक रेवती नक्षत्रमें हुए ५, श्रीधर्मनाथजीके पांच कल्याणक पुष्य नक्षत्रमें हुए ६, श्रीशांतिनाथजीके पांच कल्याणक भरणी नक्षत्रमें हुए ७, श्रीकुंथुनाथजीके पांच कल्याणक कृतिका नक्षत्रमेंहुए ८, श्रीअरनाथजीके पांच कल्याणकरेवती नक्षत्रमें हुए ९, श्रीमुनिसुव्रत स्वामी जीके पांचकल्याणक श्रवणनक्षत्रमेंहुए १०, श्रीनमिनाथजीके पांच कल्याणक अश्विनी नक्षत्रमें हुए ११, श्रीनेमनाथजीके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए १२, श्रीपार्श्वनाथजीके पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें हुए १३, श्रीमहावीर स्वमीजीके पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुए १४, श्रीविरमी सूत्रकार खुलासे कहतेहैं कि, श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीके पांच कल्याणक उत्तरा फाल्गुनीमें हुए सो उत्तराफाल्गुनी में देवलोकसे च्यव करके देवानंदा माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, उत्तराफाल्गुनीमें त्रिशला माताकी कुक्षिमें स्थापन हुवा २, उसी नक्षत्रमें जन्महुवा ३, उसी नक्षत्रमें दीक्षा ली ४, उसी नक्षत्रमें अनन्त सबसे उत्तम उत्कृष्ट यावत् केवल वर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुवा ५,

और श्रीअभयदेवसूरिजी कृत उपरोक्त सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है, यथा,—

केवल्यधिकारात्तीर्थंकर सूत्राणि चतुर्दश कण्ठ्यानि चैतानि, नवरं पद्मप्रभ ऋषभादिषु षष्टः पंचसु च्यवनादि दिनेषु चित्रा नक्षत्र विशेषे यस्य स पंचचित्र श्चित्राभिरिति रूढ्या बहुवचनं च्यूतोऽवतीर्णः, उपरिमोपरिमग्रैवेयकादेकत्रिंशत् सागरोपमस्थितिकात् च्युतः च्युत्वाच 'गब्भंति' गर्भे कुक्षौव्युत्क्रांत उत्पन्नः, कौशांब्यां धराभिधान महाराज भार्यायाः सुसीमा नामिकायाः माघमासबहुल षष्टयो, जातो गर्भ निर्गमनं कार्तिक बहुलद्वादश्यां चेति, तथा मूंडो भूत्वा केश कषायाद्यपेक्षया आगारान्निष्क्रम्यानगारितां श्रमणतां प्रव्रजितो गतोऽनगारतयाच प्रव्रजितः कार्तिक शुद्ध त्रयोदश्यां, तथा अनंतं पर्यायानंतत्वादनुत्तरं, सर्वज्ञानोत्तमत्वात्, निर्व्याघातमप्रतिपातितत्वान्निरावरणं सर्वथा स्वावरणक्षयात्, कटकुड्याद्यावरणाभावाद्वा, कृत्स्नं सकल पदार्थ विषयत्वात्, परिपूर्णं स्वावयवापेक्षयाऽखंडपौर्णमासी चंद्रबिम्बवत्, किमित्याह केवलं ज्ञानांतर सहायत्वात् संशुद्धत्वाद्वा, अतएव वरं प्रधानं केवलवरं ज्ञानंच विशेषावभासं, दर्शनंच सामान्यावभासं, ज्ञानदर्शनं तच्चतच्चेति केवलवर ज्ञानदर्शनं समुत्पन्नं जातं चैत्रशुद्ध पंचदश्यां, तथा परिनिर्वृतो निर्वाणं गतः मार्गशीर्षबहुलैकादश्यां, आदेशांतरेण फाल्गुन बहुल चतुर्थ्यामिति। एवंचेवेति पद्मप्रभसूत्रमिव पुष्पदंतसूत्रमप्यध्येतव्यमेवमनंतरोक्त स्वरूपेण एतेनानंतरत्वात्प्रत्यक्षेणाभिलापेन सूत्रपाठेनेमास्तिस्रः सूत्र संग्रहणिगाथा अनुगंतव्या, अनुसर्तव्याः, शेष सूत्राभि-

लाप निष्पादनार्थं ॥ पउमप्पभस्सेत्यादि ॥ तत्र पद्मप्रभस्य चित्रा नक्षत्रे च्यवनादिषु पञ्चसुस्थानकेषु भवतीत्यादि गाथाक्षरार्थो वक्तव्य सूत्राभिलापस्त्वाद्य सूत्रद्वयस्य साक्षाद्दर्शित एव इतरैयात्वेव। सोयलेणं अरहा पंच पुव्वा साढे होत्था, तंजहा, पुव्वासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कं ते, पुव्वासाढाहिं जाए, इत्यादि ॥ एवं सर्वाण्यपीति, व्याख्यात्वेव, पुष्पदंतो नवम तीर्थंकर आनतकल्पादेकोनविंशति सागरोपम स्थितिकात् फाल्गुन बहुलनवम्यां मूलनक्षत्रे च्युत च्युत्वा च काकन्दीनगर्यां सुग्रीवराजभार्याया रामाभिधानाया गर्भे व्युत्क्रान्तो, मूल नक्षत्रे मार्गशीर्ष बहुल पंचम्यां जात स्तथा मूल एव ज्येष्टशुद्धप्रतिपदि १ त तरेण मार्गशीर्षबहुलषष्ट्यां निष्क्रांत तथा मूल एव कार्तिक शुद्धतृतीयाया केवलज्ञान उत्पन्न, तथा अश्वयुग शुद्ध नवम्या मादेशान्तरेण वैशाख बहुलषष्ट्या निर्वृत इति, तथा शीतलो दशम जिन प्राणतकल्पाद्विंशति सागरोपमस्थितिकात् वैशाख बहुल षष्ट्या पूर्वाषाढानक्षत्रे च्युत. च्युत्वा च भद्दिलपुरे दृढरथनरपति भार्यायानन्दाया गर्भं तथा व्युत्क्रांत तथा पूर्वाषाढा स्वेव माघ बहुलद्वादश्या जात तथा पूर्वाषाढा स्वेव माघ बहुल द्वादश्या निष्क्रात तथा पूर्वाषाढा स्वेव पौषस्य शुद्धे मतान्तरेण बहुलपक्षे चतुर्दश्या ज्ञानमुत्पन्न तथा तत्रैव नक्षत्रे श्रावण शुद्ध पंचम्या मतान्तरेण श्रावण बहुल द्वितीयायां निर्वृत इति, एवं गाथा प्रोक्तानां शेषाणामपि सूत्राणां प्रथमानुयोगपदानुसारेणोपयुज्य व्याख्या कार्या नवरं चतुर्दश सूत्रेऽभिलाप विशेषोऽस्तीति तद्दर्शनायाह ॥ समणे इत्यादि ॥ हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्य. पञ्चसु च्यवन गर्भहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा गर्भात्

गर्भस्थानात् 'गब्भं'ति' गर्भे गर्भ स्थानांतरे संहृतो नीतो, निर्वृतस्तु स्वाति नक्षत्रे कार्तिकामावास्यामिति ॥

अब देखिये उपरके पाठमें वृत्तिकार महाराजने केवली के अधिकारमें १४ तीर्थंकर महाराजों के कल्याणोंको संबंधी जो सूत्र हैं सो सरलता पूर्वक खुलासा कहदिये है, जिसमें विशेष करके श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराजोंमें छठे श्रीपद्मप्रभुजी है सो इन्ही महाराजके च्यवनादि पांच कल्याणक चित्रानक्षत्रमें हुवे हैं सो चित्रानक्षत्रमें उपरके ९ ग्रैवकसे, ३१ सागरोपमका देव संम्बन्धी आयुपूर्ण करके वहांसे च्यवे और च्यवकरके कौशंबी नगरीके धरनामा राजाकी सुसीमा नामा पट्टराणीकी कुक्षिमें माघवदी ६ को उत्पन्नहुवे १, और कार्तिक वदी १२ को चित्रानक्षत्रमें जन्मलिया २, तथा इसके बाद कार्तिक शुदी १३ के दिन चित्रानक्षत्रमें दीक्षाली ३, तथा चैत्रीपूर्णिमाको चित्रानक्षत्रमें केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्नहुवा ४, और मार्गशीर्ष वदी ११ को वा मतांतर करके फाल्गुन वदी ४ को चित्रानक्षत्रमें मोक्षहुवा ५, इसही तरह से श्रीपद्मप्रभुजीके पांच कल्याणकोकी व्याख्याके अनुसार ही उपरोक्त मूलपाठकी तीन गाथाओंमें कहे मुजब सबी (१४) तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकों संबंधी भिन्न भिन्न तिथि मास नक्षत्र पूर्वक खुलासा व्याख्या समझ लेनी सो उपरमें सूत्रके मूलपाठका भावार्थमें सबी तीर्थंकर महाराजोंके नाम कल्याणक नक्षत्र पूर्वक लिखेगयेहै इस लिये यहां दूसरी वेर नही लिखतेहै परन्तु चौदहवें सूत्रमें इतना विशेष है कि श्री वीरप्रभुके पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें कहे हैं सो हस्तके उपलक्षित, याने उत्तरा फाल्गुनी

नक्षत्रके हस्त नक्षत्र उपलक्षित नजीक समीपमें है इस लिये हस्तोत्तरा अथवा हस्त नक्षत्र उत्तरमें है जिसके एसा हस्तोत्तरा सो उतराफालगुनी नक्षत्र समझना सो च्यवन गर्भापहारादि श्रीवीरप्रभुके पाचोकल्याणकोमें हस्तोत्तरा उतराफाल्गुनी नक्षत्रआयाहै और छठा मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावस्याको हुआ है ।

उपरोक्त पाठमें चौदह (१४) तीर्थंकर महाराजोंके पांच पाच कल्याणकोकी व्याख्या करते श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीतीर्थंकर महाराजोके पूर्व भवका देव लोकस्थान, आयुस्थिति, तथा च्यवनादि कल्याणकोके माष तिथि नक्षत्र और नगरीस्थान मातापिताके नामादि विस्तार पूर्वक खुलासा करके दिखाया है, तैसेही श्रीमहावीरस्वामीके पांचों कल्याणकोकी खुलासा पूर्वक व्याख्याके साथ छठा मोक्ष कल्याणक भी कार्त्तिक अमावस्याको स्वातिनक्षत्रमें होने का खुलासा लिख दिया है, और 'कल्याणक, तथा 'स्थान, यह दोनो शब्द पर्यायवाची एकार्थके सूचक है इसका विशेष निर्णय शास्त्रोके प्रमाण पूर्वक तथा युक्तिसहित आगे करनेमें आवेगा ।

और भी श्रीसीमंदर स्वामिजी भगवान्ने भी खास श्रीमहावीर प्रभुके केवल ज्ञान पर्यंत पाच कल्याणक हस्तोत्तरामें तथा छठा मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें खुलासा पूर्वक कहा है जिसका पाठ भी तो छपा हुआ श्रीआचारांगजी सूत्रकी चूलिकामें प्रसिद्ध है सो श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ ऊपरमें छपा है उसीतरहका श्रीसीमंधर स्वामिजीका भी कथन करा हुआ पाठ समझ लेना ।

अब इस जगह श्रीजिनाज्ञाके इच्छक सत्यबातको ग्रहण करनेवाले निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको न्याय पूर्वक विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि उपरोक्त शास्त्रोंके पाठों मुजब श्रीऋषभदेवस्वामि आदि तीर्थंकर महाराज तथा वर्तमान कालें विद्यमान श्रीसीमंधरस्वामिजी महाराज और गणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामिजी तथा चौदह पूर्वधर श्रीभद्रबाहुस्वामिजी आदि पूर्वधर महाराज और श्रीवडगच्छ, श्रीचन्द्रगच्छ, श्रीखरतरगच्छ श्रीतपगच्छादिसवीगच्छोंके विद्वान् पुरुषोंने अनेक शास्त्रोंमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों की खुलासा पूर्वक व्याख्या करी हैं सोतो उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे प्रगट दिखती हे तथापि बड़ेही अफसोसकी बात है कि विद्यासागर जैनश्वेतांबर धर्मोपदेष्टाकी उपाधि धारण करने वाले न्यायरत्नजी श्रीशांतिविजयजी तथा और भी वर्तमानिक गच्छकदाग्रही विद्वान् नाम धराते भी श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं सोतो पंचांगी के अनेक शास्त्रोंके पाठोंको प्रत्यक्षपने उत्थापन करके गच्छ कदाग्रही दृष्टिरागी तथा विवेक शून्यहोकर अंध परंपरामें चलनेवाले बालजीवोंकी श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी कही हुई छ कल्याणकोंकी सत्य बात परसे श्रद्धा भ्रष्ट करनेका कारण करते हुए उपरोक्त महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनरूप उत्सूत्रभाषणसे कितना संसार बढ़ावेंगे सोतो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने।

और अनेकशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक छ कल्याणक लिखे हैं तिसपर भी उसीका न्यायरत्नजी निषेध करते हैं सोभी कलयुगी विद्वत्ताका नमूना मालूम होता है सोविवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेगें.—

और फिर न्यायरत्नजीने छ कल्याणकोंका निषेध करके पाच कल्याणकोंको स्थापन करनेके लिये श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रके मूलपाठका तथा श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तद्वृत्तिके पाठका पूर्वापरके सबंध वाला सविस्तार युक्त सब पाठको छोड करके दोनो शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें तथा पूर्वापरके सबंध रहित बिचमें का अधूरा पाठ लिखकर बाल जीवो कोदिखाके अभिनिवेशिक मिथ्यात्ववाली अपनी विद्वत्ता की चातुराईसे मुग्धजीवोको भ्रममें गेरे है, और शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें बिना सबंधका अधूरा पाठ भोलेजीवो को दिखानेसे उत्सूत्रप्ररूपणारूप मिथ्यात्वका कारण किया है उसीका निवारण करनेके लिये दोनो शास्त्रकार महाराजो के अभिप्राय सहित पूर्वापरके सबंधवाले सब पाठोंको इस जगह दिखाता हू सो श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत उपरोक्त श्रीपचाशकजी सूत्रमें तीर्थ यात्राधिकार सबंधीपृष्ठ १३५।१३६ का पाठ नीचे मुजब है, यथा—

पच महाकल्लाणा सव्वेसि जिणाण होंति णियमेण। भुवण-च्छेरय भूया, कल्लाण फलाय जीवाण ॥३०॥ गब्भे जम्मेय तहा णिक्खमणेचेव णाण णिव्वाणे। भुवण गुरूण जिणाण, कल्लाणा होंति णायव्वा ॥३१॥ तेसुय दिणेसुपयणा देविंदाइ करिंति भत्तिणया। जिण जत्ताइ विहाणा कल्लाण अप्पणो चेव ॥३२॥ इयते दिणा पसत्था ता सेसेहिं पि तेसु कायव्वं। जिण जत्ताइ सहरिस तेय इमेण वद्धमाणस्स ॥३३॥ आसाढसुद्धछट्ठोचेत्ते तहसुद्धतेरसी चेव। मग्गसिर किण्ह दसमी वइसाहे सुद्धदसमीय ॥३४॥ कत्तियकिण्हे चरिमा गब्भाइदिणा जहाक्कमएते हत्थुत्तरजोगेण

चउरो तह सातिणा चरिमो॥ ३५ ॥ अहिगय तित्थ विहाया भवंति णिदंसिया इमे तस्स । सेसाणवि एवंचिय णियणिय ति त्थेसु विणणेया ॥३६॥ तित्थगरे वद्धमाणे अभ्भासो तहय जीय कप्पस्स। देविंदाइ अणुगिती गंभीर परूवणालोए ॥३७॥ वणोय पवयणस्स इयजत्ताएजिणाण णियमेण । मग्गाणुसारि भावो जायइ एत्तोच्चिय विसुद्धो ॥ ३८ ॥

अब श्रीअभयदेव सूरिजी कृत उपरोक्त सूत्रकी वृत्तिका पाठ दिखाता हूं सो पृष्ठ १३५ से १३६ तक का पाठ नीचे मुजबहै, यथा,—

निज समये स्वकीयावसरे रूढिगम्ये अनुरूपम् औचित्येन कर्तव्या विधेयाः कदेत्याह जिनानामर्हतां कल्याण दिवसेषु, पंच महाकल्याणी प्रतिवद्ध दिनेष्वपीति ॥ कल्याणान्येव स्वरूपतः फलत आह, पंच गाहा, गभ्भेगाहा, व्याख्या-पंचेति पंचैव महा कल्याणानि परमश्रेयांसि सर्वेषां सकल काल-निखिल नर लोक भाविनां जिनानामर्हतां भवंति नियमे-नावश्यं भावेन, तथा वस्तु स्वभाव त्वात्, भुवनाश्चर्य भूतानि निखिल भुवनाद्भुत भूतानि त्रिभुवनजनानंदहेतुत्वात्, तथा कल्याणफलानि च निश्रेयस साधनानि, च समुच्चये, जीवा-नांप्राणिनामिति,गर्भे,गर्भाधाने, जन्म,उत्पत्तौ, च शब्दः समु-च्चये, तथेति वाक्योपक्षेपे निष्क्रमणे अगारवासान्निर्गमे, चैवेति समुच्चयावधारणार्थावुत्तरत्र सम्भंत्स्यते ज्ञान निर्वाणे समाहारद्वंद्वत्वात् केवलज्ञान निर्वृत्योरेवच, केषां गर्भादिष्वीत्याह, भुवनगुरुणां जगज्ज्येष्ठानां जिनानामर्हतां किमित्याह, कल्याणानि स्वनिःश्रेयांसि भवन्ति वर्त्तन्ते ज्ञातव्यानि ज्ञेयानीति गाथाद्वयार्थः। ३०।३१। ततश्चतेसु गाहा,

व्याख्या-तेसुयत्ति तेपुच, तेषुपुनर्दिनेषुदिवसेषु येषु गर्भादयो बभूवुर्धन्या, धर्मधनलब्धारः पुण्यभाज इत्यर्थ । देवेन्द्रादय सुरा. सुरेन्द्र प्रभृतय कुर्वंति विदधति भक्तिमतो बहुमान-नम्रा किमित्याह, जिनयात्राद्यर्हदुत्सवपूजास्नात्रप्रभृतीनि, कुत इत्याह विधानाद्विधिना वा जिनयात्रादि विधानानि कि भूतानि जिनयात्रादीनीत्याह, कल्याण स्वश्रेयस कस्ये-त्याह, आत्मन. स्वस्य चैव शब्दस्य समुच्चयार्थत्वेनपरेषां चेति गाथार्थ ।३२। यत एव इयगाहा, व्याख्या-इत्यतो हेतोः पूर्वोक्तजीवाना कल्याण फलत्वादि लक्षणात्तेयइति येषुजिन गर्भाधानादयो भवन्ति, दिन्ना दिवसा दिनशब्दः पुल्लिंगोऽ-स्ति प्रशस्त श्रेयांसतत, किमित्याह, ता इति यस्मादेव तस्मात् शेषैरपि देवेन्द्रादि व्यतिरिक्तैर्मनुष्यैरपि न केवल-मिन्द्रादिभिरेवेत्यपि शब्दार्थ, तेषु गर्भादि कल्याणक दिनेषु कर्त्तव्य विधेय जिनयात्रादि वीतरागोत्सव पूजाप्र-भृतिक वस्तु सहर्ष सप्रमोदं यथा भवति, कानि च तानि दिनानीत्यस्या जिज्ञासाया, सर्वजिन सम्बन्धिनां तेषां वक्तु मशक्यत्वाद्वर्त्तमान तीर्थाधिपतित्वेन प्रत्यासन्नत्वादेकस्यैव महावीरस्य तानि विवक्षुराह, तेयत्ति तानि पुनर्गर्भादि दिनानिइमानि, इमानिवक्ष्यमाणानि वर्द्धमानस्य महावीर जिनस्य भवन्तीति गाथार्थं ॥ ३३ ॥ तान्येवाह, आसाढ गाहा, चत्तिय गाहा, व्याख्या-आषाढ शुद्धषष्ठी आषाढमासे शुक्लपक्षस्यषष्ठीतिथिरित्येक दिनमेवचैत्रेमासे तथेति समुच्चये, शुद्धत्रयोदश्यामेवेति द्वितीय, चैवेत्यऽवधारणे, तथा मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीति तृतीयं, वैशाखशुद्धदशमीति चतुर्थ, च शब्द. समुच्चयार्थ, कार्त्तिक कृष्णेचरमापचदशीति पचमं, एतानि

किमित्याह गर्भादि दिनानि। गर्भ, जन्म, निष्क्रमण, ज्ञान; निर्वाण दिवसा, यथाक्रमं क्रमेणैवेतान्यन्तरोक्ता न्येपांच- मध्ये हस्तोत्तर योगेन हस्त उत्तरोयासां हस्तोप लक्षिता वा उत्तरा हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः ताभिर्योगः सम्बन्धश्चेति हस्तोत्तरा योगस्तेनकरणभुतेन चत्वार्याद्यानि दिनानि भवंति, तथेति समुच्चये, स्वातिना स्वाति नक्षत्रेण युक्तश्चरमोत्ति चरम कल्याणक दिनमिति प्राकृतत्वादिति गाथाद्वयार्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथ किमिति महावीरस्यैवैतानि दर्शितानी त्यत्राह, अहिगय गाहा, व्याख्या—अधिकृत तीर्थ विधाता वर्द्धमान प्रवचन कर्ता भगवान्महावीर इति हेतो र्निदर्शिता न्युक्तानि इमानि कल्याणक दिनानि तस्यवर्द्धमान जिनस्य, अथ शेषाणांतान्यतिदिशन्नाह, शेपाणामपि वर्द्धमानस्यैवऋप- भादीनामपि वर्तमानावसर्पिणी भरत क्षेत्रापेक्षया एवमेवेह तीर्थे वर्द्धमानस्यैव निज निज तीर्थेषु स्वकीय स्वकीय प्रवचना वसरेषु विज्ञेयानि ज्ञातव्यानि, मुख्यवृत्या विधेयतयेति, इह च यान्येव गर्भादि दिनानि जिनानां, तान्येव सर्व जम्बूद्वीप भारतानामृषभादिजिनानां तान्येव सर्व भार- तानां सर्वैरावतानांच यान्येवच एतेषामस्यामपसर्पिण्याम् तान्येवच व्यत्ययेनोत्सर्पिण्यामपीति गाथार्थः। ॥३६ ॥ अथ किमेवं कल्याणकेषु जिनयात्राविधीयते, इत्याह, तित्थ गाहा, वणेय गाहा, व्याख्या—तीर्थकरे जिनविषये बहुमानं पक्षपातस्तदिदं दिनं यत्र भगवान् अजनीत्यादिविकल्पतः कृतोर्भवतीति, सर्वत्र गम्य इति यात्रये इत्यनेन योगः, तथेति वाच्योपक्षेपार्थोऽत्रद्रष्टव्य अभ्यासोभ्यसनं चशब्दः समुच्चये, जीतकल्पस्य पूर्व पुरुषाचरित्रलक्षणाचारस्य, तथा देवेन्द्रा-

द्यनुकृति देवाधिप देवदानवविभव प्रभृत्याचारानुकरणं, तथा गम्भीर प्ररुपणा, गम्भीरसाभिप्रायमिदं यात्राविधान तथा विध नित्यस्यार्थस्य प्ररूपणा प्रकाशना गभीर प्ररूपणा कृता भवतीति तथा लोकेजनमध्ये वर्ण प्रसिद्धिर्जायतइतियोग ,चशब्द. समुच्चये कस्य प्रवचनस्य जिनशासनस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वादिति यात्रया अनतरोक्तविधानोत्सवेन क्रियमाणयेति गम्य, येषा जिनाना वीतरागाणां नियमेन नियोगेन एतोर्ञ्चियत्ति यतएव कल्याणक यात्राया तीर्थंकर बहुमानादिकं कृत भवत्यत एव हेतो मार्गानुसारिभावो मोक्षपथानुकुलाध्यवसाय आगमानुसारी वा जायते भवत्यसन् किंभूतो विशुद्धोऽनयद्य सत्वाविसुद्धोऽसौ जायते विशुद्धयतीत्यर्थ । इति गाथा द्वयार्थ ॥३७॥ ३८॥

उपरके दोनो पाठो का संक्षिप्त भावार्थ कहते हैं कि- सब १५ कर्मभूमी मनुष्य क्षेत्रमें सर्व कालमें होनेवाले सर्व श्रीतीर्थंकर महाराजो के परम मंगलकारी पांच पांच महाकल्याणक होतेहैं सो अनादि कालसे श्रीतीर्थंकर महाराजोके पांच पांच वस्तु, याने-कल्याणक होनेका स्वभाव होनेसे नियम करके अवश्य होतेहैं सो सर्व भुवने, याने-१४ राज लोकमें सबको अद्भुत आश्चर्य उत्पन्न करने वाले तथा तीन जगतके सर्वजीवोको सुखरुप आनंद उत्पन्न कारक होनेसे विशेष श्रेयके साधनरूप कल्याण फलके देनेवालेहैं सो तीन भुवनके गुरु जगत् पूज्य श्रीजिनेश्वर भगवान् तीर्थंकर महाराजोके च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति, और निर्वाण इस तरहसे पांच पांच कल्याणक होतेहैं सो अपने आराधन करनेवाले जनोंको श्रेयकारीहैं ऐसा जानना

और अपनी. आत्माको पुण्यके भंडाररूप धन्य माननेवाले तथा धर्मरूप धनको प्राप्त करनेवाले और भक्तिवंत बहुमान पूर्वक नम्रहुएहै शरीर जिन्होंके ऐसे देवता मनुष्य और इंद्रादिकोंके जैसे बढते भावहोवे वैसे हर्ष सहित विधिपूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवानोंके च्यवनादि होनेवाले पांचों कल्याणकोंके दिनोंमें जिन यात्रा सो श्रीवीतराग भगवान् का उत्सव तथा पूजाआदि कार्य अपनी तथा दूसरोंकीआत्मा कल्याणके लिये करतेहैं उन्हीकल्याणकोंके दिनोंको जाननेकी इच्छा वालोंके लिये सबी श्रीजिनेश्वर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके दिनोंको यहां दिखानेका महान् कार्य करनेमें तो ग्रन्थकार समर्थ नहीं होनेसे उसीका नमूनारूप वर्तमान शासनके नायक तथा नजीक उपगारी तीर्थंकर होनेसे इन्हीं एक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीके पांच कल्याणकोंके दिनोंको दिखातेहै यथा—प्रथम आषाढ शुदी ६ को च्यवन, दूसरा चैत्रशुदी १३ को जन्म, तीसरा मार्गशीर्ष वदी १० को दीक्षा, चौथा वैशाखशुदी १० को केवल, और पांचमा कार्तिक अमावश्याको मोक्ष, सो इसही तरहके श्रीमहावीर स्वामीके पांच कल्याणकोंके मुजबही वर्तमान अवसर्पिणी की अपेक्षासे श्रीऋषभदेव स्वामि आदि २३ श्रीतीर्थंकर महाराजोंके भी पांच पांच कल्याणक समझलेना सो मुख्य वृत्ति करके एक तीर्थंकर महाराजके च्यवनादि पांच कल्याणक दिखायेहैं उसी मुजबही पांचों भरतक्षेत्रोंमें तथा पांचों ऐरावर्त क्षेत्रोंमें और पांचों महाविदेह क्षेत्रोंमें सर्व तीर्थंकर महाराजोंके निज निज तीर्थे, याने अपने अपने शासनमें पांच पांच कल्याणक समझलेना औरऐसाही उत्सर्पिणीमें अवस-

र्पिणीमें होनेवाले सबी तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणक समझ लेने और उन्हीं कल्याणकोंके दिनोमें विशेष करके तीर्थयात्रा करनी उसीमें जिन दिने भगवान के जन्मादि कल्याणक हुए होवे उसीकी भावनासे अनुराग पूर्वक निजको हितकारी होनेसे वारवार स्तुति वगैरह करना सो इन्द्रादिकोंकी तरह आत्मार्थियोका मुख्य कर्तव्य है और उसी यात्रा विधानका उपदेश करना तथा पूर्वोक्त कल्याणकोको यात्रामें श्रीतीर्थंकर महाराजोकी भक्ति करनेसे मोक्ष प्राप्तिका कारण रूप सम्यक्त्व निर्मल होता है।

अब इस जगह नयगर्भित जैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको जानने वाले तत्वज्ञ पुरुषो को न्याय पूर्वक विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि सबी कर्मभूमी १५ मनुष्य क्षेत्रोंमें सब कालके सबी तीर्थंकर महाराजो के पाच पाच कल्याणकोंके दिनोकी अपेक्षा सबधी व्यवहारनय करके श्रीमहावीर स्वामीके पाच कल्याणक दिखाकरके उसी मूजब ही व्यवहार नयसे सबी तीर्थंकरो के पाच पांच कल्याणकोको समझ लेनेकी ऊपरके पाठमें सूचना दी है इसलिये सबी तीर्थंकर महाराजो के पांच पाच कल्याणकोंके बहुत अपेक्षा संबन्धी व्यवहारनयके आगे पीछेके सब पाठको छोड करके शास्त्रकार महाराजो के अभिप्रायके विरुद्धार्थमें पूर्वापरके सम्बन्ध विनाके अधूरे पाठसे बाल जीवो को श्रीमहावीर स्वामीके पाच कल्याणक दिखा करके निश्चयनयके छ कल्याणकोका निषेध किया सो कदापि नहीं हो सकता है तथापि न्यायरत्नजीने किया सो अज्ञानता या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वताका कारण मालूम होता है क्यो कि श्रीजैन शास्त्रो में बहुत अपेक्षा सबधी व्यवहार नयकी

बातें लिखनेके समय उसीमें निश्चय नय करके अल्प बातकी भिन्नता होवे उसीको नहीं लिखते हैं इसलिये वहुत अपेक्षा संबंधी व्यवहार नयकी बातको पकड़ करके कदाग्रहसे अन्य शास्त्रोंमें अल्प भिन्नता वाली निश्चय नयकी बातको खुलासे लिखी होते भी उसीका निषेध करनेसे उत्सूत्र भाषणरूप मिथ्यात्वके दूषणकी प्राप्ति होती है, जैसे कि श्रीतीर्थंकर भगवान्‌की माता प्रथम स्वप्नमें हस्थी देखे १, पुरुष तीर्थंकर होवे २, श्रीतीर्थंकर महाराजका ९ मास और ७॥ दिने जन्म होवे ३, मनुष्य गतिसे फिर मनुष्य होकर चक्रवर्ती नहीं होवे ४, तथा चक्रवर्तीसे तीर्थंकर के सिवाय अधिक बल अन्य मनुष्यमें नहीं होवे ५, दीक्षा समय तीर्थंकर महाराज पांच मुष्ठी लोच करे ६, पांच सौ धनुष्यके शरीरवाले दोमुनिओंसे अधिक १ समयमें मोक्ष नहीं जावे ७, श्रीतीर्थंकर महाराजके केवल ज्ञानकी प्राप्तिके समय प्रथम देशनामें चतुर्विध संघकी स्थापना होवे ८, तथा सुमेरु कदापि चलायमान नहीं होवे ९, और पर्याप्ता अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्वी होवे १० इत्यादि अनेक बातें बहुत अपेक्षा संबंधी व्यवहार नयसे शास्त्रकारोंने लिखी हैं परन्तु श्रीमहावीर स्वामीकी माताने प्रथम स्वप्नमें सिंहको देखा तथा श्रीआदिनाथस्वामिकी माताने प्रथम स्वप्ने वृषभको देखा १, श्रीमल्लीनाथजी स्त्री पने तीर्थंकर हुए २, बारहवे भगवान्‌का ८ मास और २० दिने तथा सातवें भगवान्‌का ९ मास और १९ दिने जन्म हुआ ३, श्रीवीर प्रभुका जीव २२ वें भवे मनुष्य होकर फिर २३ वें भवे महाविदेह क्षेत्रे मनुष्यपनमें चक्रवर्ति हुआ ४, श्रीबाहुबलजीमें भरत चक्रवर्तिसे अधिक बल हुआ ५, श्रीआदिनाथ स्वामिजीने दीक्षा समय

चार मुष्टी लोच किया ६, श्रीआदिनाथ स्वामी पाचसौ धनुष्यके शरीर वाले १ समयमें १०८ मुनिओके साथ मोक्ष पधारे ७, श्रीवीर प्रभुकी दूसरी देशनामें संघस्थापना हुई ८, तथा जन्म समय श्रीमहावीर स्वामीने मेरुको कंपाया ९, और अपर्याप्तएकेंद्रिय जीवोंको श्रीकर्मग्रथमें सम्यक्त्वी कहे १० इत्यादि अनेक बातें अल्प अपेक्षा सबधी भी निश्चय नय करके शास्त्रो में प्रगट पने देखनेमें आती हैं जिस पर भी कोई अज्ञानी कदाग्रहसे बहुत अपेक्षा वाली व्यवहार नयकी बातो के पाठो को बाल जीवो के आगे दिखाकर अल्प अपेक्षा वाली निश्चय नयकी उपरोक्त बातो को निषेध करके भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेका उद्यम करें तो उसीको श्रीजिनाज्ञा भगके दूषण की प्राप्ति अवश्यमेव होगी तैसेही श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजो ने और सवीगच्छो के पूर्वाचार्योंने अनेक शास्त्रोमें श्रीवीरप्रभुके निश्चय नय करके छ कल्याणकोको खुलासे कथन किये हैं सो प्रत्यक्ष दिखता है तो भी न्यायरत्नजी सवी तीर्थंकर महाराजो के पांच पाच कल्याणकोके बहुत अपेक्षा वाले व्यवहार नयके पाठसे निश्चय नयके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोको निषेध करते हैं सो श्रीजिनाज्ञाके भगका दूषणकी प्राप्तिके सिवाय और क्या लाभ सपादन करेंगे सो विवेकी पाठकगण स्वय विचार सकते है ,—

और (अगर जैन शास्त्रो मे छ कल्याणक होते तो नय अग शास्त्रकी टीका करने वाले महाराज अभयदेवसूरिजी गुद पांच कल्याणक क्यो वयान करते) यह अक्षर भी न्याय रत्नजीके विद्यासागरादि विशषणो की लज्जाके कराने

वाले प्रत्यक्ष अज्ञानताके सूचक हैं क्योंकि श्रीअभयदेवसूरिजी (इन्हीं) महाराजने श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें तथा और भी अनेक महाराजोंने श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकोंको खुलासे लिखे हैं सो तो मैने उपरमें ही अनेक शास्त्रोंके प्रमाण लिख दिखाये हैं और पांच कल्याणकोंका कारण भी उपरमें लिख दिखाया है इस लिये छ कल्याणक निषेध नहीं हो सकते हैं और श्रीपंचाशकजीके सूत्र तथा वृत्तिमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक लिखनेसे सबी तीर्थंकर महाराजोंके छ छ कल्याणक ठहर जावे सो तो होते नहीं इस लिये वहां छ कल्याणक न लिखते बहुत अपेक्षासे पांच ही लिखे सो सबी तीर्थंकर महाराजोंके होते हैं इसलिये व्यवहार नयके उपरके पाठसे अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त निश्चय नय वाले छ कल्याणक निषेध नहीं हो सकते हैं—

और न्यायरत्नजीको शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण रूप प्ररूपणा करनेसे संसार वृद्धिका भय लगता होवे तथा शास्त्रकार महाराजोंके वचनोंपर श्रद्धा रखने वाले सम्यक्त्वधारी होवे तब तो सबी तीर्थंकर महाराजोंके संबंधवाले व्यवहार नयके पूर्वापरके सब पाठको छोड़ करके गच्छ कदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे मध्यका अधूरा पाठ लिखके भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण किया तथा अनेक शास्त्रोंमें खुलासे छ कल्याणक लिखे हैं जिसपर से बाल जीवोंकी श्रद्धा भ्रष्ठ करनेका उद्यम किया जिसका मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये।

और इन्हीं श्रीपंचाशकजी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीअभय देवसूरिजी महाराजने तथा चूर्णिमें श्रीयशोदेवसूरिजी महाराजने सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही

सुलासे लिखी है जिसको तो मंजूर न करते हुए इन्हीं महाराजके विरुद्धार्थमें इन बातका निषेध करके मुग्ध जीवोको अपने गच्छ कदाग्रहकी भ्रमजालमें फसानेका उद्यम करते है और इन्हीं महाराजके अभिप्राय विरुद्ध कल्याणकाधिकारे अधूरा पाठ लिखके फिर इन्हीं महाराजके वचनोको सत्य मानने वाले बनते हैं सो भी न्याय रत्नजीकी कलयुगी विद्यासागरादि विशेषणोकी अपूर्व विद्वत्ताकी चतुराईका नमूना मालूम होता है सो विवेकी सज्जन स्वय विचार लेवेंगे,——

और (खरतर गच्छवालोको पूछना चाहिये गर्भापहारको अगर कल्याणिक मानते हो तो अच्छेरा किसको मानते हो दश अच्छेरेमें गर्भापहारको एक तरहका अच्छेरा कहा फिर कल्याणक कैसे हो सकता है) न्याय रत्नजीके इस लेख पर भी मेरेको इतना ही कहना है कि जैसे श्री आदिनाथ स्वामी १०८ मुनिओके साथ मोक्ष पधारें उसीको अच्छेरा कहते हैं और उसीकोही मोक्ष कल्याणक भी मानते है तथा श्रीमल्लीनाथ स्वामीके स्त्रीत्व पनेमें उत्पन्न होने को अच्छेरा कहते है और स्त्रीत्वपनेमें ही जन्म दीक्षादि कार्य्य हुए उन्होको स्त्रीत्वपने सहित तीर्थंकरके कल्याणकभी मानते है तैसे ही श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारको अच्छेरा कहते है और उसी गर्भापहारसे त्रिशला माताकी कूखमें अवतार लेनेको दूसरा च्यवनरूप कल्याणक भी मानते है सो खरतर गच्छवालोका कल्याणक मानना श्रीस्थानांगजी श्रीसमवायांगजी श्रीआचारांगजी और श्रीकल्पसूत्रादि पचांगीके अनेक शास्त्रानुसार और युक्ति सहित होनेसे उसीका निषेध कदापि नहीं हो सकता है

तथापि आपने किया सो उत्सूत्र भाषणसे संसार वृद्धिका हेतु भूत मिथ्यात्वका कारण है और आप जैसे तपगच्छवालोंसे इस अवसरपर हम भी पूछते हैं कि श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक खुलासे कहे हैं तिसपर भी आपलोग निषेध करनेके लिये शास्त्रोंके उलटे अर्थ करके उत्सूत्रभाषणोंसे बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कार्य्य करते हो और नय गर्भित श्रीजैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको गुरुगम्यसे बिना समझे गच्छ कदाग्रहकी विद्वताके अभिमानसे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणके कटु विपाकसे संसारमें परिभ्रमण का किंचित् मात्र भी हृदयमें भय लाते नहीं हो जिसका क्या कारण है सो प्रगट करना चाहिये,

और श्री महावीर स्वामीके अच्छेरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते हो तो श्रीआदिनाथ स्वामीके तथा श्री मल्लीनाथ स्वामीके अच्छेरोंको भी कल्याणकत्वपनेसे आपको निषेध करना चाहिये सो तो करते नहीं हो और उन अच्छेरोंको कल्याणकत्वपनेसें मानते हो फिर श्रीमहावीरस्वामीके अच्छेरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते हो सो तो प्रत्यक्षपने गच्छ कदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण ही मालूम होता है इस बातको विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे ।

और न्याय रत्नजी श्रीशांतिविजयजीको धर्म्मबन्धुकी प्रीतिसे मेरा तो यही कहना है कि-आप निज गच्छके हठवादसे अनेक शास्त्रोंके प्रमाण युक्त श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी सत्य बातका निषेध करनेके लिये शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणाका परिश्रम करके कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे

अपने विद्यासागर न्यायरत्नादि विशेषणोको लज्जनीय करनेका कारण न करते यदि आप जिनाज्ञा प्रतिपालनके अभिलाषी, आत्मार्थी, विवेकी, तत्त्वज्ञ, भवभीरू हो तो आपके लेखकी मेरी लिखी हुई उपरकी समीक्षाके लेखको परम हितकारी समझके आपने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणको का निषेध किया जिसका प्रगटपने श्रीसंघ समक्ष या जैन पत्रमें मिथ्यादुष्कृत देकरके उपरकी छ कल्याणकोकी सत्य बात को अंगीकार करोगे और अन्य भव्यजनोको भी कराओगे वोही श्रीमद्भगवत् आज्ञाके आराधनका कारण होनेसे निजपरके आत्म हितका कारण तथा आपके विशेषणोकी सफलता है नतु सत्य बातका निषेध करनेके लिये गच्छ पक्षके पंडिताभिमानसे उत्सूत्र प्ररूपणामें आगे इच्छा आपकी ॥

इति श्रीशांतिविजयाख्यन्यायरत्नोपाधिधारकस्य
कल्याणकसबन्धिनीलेख समीक्षा समाप्ता जाता ॥

और अब श्रीतपगच्छके सबकोई मुनिमण्डल वगैरह प्राय करके श्रीपर्युषणा पर्वके धर्म व्यानके दिनोमें श्रीकल्प सूत्रके व्याख्यानाधिकारे श्रीविनयविजयजी कृत सुखबोधिका वृत्तिको वाचते है उसीमें छ कल्याणकोका निषेध सम्बधी वृत्तिकारने निज तथा परको दुःखका कारण उत्सूत्र भाषण रूप जो व्याख्याकरी है उसीको वर्त्तमानकाले गच्छकदाग्रही लोग हर वर्षे वांचकर आपसमें खडन मडनका झगडा पर्युषणामें ले कर बैठते हैं तथा गच्छ कदाग्रहके कुसपको बढाकरके उत्सूत्र भाषणोंसे निज परको संसार वृद्धिका तथा दुर्लभ बोधीका कारण करते हैं उसीका निवारण करनेके लिये और सत्यग्राही आत्मार्थी पुरुषोके आगे श्रीजिनाज्ञाकी शास्त्रानुसार सत्य बातका प्रकाश करनेके लिये श्री-

विनय विजयजी कृत सुखबोधिकावृत्तिके छ कल्याणकोंका निषेध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं—सो प्रथम तो उनका पाठ नीचे मुजब है यथा--

[अथ षट् कल्याणक वादीआह ननु "पंच हत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे" इतिवचनेन महावीरस्य षट्कल्याणकत्वं संपन्न मेव, नैवं एवं उच्यमाने "उसभेणं अरहा कोसलिए पंच उत्तरासाढ़े अभिइ छठे होत्थत्ति" जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति वचनात् श्रीऋषभस्यापि षट्कल्याणकानि वक्तव्यानिस्युः नच तानि त्वयापि तथोच्यते तस्माद्यथा 'पंच उत्तरासाढे' इत्यत्र नक्षत्र साम्यात् राज्याभिषेको मध्ये गणितः परं कल्याणकानि तु अभिइ छठे इत्यनेन सहपचैव, तथात्रापि 'पंचहत्थुत्तरे' इत्यत्र नक्षत्र साम्यात् गर्भापहारो मध्ये गणितः परं कल्याणकानितु "साइणा परिणिव्वुड़े" इत्यनेन सह पंचैव, तथा श्रीआचारांग टीका प्रभृतिषु पंचहत्थुत्तरे इत्यत्र पंच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि। किंच श्रीहरिभद्रसूरि कृत यात्रा पञ्चाशकस्य श्रीअभयदेवसूरिकृतायां टीकायामपि 'आषाढशुद्धषष्ट्यां गर्भसंक्रमः १ चैत्रशुद्धत्रयोदश्यां जन्म २ मार्गशीर्षशितदशम्यां दीक्षा ३ वैशाखशुद्धदशम्यां केवल ४ कर्तिकामावस्यां मोक्षः ५, एवं श्रीवीरस्य पंच कल्याणकानि उक्तानि, अथ यदिषष्टं स्यात्तदा तस्यापि दिनं उक्तं स्यात् अन्यच्च नीचैर्गोत्र विपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्व कथनं अनुचितं। अथ पंच हत्थुत्तरे इत्यत्र गर्भापहरणं कथं उक्तं इतिचेत्सत्यं अत्रहि भगवान् देवानन्दा कुक्षौ अवतीर्णः प्रसूतवतीचत्रिशलेति असंगतिः स्यात्तन्निवारणाय पंच हत्थुत्तरेत्ति वचनं इत्यलं प्रसंगेन।]

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूं कि–हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखको देख कर मेरेको बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि–उपरके लेखमें श्रीविनयविजयजीने अपने संसार वृद्धिका हृदयमें कुछ भी भय न करके कुयुक्तियोके विकल्पोसे उत्सूत्रभाषणोका संग्रह करके भोले जीवोंको भी संसार वृद्धिका हेतुभूत हरवर्षे श्री-पर्युषणापर्वमें वांचनेके लिये दुर्लभबोधिका कारण रूप महान् अनर्थ कारक गाढ मिथ्यात्वका कारण किया है क्योंकि उपरके लेखकी आदिमें ही "अथ षट् कल्याणक वादी आह" इन अक्षरो करके श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणको को मान-नेवाले श्रीखरतरगच्छवालो को शास्त्रविरुद्धवादी ठहरा कर उसीको निषेध करनेके लिये आप शास्त्रानुसार शुद्ध प्र-रूपक प्रतिवादी बने सो निःकेवल उत्सूत्र भाषण है क्योंकि श्रीतीर्थंकर, गणधर, पूर्वधरादि, महाराजो'ने खुलासा पूर्वक छ कल्याणकोंका वर्णन किया है उसीके ही अनुसार श्रीखरतर गच्छवाले (छ कल्याणक) मानते हैं इस लिये उनको शास्त्र विरुद्ध वादी ठहरा करके छ कल्याणकोंका नि-षेध करनेका श्रीविनयविजयजीने उद्यम किया सो सो श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजो को ही शास्त्र विरुद्ध वादी ठहराने जैसा महान् अनर्थ कारक उत्सूत्र भाषण हो गया सो विवेकी पाठक गण स्वय विचार लेवे गे ।

और ननु शब्दसे प्रश्न उठाकर 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठका वचन करके श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहार सहित पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें तथा छठा कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें यह छ कल्याणक

विनय विजयजीने सिद्ध किये और फिर उसीका निषेध करनेके लिये 'उसभेणं अरहा कोसलीए पंच उत्तरासाढ़े अभीइ छठे होत्थत्ति' इस श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्रके वचनसे श्री आदिनाथ स्वामीके भी राज्याभिषेक सहित पांच कल्याणक उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें तथा अभीजितमें छठा यह छ कल्याणक कहनेका दिखा करके फिर नक्षत्र सामान्यतासे राज्याभिषेककी तरह गर्भापहारको भी नक्षत्र सामान्यतासे अन्दर गिननेका ठहराकर श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकका अभाव सिद्ध किया है सो तो शास्त्रकार महाराजोंका अभिप्रायको समझे विना भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहमें फसानेके लिये उत्सूत्र भाषण रूप संसार वृद्धिका हेतु है क्योंकि प्रथमतो श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकको कल्याणकत्व पनेसें कोई भी पूर्व-धरादि महाराजने मान्य करके किसीभी शास्त्रमें नहीं लिखा है और श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारको तो कल्याणकत्व पनेसें श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने मान्य करके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने कथन किया है इसलिये श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकके पाठसे श्रीवीर प्रभुके छठे कल्या-णकका निषेध कदापि नहीं हो सकता है

तथा दूसरा यह है कि-श्रीआदिनाथ स्वामीके राज्याभिषेकके मास, पक्ष, तिथिका नाम मात्रभी कोई शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपनेमें मास, पक्ष, तिथि पूर्वक आराधन भी नहीं हो सकता है परन्तु श्री वीरप्रभुके गर्भापहारके तो मास, पक्ष, तिथिका, नाम पूर्वक खुलासा अधिकार अनेक शास्त्रोंमें देखनेमें आता है इसलिये गर्भापहारको तो कल्याणकत्वपनेमें-मास, पक्ष, तिथि, पूर्वक

आराधन हो सकता है इसलिये भी राज्याभिषेकके बहाने गर्भापहारका छठा कल्याणक निषेध नहीं हो सकता है

और तीसरा यह है कि-राज्याभिषेक तो श्रीअजित-नाथ स्वामी आदि बहुत तीर्थंकर महाराजोंका हुआ है इसलिये जो राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपना प्राप्त हो सकता तो शास्त्रकार महाराज लिखनेमें कदापि विलम्ब नहीं करते और गर्भापहारको तो श्रीसमवायांगजी सूत्र वृत्तिके अनुसार पूर्वभवोंकी गिनतीसे तथा त्रिशला माताने चौदह स्वप्न देखे और शास्त्रकारोंने भी स्वप्नोंके अर्थ तथा फल वगैरहका बहाही वर्णन किया है तथा देवताओंने ऋद्धि समृद्धिकी भी वृद्धि करी इत्यादि कारणो से उसीको तो दूसरा च्यवन रूप कल्याणकत्वपना प्रगटपने प्राप्त होता है इसलिये सर्व जगह शास्त्र कारोने श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार पूर्वक छ कल्याणकोंकी व्याख्या लिखनेमें किसी जगह भी प्रमाद नहीं किया है जिससे राज्याभिषेकके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजीने निषेध किया सो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्र भाषणही मालूम होता है

और चौथा यह है कि-राज्याभिषेक तथा राज्य व्यवहार संसारिक कार्य्य होनेसे और उसीकी भावना भी संसारिक कार्योंकी होनेसे उसीको कल्याणकत्वपना प्राप्त नहीं हो सकता है परन्तु गर्भापहार तथा अन्त्यके चरम तीर्थंकर मोक्ष सार्थवाहीका भी गर्भापहार व्यवहार आत्मार्थी भव्यजीवोंको कुलमद हटानेवाला और उसीकी भावना भी निर्ज्जराकी हेतु होनेसे उसीको तो प्रगटपने

कल्याणकत्वपना प्राप्त हो सकता है तथापि विनयविजयजीने राज्याभिषेककी तरह नक्षत्रकी गिनतीके बहाने गर्भापहारके छठे कल्याणकको निषेध करनेका परिश्रम किया सो तो गच्छकदाग्रहके मिथ्यात्वको बढ़ाकर बालजीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो न्याय दृष्टिवाले विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे ।

और पांचवां यह है कि-श्री आदिनाथ स्वामीका तो युगलाधर्म निवारण रूप भारतमें प्रथम राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें होनेसे तथा राज्यव्यवहारके प्रसङ्गसे नक्षत्रका नाम मात्रही गिनाया है और श्रीकल्प सूत्रके 'चउ उत्तरासाढ़े अभीइ पंचमें' इस पाठसे श्रीआदिनाथ स्वामीके पांच कल्याणकों की व्याख्या भी प्रगटपने है तैसेही 'चउ हत्थुत्तरे साइणा पंचमें' ऐसा पाठसे श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे पांच कल्याणकोंकी व्याख्या किसी भी शास्त्रमें नहीं है किन्तु 'पंच हत्थुत्तरे साइणा परि निव्वुडे' इस तरहके पाठसे छ कल्याणक तो अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने कहे हैं इसलिये राज्याभिषेकके नक्षत्रका नाम ले करके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध विनयविजयजीने किया सो तो गच्छ ममत्वके आग्रहका कारणके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और अब छठा यह है कि—श्रीस्थानांगजी सूत्रमें जिन भगवानोंके जिस जिस एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन्हीं भगवानोंमें श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके नाम तथा नक्षत्रपूर्वक पांचपांच कल्याणकोंकी गिनती दिखाई है वहां जैसे श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारकी गिनती

सहित पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें कहे हैं वैसेही जो श्रीआदिनाथ स्वामीका राज्याभिषेक कल्याणक मानेमें होता तो श्रीस्थानांगजीसूत्रमें भी श्रीगणधर महाराजको राज्याभिषेक सहित श्रीआदिनाथ स्वामीके भी पांच कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्रमें होनेका दिखाना पड़ता सो तो दिखाया नही है और गर्भापहारको तो खुलासापूर्वक दो वेर दिखाया है इसलिये भी राज्याभिषेकके पाठका तात्पर्यार्थको समझे बिना बालजीवोंके आगे राज्याभिषेकका पाठ दिखाकरके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने गर्भापहारके कल्याणकको कथन किया होते भी उसीका निषेधकरना सो हठवादकी अज्ञानताके कारण उत्सूत्रभाषणके विपाक सो भवांतरमें भोगे बिना नहीं छुट सकेंगे इसको भी निष्पक्षपाती पाठकगण स्वय विचार लेना

और अब सातवी वेरमें तत्वाभिलाषी सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि-विनय विजयजीने (पंचउत्तरा साढे इत्यत्र नक्षत्र साम्यत् राज्याभिषेको मध्येगणित पर कल्याणकानितु अभिइ छठे इत्यनेन सहपंचैव, तथात्रापि पंचहत्थुत्तरे इत्यत्र नक्षत्रसाम्यात् गर्भापहारो मध्येगणित पर कल्याणकानितु साइणा परि निवुडे इत्यनेन सहपंचैव) इन अक्षरोंको लिखके इसका मतलब ऐसे लाये हैं कि-'पंचउत्तरा साढे इस शब्दसे यहां नक्षत्रके सामान्यतासे राज्याभिषेकको अन्दर गिना है परतु'अभिइ छठे'इस शब्दसे श्रीआदिनाथ स्वामीके कल्याणक तो पांचही कहने तैसेही 'पंचहत्थुत्तरे'इसशब्दसे यहांभी नक्षत्र सामान्यतासे गर्भापहार को अन्दर गिना है परतु 'साइणा परिनिव्वुडे'इस शब्दसे श्री

महावीरस्वामीके भी कल्याणक तो पांचही कहने इसतरहका लेख विवेकशून्य मुग्धजीवोंको दिखाकर श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठसे श्रीवीरप्रभुके पांच कल्याणक स्थापन करके छठे कल्याणकका निषेध किया सोतो निष्केवल मायाचारीकी धूर्ततासे अथवा विद्वत्ताकी अजीर्णतासे विवेकी तत्वज्ञ विद्वानोंके सामने अपनीहांसी करनेका विनय विजयजीने वृथाही परिश्रम किया है क्योंकि राज्याभिषेकके पाठकी तरहसे श्रीवीर प्रभुके गर्भापहाररूप दूसराच्यवन कल्याणककी गिनतीपूर्वक शासनप्रतिके छ कल्याणक कदापि निषेध नहीं हो सकते हैं जिसका खुलासा तो ऊपरमेंही लिखा गया है परंतु यहां तो विनय विजयजीकी विद्वत्ताकी उत्कंठाईको प्रगट करके पाठकगणको दिखाता हूं कि-देखो 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस शब्दसे पांचका अर्थ विनय विजयजीने किया सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि 'पंचहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वडे' इस शब्दसे पांचकाही अर्थ किया जावे तो यह शब्दही शास्त्रकारका लिखना वृथा होजावे इसलिये जो विनय विजयजी तथा उन्होंके पक्षको ग्रहण करनेवाले वर्तमानिक तपगच्छके विद्वान् लोग जो शास्त्रकार महाराजके लिखनेको वृथा ठहराकरके अपनी इच्छानुसार अर्थ बनालेवे तबतो ढूंढक तथा तेरहापंथियोंकी तरह प्रत्यक्ष उलंठाइ सिद्ध होनेमें कोई बाकी नही है क्योंकि ढूंढिये तथा तेरहापंथी लोग गणधर महाराज कृत मूलसूत्रोंको माननेका पुकार पुकारके लोगोंके आगे कहते हैं परंतु जगह जगह पर गणधर महाराजके विरुद्धार्थमें अपनी मति कल्पनासे प्रत्यक्ष असंगत अर्थकरके बालजीवोंको अपने कदाग्रहकी भ्रमजालमें

फसानेके लिये उलठाई करनेमें कुछ कमती नहीं करते हैं तैसेही 'पचहत्थुत्तरे साइणा परि निवुडे' इस पदका गणधरमहाराजके विरुद्धार्थमें विनय विजयजीने अपनीमति कल्पनासे प्रत्यक्ष असगत पांचका अर्थकरके बालजीवोंको अपने कदाग्रहकी भ्रम जालमें फंसानेके लिये खूबही उलठाइकरी है तथा वर्तमानिक तपगच्छवाले विद्वान् नाम धराते भी ऐसी उलंठाइसे प्रत्यक्ष असंगत अर्थकरते कुछ लज्जाभी नहीं पातेहैं यहभी पाखडपूजा नामक अच्छेरेका कलयुगी प्रभाव ही मालूम होता है क्योंकि विवेकी विद्वान् तो उपरके शब्द से पांचका अर्थ कदापि नही करेंगे और न कोई मान्य करे परतु अंध परपराका हठवादकी तो अलौकिक आश्चर्य कारक महिमा जुदीही होतीहै इसमें कोई विशेषता नही है,

और बडेही खेदकी बात है कि-उपरके शब्दमें (पाँच हस्तोत्तरामें तथा छठा स्वातिमें यह) छहों कल्याणकोंका प्रगटपने खुलासा अर्थ होते भी विद्वताके अभिमानसे अपनी कल्पनासुजब पांचका अर्थकरके भोले लोगोंमें दिखानेवाले विनयविजयजीको तथा वर्तमानिक तपगच्छके विद्वानोको इतने वर्षोंमें कोई भी समझाने वाला नहीं मिला या तपगच्छके उन्होंकी समुदायमें कोईभी विवेकी, तत्वज्ञ, आत्मार्थी, इस अनर्थको हटाने वाला बुद्धिमान नहीं हुआ जिससे वर्तमानमें हरवर्ष गांवगांवमें इतना अनर्थ कारक अंध परपराके मिथ्यात्वको पुष्ट करके परभवका किंचित्मात्र भी हृदयमें भय कोईभी नही लाते हैं, क्याबडी आश्चर्यकी बात है कि-श्रीकल्पसूत्रकी पूर्वाचार्यों ने अनेक टीकाओं बनाइ है उन्होंमें उपरके पदकी भी व्याख्या

करी है जिसमें छ के पाठका पांचका अर्थ सो किसी जगह देखनेमें नहीं आया तथापि विनय विजयजीने तथा वर्तमानिक तपगच्छवाले विद्वान कहलाते हुए भी सूत्रकार महाराजके तथा वृत्तिकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें प्रत्यक्षपने उलटा अर्थ किया तथा करते हैं सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अथवा विध्वताकी अजीर्णताके सिवाय और क्या होगा क्योंकि उपरके शब्दसे पांचका अर्थ किसी भी पूर्वाचार्य्यने किसी जगहपर भी नहीं लिखा है तथा प्रत्यक्ष युक्तिके विरुद्ध होनेसे होभी नहीं सकताहै और 'पंच हत्थुत्तरे साइणा परि निव्वुडे' इससे पांचका अर्थ करके सूत्रकार महाराजका वाक्यार्थ भंग भी नहीं हो सकता है इसलिये सूत्रकार महाराजके अपेक्षा सम्बन्धी अभिप्रायको समझे बिना अपनी कल्पना मुजब अर्थ मान लेना या लिख देना संसार वृद्धिका हेतु है सो ही करनेका कारण उपरके विद्वानोंने किया मालूम होता इसलिये जो ऊपरके पदको सूत्रकार महाराजका वाक्यार्थपूक वर्तमानिक तप गच्छके विद्वान लोग सत्य मानते होवे तबतो पांचका अर्थ करें जिसका मिच्छामिदुक्कडं देना चाहिये क्योंकि जब छहों कल्याणकोंकी पृथक् पृथक् व्याख्याकरके सूत्राकारनेखुलासा दिखा दी तो फिर पांचका अर्थ करके सूत्राकारके वाक्यार्थका भंग करना कौन बुद्धिमान मान्य करेगा अपितु कोई भी नहीं और राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपना प्राप्त नहीं हो सकता है जिसके कारण भी उपरमें लिखे गये है तथा खास विनयविजयजीके ही परम पूज्य श्रीतपगच्छीय श्रीहीरविजयसूरिजीके सन्तानीय श्रीशांतिचन्द्रगणिजीने श्रीवीर प्रभुके

गर्भापहारके कल्याणककी तरह राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है इसका खुलासाके साथ श्रीजबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रकी वृत्तिमें व्याख्या करीहै जिसका सब पाठभी न्यायाभोनिधि-जीके छ कल्याणक निषे ध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा आगे लिखुंगा वहां दिखानेमें आवेगा ।

और (श्रीआचाराग टीका प्रभृतिषु पच हत्थुत्तरे इत्यत्र पच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि) इन अक्षरो करके श्रीआचारांगजी सूत्रकी वृत्ति वगैरह शास्त्रोमें 'पच हत्थुत्तरे' शब्दकी व्याख्या करते वृत्तिकारने पांच वस्तु कही हैं परन्तु पाच कल्याणक नहीं कहे । इस तरहका लिखके विनयविजयजीने श्रीवीर प्रभुके चरित्रकी आदिमें ही कल्याणकाधिकारे पांचो कल्याणकोका अभाव दिखाया सो तो अपने गच्छ कदाग्रहका हठवाद स्थापन करनेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व करके भोले जीवोको भी-उसीके भ्रममें गेरनेके लिये विचित्र मायाचारीका नमूना प्रगटपने मालूम होता है क्योंकि देखो खास आपनेही श्रीकल्पसूत्रकी सुबोधिकावृत्तिमें वर्त्तमानिक शासनमें मगलिकके लिये, जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवीरप्रभुका चरित्रकथन करते उसीकी आदिमेंही "तेण कालेणं तेण समएणं समणे भगव महावीरे पंच हत्थुत्तरे हुत्था ॥-तथा॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवं" इस मूल सूत्रके पंक्तिकी व्याख्या करते "श्री-वर्द्धमानस्वामिन पयणा च्यवनादि वस्तूना कारण बभूव" इत्यादि ॥तथा॥ पच हत्थुत्तरेत्ति, हस्तोत्तरा उत्तरा फाल्गुन्य गणन्या ताभ्यो हस्तस्यउत्तरत्वात् ता. पंचसु स्थानेषु यस्यस पच हस्तोत्तरो भगवान्, होत्थत्ति, अभवत् ॥और॥

'साइणा परिनिव्वुडे भयवंत्ति' स्वाति नक्षत्रे मोक्ष गतो भगवान्॥ इस तरहकी व्याख्या करी है और इसी तरहसे मध्यम वाचनामेंभी-च्यवन, गर्भापहार, जन्म, दीक्षा, ज्ञान, मोक्ष, इन छहों वस्तु तथा स्थानोंके छहों नक्षत्रोंका खुलासा लिखा है जिसका सब पाठ तो इसी ग्रन्थके पृष्ठ ४६२।४६३ में छप गया है और उत्कृष्ट वाचनामें तो-च्यवन, गर्भापहार, जन्मादिकके मास, पक्ष, तिथिपूर्वक विस्तारसे व्याख्याकरी है सो च्यवनादि पांच हस्तोत्तरा नक्षत्रमें और छठा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें यह छ वस्तु तथा स्थान शब्दका श्रीतीर्थंकर महाराजके चरित्रकी आदिमेंही प्रसंगसे तथा तात्पर्यार्थसे कल्याणकका ही अर्थ निकलनेसे तो श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध होगये जिससे अपने मंतव्यमें विरोध आने लगा तब विनयविजयजीने (ननु पंच हत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे इत्यनेन श्रीमहावीरस्य षट् कल्याणकत्व सम्पन्नमेव) इस तरहका प्रश्न बनाकरके उसीका निषेध करनेके लिये 'नैवं एवं उच्यमाने उसभेणं अरहा इत्यादि' वाक्य लिखके शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंका तथा कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके श्रीवीरप्रभुकी अवज्ञा करते हुए निजपरको दुर्लभबोधिका कारणरूप अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहका भ्रममें फसानेके लिये इतना परिश्रम किया क्योंकि वस्तु तथा स्थान शब्द कल्याणकका अर्थवाला जो विनयविजयजी मान्य नहीं करते तो छ कल्याणकोंकी सिद्धिसे उसीके निषेध करनेकी चर्चाका प्रसंग कदापि नहीं लाते परन्तु लाये इसीसे ही विवेकी तत्वज्ञ तो स्वयं विचार सकते है कि

खास विनयविजयजीने ही वस्तु तथा स्थान शब्दका कल्याणक अर्थ अपने दिलमें मजूर करलिया तबही तो अपने मतव्यमें विरोधके भयसे उसीके निषेधकी चर्चामें "पंच हत्थुत्तरे, इत्यत्र पंच वस्तून्येव व्याख्यातानि नतु कल्याणकानि" इस तरहके अक्षर लिखके गच्छ कदाग्रहकी मायाचारीसे उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका उद्यम करते संसार वृद्धिका कुछभी अपने हृदयमें भय न किया सो बड़ा ही आश्चर्य्य सहित अफसोस है

और अब फिर भी सत्यग्राही पाठक वर्गसे मेरा यही कहना है कि-वस्तु शब्दका तथा स्थान शब्दकाभी सबन्ध से कल्याणक अर्थ खुलासा पूर्वक सिद्ध होता है इसलिये इसमें कोई तरहका सन्देह नहीं करना क्योंकि देखो वस्तु शब्दका (उत्तममें मध्यममें अधममें इष्टमें अनीष्टमें धर्म्ममें अधर्म्ममें लोकमें अलोकमें और जीव अजीवादि) सब पदार्थोमें तथा सर्वलिङ्गोंमें और सर्व अर्थोमें व्यवहार किया जाता है इसलिये जैसे-ज्ञान दर्शन चारित्र वस्तु, धर्म्म वस्तु, शाश्वत चैत्य प्रतिमा वस्तु, और मोक्ष देवलोक आदि सबको वस्तु शब्दसे व्यवहार करते हैं तैसे ही मगलिकके लिये श्रीतीर्थंकर महाराजके चरित्रका वर्णन करते श्रीवीरप्रभुके च्यवन गर्भापहार जन्मादिकोकोभी वस्तु शब्दसे व्यवहार करके श्रीदशाश्रुतस्कन्धकी चूर्णि वगैरह शास्त्रोमें व्याख्या करी सोही च्यवन गर्भापहार जन्मादिकोंको कल्याणक समझने चाहिये क्योंकि यद्यपि वस्तु शब्दका अर्थ सम्बन्धपूर्वक प्रसगसे लिया जाता है सो यहा च्यवनादि कल्याणकोंका सम्बन्ध होनेसे श्रीवीरप्रभुके चरित्रकी

आदिमें च्यवनादिकोंको वस्तु कही वही च्यवनादिकोंको कल्याणकही माने गये क्योंकि वस्तु शब्द पर्यायवाची गुण युक्त भावनावाला होता है और श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छहों वस्तुओंमें पर्यायवाचीत्वसे तथा गुण युक्त पनेसे और भावनासे भी छहों कल्याणकोंका अर्थके सिवाय दूसरा कोई भी अर्थकी सङ्गति कदापि नहीं हो सकती है इसलिये यहां च्यवनादिक कल्याणक शब्दके च्यवनादिक वस्तु शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक सिद्ध होगया सो विवेकी तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'वत्थु सहावो धम्मो' याने 'वस्तु स्वभावो धर्मः'॥ इस शब्दके न्यायानुसारभी जैसे च्यवनादि वस्तुओंमें श्री-तीर्थंकर महाराजकी माताके चौदह स्वप्न देखने वगैरहका तथा छप्पनदिक्कुमारी चौसठइन्द्रोंके जन्ममहोत्सव करने वगैरहका नियमीत अनादि मर्यादा रूप धर्म हैं तैसेही च्यवनादि वस्तुओंमें कल्याणकत्वपनेकाही अनादिधर्म होनेसे च्यवनादि वस्तुओंका च्यवनादि कल्याणकही अर्थसिद्धहोता है इसमेंकोई बाधानहींहोसकतीहै इसबातकोभी निष्पक्ष-पाती विवेकी तत्वज्ञ पाठकजन अपनीबुद्धिसे विचार लेना,

देखिये बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि-शासन नायक परमउपकारी श्रीवर्द्धमान स्वामीका चरित्र वर्णन करते भग-वान्के च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकका अभाव दिखानेवाले विनयविजयजीको तो अपने गच्छकदाग्रहके हठवादकी कल्पित बातको जमानेके लिये शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उलटा अर्थ करके बालजीवोंको दिखाते उत्सू-त्रभाषणसे आत्मविराधनाका कुछभी विचार नहींआया-

होगा परन्तु वर्तमानिक तपगच्छके विद्वानोंको भगवान्के च्यवनादिकोको वस्तुकहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करते अपनी आत्मविराधनाका कुछभी भय क्यो नहीं आता है क्योंकि च्यवनादिकोको ही शास्त्रकारोने कल्याणककहे हैं तथा च्यवनादिकोको ही वस्तु भी कही है और वस्तु शब्द कल्याणकका अर्थवाला है जिसका निर्णयतो उपर-मेंही लिखा गया है इसलिये वस्तु कहके कल्याणकका निषेध करना सो अंधपरंपराके हठवादका आग्रहसे अपने तथा दूसरे भोलेजीवोके सम्यक्त्वरत्नको हाणी पहुचानेवाला उत्सूत्र भाषण करना आत्मार्थियोको उचित नहीं है

और आत्मार्थीभव्यजीवोंके उपकारके लिये श्रीतीर्थंकर महाराजका चरित्र वर्णन करते च्यवनादिकोको वस्तु कहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेवाले च्यवनादिकोके विना अन्य कल्याणक किसको बतलाते होवेंगे क्योंकि च्यवनादिक वस्तु सोही कल्याणकोके सिवाय अन्य कल्याणक तो किसी भी शास्त्रमें देखनेमें नही आते हैं तथा सुननेमें भी नही आये हैं और च्यवनादिकोके विना दूसरे कल्याणक होभी नहीं सकते हैं इसलिये जो च्यवनादिकोंको ही कल्याणक कहने तथा उन्ही च्यवनादिकोको वस्तु भी कहना और फिर च्यवनादिकोको वस्तु कहके कल्याणकत्वपनेसे निषेध भी करनेका परिश्रम करना सो यह तो बाल लीलावत् युक्ति विरुद्ध होतेभी इसका हठ नहीं छोड़नेवालोंको दीर्घसंसारी अन्तरमिथ्यात्वी कहनेमें कोई हाणी होती होवे तो विवेकी तत्वज्ञोको अच्छीतरहसे विचार करना चाहिये

और इसी तरहसे पांच स्थान शब्दकाभी पांच

कल्याणक अर्थ होता है, जैसे-किसीको, तीन आदमियोंमेंसे पहिलेने पूछा—श्रीआदिनाथ स्वामीका मोक्ष स्थान किस जगह पर तथा दूसरेने पूछा-मोक्ष कल्याणक किस जगह पर और तीसरेने पूछा-मोक्ष गमन किस जगह पर इस तरहके तीनों प्रश्नोंके तीनों शब्दोंका तात्पर्यार्थ एक होनेसे सबके उत्तरमें श्रीअष्टापदजी पर कहना होगा सो इसी मुजब ही सबी तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच स्थान कहो अथवा पांच पांच कल्याणक कहो दोनों शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक है 'यति मुनि साधू वत्' इसी कारणसे श्रीस्था-नांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानके प्रथम उद्देशमें श्रीगणधर महाराजने श्रीतीर्थंकर महाराजोंके कल्याणकाधिकारे १४ भगवानोंके पांच पांच कल्याणकोंके नक्षत्र गिनाये हैं उसीकी व्याख्या करते श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि कल्याणकोंके मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, नगरीस्थान, वगैरहका खुलासाकी व्याख्यामें च्यवनादिपांच पांच स्थान कहके यहां स्थान शब्दका व्यव-हार किया सो उपरके न्यायानुसार कल्याणकका ही कथन समझना चाहिये और इस बातका विशेष निर्णय न्यायांभो-निधिजीके लेखकी समीक्षामें आगे लिखनेमें आवेगा

और श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीपंचाशकजी सूत्रके तथा श्रीअभयदेवसूरिजी कृत तद्वृत्तिके अभिप्रायको समझे बिना ही श्रीवीरप्रभुके पांच कल्याणकोंके दिन दिखाकर जो छठा कल्याणक होता तो उसीका भी दिन कहते, इस तरहका लिखा सोभी अज्ञानताका कारण है क्योंकि वहां तो भरत क्षेत्रकी तथा ऐरवर्त क्षेत्रकी उत्सर्पिणी और

अवसर्पिणीमें हो गई तथा होनेवाली सबी चौवीसीओके सबी तीर्थंकर महाराजोकी बहुत अपेक्षा सम्बधी लिखनेमें आया है और सबी तीर्थंकर महाराजोंके छ छ कल्याणक नहीं होते हैं इसलिये उस प्रसगमें छठे कल्याणकका दिन नहीं कहा है परन्तु खास श्रीमहावीर स्वामीके चरित्राधिकारे तो अनेक शास्त्रोंमें छठे कल्याणकका दिन खुलासे लिखा हैं तथा उपरकी बातका विशेष विस्तार पहिलेही न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें लिखनेमें आगया है।

और उपरोक्त सुखबोधिकामें खास विनयविजयजीने ही चौदह स्वप्नाधिकारे [त्रिशला क्षत्रियाणी 'तप्पढमया एति,तत्प्रथमतया प्रथम इत्यर्थः। इभ स्वप्नं पश्यतीति संबध, अत्र प्रथम इभ पश्यतीति बहुभिर्जिनजननीभिस्तथा दृष्टत्वात्पाठानुक्रममपेक्ष्योक्तं अन्यथा ऋषभदेव माता प्रथम वृषभ वीर माता च सिंह ददर्शेति] इस तरहका पाठ लिखा है इसका मतलब यह है कि-त्रिशला माताने प्रथम स्वप्नमें हस्थी देखा ऐसा सूत्रकारने लिखा सो बहुत तीर्थंकरो के माताकी अपेक्षासे लिखा है, नहीतो श्रीआदिनाथ स्वामीकी मरुदेवी माताने तो प्रथम स्वप्ने वृषभको और श्रीवीरप्रभुकी त्रिशला माताने प्रथम स्वप्ने सिंहको देखा है परन्तु शेष बहुत तीर्थंकर महाराजोंकी माताने प्रथम स्वप्नमें हस्तीको देखा इसलिये बहुत अपेक्षासे श्रीवीर प्रभुकी माताके सम्बन्धमें भी प्रथम स्वप्नमें हस्ती देखनेका सूत्रकारने लिखा है—

अब इस जगह भी विवेकी पाठकगणको विचार करना चाहिये कि—जैसे श्रीवीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्नमें सि-

हको देखा तिसपरभी बहुत अपेक्षासे शास्त्रकारने हस्ती लिखा, तैसेही श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणोंके दिवसोंको अनेक शास्त्रोंमें खुलासे लिखे होतेभी श्रीपंचाशकजीमें तथा उसीकी वृत्तिमें बहुत तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी अपेक्षासे श्रीवीर प्रभुकेभी पांच कल्याणक लिखे उससे छठा कल्याणक कदापि निषेध नहीं हो सकता है सोतो निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ पुरुषोंको अच्छी तरहसे विचार लेना चाहिये ।

तथा औरभी पाठक वर्गको विनयविजयजीकी प्रत्यक्ष मायाचारीका नमूना दिखाता हूं कि-देखो विनय विजयजी बड़े विद्वान् तथा विशेष करके श्रीजैन शास्त्रोंके जानकार प्रसिद्ध कहलाते थे इसलिये श्रीआवश्यक निर्युक्तिमें१ तथाचूर्णिमें २, श्रीअभयकुमार चरित्रमें ३, श्रीसुलसा चरित्रमें ४, श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्रमें ५, तथा तद्वृत्तिमें ६, श्रीत्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्रमें ७, तथा श्रीवीरप्रभुके तीनों चरित्रोंमें १०, और श्रीकल्पसूत्रमें ११, तथा इन्हीं सूत्रकी ९ (नौ) व्याख्याओंमें २०, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकके दिवसको प्रगटपने लिखा हुआहै जिसको जानते होतेभी बाल जीवोंको अपने गच्छ कदाग्रहके भ्रममें गेरनेके लिये श्रीपंचाशकजी सूत्र वृत्तिके अभिप्रायको समझे विना 'यदि षष्टं स्यात्तदातस्यापिदिन वक्तव्यात' 'जो छठा कल्याणक होता तो उसीकाभी दिवस कहते' ईसतरहका लिखके भोलेजीवोंको दिखाया सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं——

और अब इस जगह पाठकवर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये श्रीवीरप्रभुके छठेकल्याणके दिवसको दिखानेके लिये यहां श्रीआवश्यकचूर्णिका पाठ दिखाता हूं सो पृष्ठ८४वे में प्रथम च्यवन कल्याणकका पाठ नीचे मुजब है यथा–

तेणकालेण तेणसमएण समणे भगव महावीरे जेसे गिम्हाणं चउत्थेमासे अट्ठमेपक्खे आसाढसुद्धे तस्सणं आसाढ़ सुद्धस्स छठी दिवसेण महाविजय पुप्फुत्तर पवर पुंडरीयातो महाविमाणातो वीससागरोवम ठितीयातो अणतरं चयं चइत्ता इहेव जंबूद्दीवेदीवे भारेहे वासे इमीसे उसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कताए, एव सुसमाए, सुसम दुसमाए, दुसम सुसमाए, बहु वितिक्कताए सागरोवमकोड़ा कोडीए बायालीस वास सहस्सेहि ऊणिआये पचहत्तरिवासेहि अद्धन- वमेहिय मासेहि सेसाएहि एक्कवीसाए तित्थगरेहि इक्खाग कुल समुपन्ने हि कासवगुत्ते हि दोहिय हरिवंस कुलसमुपन्नेहिं गोतमसग गोत्तं हि तेवीसाए तित्थगरेहि वितिक्कतेहि समणे भगवमहावीरे चरमतित्थगरे पुव्वतित्थगर निदिट्ठे माहण कुडग्गामे णगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गोत्तस्स भारियाए देवाणदाए महाणीए जालधरम गोत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयसि हत्थुत्तराए णक्खतेण जोगमुवागतेण आहार वक्कतीए भववक्कतीए सरीरवक्कतीए कुच्छिडसि गब्भ- ताए वक्कते समणेभगवमहावीरे त्तिणाणोवगते आविहुत्था– चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ चुएमित्ति जाणइ,

और इसके आगे चौदह स्वप्न तथा नमुत्थुण वगैरहका अधिकार है फिर आगे पृष्ठ ९६ वेमें गर्भहरणसे गर्भसक्रमणरूप दूसरा च्यवन कल्याणकका पाठ नीचे मुजब है यथा–

तेणंकालेणं तेणंसमएणं समणे भगवं महावीरे तिणाणोव गते आविहोत्था साहरिज्जस्सामिति जाणति साहरिज्ज माणे ण जाणति साहरितेमिति जाणति ॥ तेणं कालेणं २ समणे भगवं महावीरे जेसे वासाण तच्चे मासे पंचमेपक्खे आस्सोय बहुले तेरसीय पक्खेण बासीतिराइन्दिएहिं वितिक्कंतेहि तेसीतिमस्स रातिदिवस्स अंतरावट्टमाणेहिं आणुकंपएण देवेण महाण कुंडगामाओ । जाव । अद्धरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं णक्खतेण अव्वाबाहं अव्वा बाहेण देवाणंदाए कुच्छीउति तिसलाए कुच्छिंसि साहरिते ॥इत्यादि॥ इसके आगे फिर चौदह स्वप्नादिकका और जन्मादिका वर्णन है—

और अब हरवर्ष बंचाता हुआ सुप्रसिद्ध श्रीकल्पसूत्रका पाठ दिखाता हूं सो नीचे मुजब है यथा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पख्खे आसाढ़सुद्धे तस्सणं आसाढ़सुद्धस्स छट्ठी पख्खेणं महाविजय पुप्फुत्तर पवर पुंडरीयाओ महा विमाणाओ वीसंसागरोवम ट्ठिइयाओ आउख्खएणं भवख्खएणं ठिइख्खएणं अणंतरं चयंचइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणद्ध भरहे इमीसे उसप्पिणीए, सुसम सुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसम दुसमाए समाए विइक्कंताए, दूसम सुसमाए समाए बहु विइक्कंताए, सागरोवम कोडा कोडीए बायालीस वास सहस्सेहिं ऊणिआए पंचहत्तरि वासेहिं अद्ध नवमेहिय मासेहिं सेसेहिं-इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इख्खाग कुल समुप्पन्नेहिं कासव गुत्तेहिं, दोहिय हरिवंसकुल समुप्पन्नेहिं गोयमस्सगुत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं विइ-

क्कतेहिं, समणे भगव महावीरे चरम तित्थयरे पुव्वतित्थयर निद्दिट्ठे, माहण कुण्डगामे नयरे उसमदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेण जोग मुवागएण आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीर वक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥ समणे भगव महावीरे तिन्नाणोव गए आविहुत्था—चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ चुएमित्ति जाणइ,

इसके आगे चौदह स्वप्न नमुत्थुण वगैरहकी व्याख्या है और फिर देवानंदाकी कुक्षिसे त्रिशलाकी कुक्षिमें स्थापन करनेको गर्भ हरणसे गर्भसंक्रमण रूप दूसरा च्यवन कल्याणकका पाठ नीचे मुजब है यथा—

तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था-साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिएमित्ति जाणइ ॥ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे जेसे वासाणं तच्चेमासे पचमे पक्खे आसोअ बहुले, तस्सण आस्सोय बहुलस्स तेरसीपक्खेण बासीइराइ-दिएहिं विइक्कतेहिं तेसीइमस्स राइदिअस्स अतरावट्टमाणेहिं, आणुकपएण देवेण हरिणेगमेसिणा सक्कवयण संदिट्ठेण माहण कुण्डगामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालधरस गुत्ताए कुच्छीओ खत्तिय कुण्डगामे नयरे नायाण खत्तियाण सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासव गुत्तस्स भारिआए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठस गुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्तकाल समयंसि हत्थुत्तराहिं

नक्खत्तेण जोग मुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, ॥ इत्यादि ॥ इसके आगे चौदह स्वप्न वगैरहका तथा जन्मादिका वर्णन है

उपरके दोनों पाठोंका संक्षिप्त भवार्थः—तिसकाल और तिससमये श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामी आषाढ़ शुदी ६ को दशम देवलोकके सबसे श्रेष्ट पुष्पोत्तर नामा विमानसे देवत्वपनेके परिपूर्ण वीससागरोपमका आयुष्यकी स्थितिको तथा देवसम्बन्धी भवको क्षयकरके सरलगतिसे इसी जम्बूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रे इसी अवसर्पिणीमें दुःखम सुखमा नामा एककोडाकोडी सागरोपमसे ४२ हजार वर्ष न्युनके प्रमाणवाला चौथा आराके अन्तमें उसीके ७५ वर्ष और ८। महिने शेष रहते तथा २३ तीर्थंकर हुए बाद चरम तीर्थंकर श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामी माहणकुंड ग्रामनगरमें कोडाल गौत्रके ऋषभदत्तनामा ब्राह्मणकी जालंधरनामा गौत्राकी देवानन्दा नामा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रे चन्द्रके योगमें गर्भपने उत्पन्न हुए सो देवसम्बन्धी आहारका शरीरका और भवका त्यागकरके जब उत्पन्न हुए तब भगवान्को मति श्रुति और अवधि यह तीन ज्ञानथे इसलिये ज्ञानसे मैं यहां देवलोकसे च्यवकरके माताकी कुक्षिमें उत्पन्न होऊंगा ऐसा जानते थे परन्तु च्यवनका काल १ समय मात्रका होनेसे उसी वख्तको नहीं जाना और उत्पन्न हुए बाद फिर ज्ञानसे जान लिया

और इसीतरह तिसकाल तिस समय वहांसे आश्विन वदी १३ को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें इन्द्रके कथनानुसार हरिणेगमेषिदेवने देवानन्दाकी कुक्षिसे संहरणकरके क्षत्रिय

कुंडग्राम नगरके काश्यप गौत्राके सिद्धार्थराजाकी वासीष्ट गौत्रकी त्रिशलाराणीकी कुक्षिमें बाधा रहित भक्तिपूर्वक देवशक्तीसे स्थापित किये उसी समयमेंभी भगवान्‌को तीन ज्ञानथे इसलिये देवानन्दा माताकी कुक्षिसे सहरण होकरके मेरा त्रिशला माताकी कुक्षिमें आना होगा ऐसा जानतेथे परन्तु उसी समयको अल्पकालके कारणसे नही जान सके और त्रिशलामाताकी कुक्षिमें आये बाद फिर जान लिया

यहां पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि उपरके श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठकी नौ (९) टीकाओंमें ही उपरके भावार्थ वाली ही विस्तारपूर्वक व्याख्या है परन्तु सबके पाठ इहां लिखनेसे बहुत विस्तार होजावे तथा कितनीही टीकायेंतो हरवर्ष श्रीपर्युषणपर्वमें गाव गाँवमें वांचनेमें आतीभी है इसलिये उन्होंके पाठ और भावार्थ प्रसिद्ध होनेसे यहां नहीं लिखता हूं और उपर मुजबही खास विनय विजय जीने ही अपनी बनाई सुबोधिकावृत्तिमें भी विस्तारसे व्याख्या करीहै जिसमें ब्राह्मण कुलमें देवानन्दामाताकी कुक्षिसे क्षत्रिय कुलमें त्रिशला माताकी कुक्षिमें आनेकी व्याख्या करते १ श्लोक विशेष करके कहा है उसीकोही यहां दिखाता हू यथा—

सिद्धार्थ पार्थिव कुलाय गृहप्रवेश, मौहूर्त्त मागमयमान इवतया यः ॥ रात्रिंदिवान्युषितवान् द्वयशीतिं जिनानाम् विप्रालये स चरमो जिनराट् पुनातु ॥१॥

इस श्लोकका मतलब ऐसा है कि भगवान् भव्यजीवोंके उपकारके लिये मानो सिद्धार्थ राजाके उत्तम कुलमें प्रवेश करनेके लिये अच्छा मुहूर्त्त देखनेके लिये ८२ दिवसतक ऋष-

ऋदत्त ब्राह्मणके घरमें ठहर गये ऐसे वो भगवान् चरम जिनेश्वर महाराज श्रीवीरप्रभु भव्यजीवोंका कल्याण करो

अब देखिये उपर्युक्त शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीवीरप्रभुके देवलोकका च्यवनसे देवानन्दा माताकी कुक्षिमें उत्पन्न होना सो आषाढ़ सुदी ६ के प्रथम च्यवन कल्याणककी तरह ही देवानन्दामाताकी कुक्षिसे गर्भ संहरणसे त्रिशला माताकी कुक्षिमें संक्रमण हुआ सो आश्विनवदी १३ को गर्भापहाररूप दूसरा च्यवन कल्याणकका भी खुलासा पूर्वक वर्णन है और जन्म, दीक्षा, ज्ञान, मोक्ष, तो प्रगट है इसलिये अपने गच्छ पक्षका आग्रह छोड़करके श्रीवीरप्रभुके छहों कल्याणकोंको आत्मार्थियोंको मान्य करने चाहिये क्योंकि 'समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था चइस्सामित्ति जाणइ चयमाणे न जाणइ चुएमित्तिजाणइ' इस पाठकी तरह ही 'समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ संहरिज्जमाणे न जाणइ साहरिएमित्ति जाणइ' यहभी पाठ समान होनेसे तथा मास पक्ष तिथि नक्षत्रका और चौदहस्वप्न देखने वगैरहका खुलासाभी दोनों वैर प्रगटपने होते भी एकको कल्याणक मानना और दूसरेको कल्याणक नहीं मानना यह तो प्रत्यक्ष करके अन्यायकी बात झूठे पक्षके हठवादियोंके सिवाय आत्मार्थी न्यायवान् पुरुषतो कदापि मान्य नहीं कर सकते हैं तथा न कर सकेंगे इस बातको विवेकी तत्वज्ञ जनतो स्वयं विचार लेवेंगे,—

और अब फिरभी पाठकगणको विशेष निःसन्देह होनेके लिये श्रीवीरप्रभुके छहों कल्याणकोंकी पृथक् पृथक्

व्याख्या सम्बन्धी शास्त्र पाठ दिखाताहूं श्रीचन्द्रतिलको पाध्या-यजी कृत श्रीअभयकुमार चरित्रके पृष्ठ १८९ में षट् कल्याणक विषयिक खुलासा पूर्वक पाठ है सो नीचे मुजब है यथा—

नाथ प्राणत कल्पीय, पुष्पोत्तरविमानत ॥ 'देवानन्दोदराम्भोजे, राजहंसइवस्वयं १ ॥ यदीयश्वेतपक्षस्यात्वा मवतारीसदाशुचिः ॥ तस्यापाढस्यमासस्य, शुचितासङ्गतैवहि ॥ २ ॥ आश्विनाद्यत्रयोदश्या, देवानन्दो दरात्तथा॥ त्रिशलाया श्रितेकुक्षौ, त्वयिचित्तविधायिनी ॥३॥ यद्बभूवतरामेषा,सिद्धसर्वमनोरथा। तन्मन्ये तद्दिनाज्जज्ञे, सर्वसिद्धा-त्रयोदशी ॥४॥ यत्यशुक्लत्रयोदश्या, जातमात्रोपित्वम्प्रभो ॥ स्नानक्षणेसुराधीश, शङ्कोहरणहेतवे ॥५॥ लीलयाचालयेन्मेरुं, पवित्रमकृथास्तरां नासोयमभवच्चैत्रो, जन्महेतस्ययोगत. ॥६॥ जिननाथयदीयार्यं माद्यायादशमीतिथौ ॥ निर्वाणमार्गमूर्द्धांनं, सर्वचारित्रलक्षण ॥७॥ दुर्गमव्यसहायोऽपि, त्वमुच्चैः प्रतिपन्नवान् । तस्यमासस्य युक्तैव, विद्यतेमार्गशीर्षता ॥ ८ ॥ दशम्यांवस्यशुक्लायां, घातिकर्ममहोदधि ॥ विलोड्य शुक्लध्यानेन, वैशाखेनगरीयसा ॥ ९ ॥ केवलज्ञानपीयूष, जरामरणहारक ॥ अग्रहीस्तस्यमासस्य, युक्तावैशाखताप्रभो ॥ १० ॥ कल्याणकानिपञ्चापि,समजायन्ततेप्रभो ॥ उत्तराफाल्गुनीष्वेव, लभ्य येनलभेतम ॥ ११ ॥ तव निर्वाणकल्याण, यत्पवित्रयिता प्रभो । स्तिथ्यादि नजानामि, मादृशोध्यक्षवेदिन ॥ १२ ॥ षड्भि कल्याणकैरेवं, स्तुतश्रीरजिनेश्वर 'यथाजयामिमामारिषट्क मद्यस्तथाकुरु ॥ १३ ॥

और श्रीजयतिलकसूरिजीकृत श्रीसुलसाचरित्रमें छ कल्याणक सम्बन्धी व्याख्याहै उसीका पाठ नीचे मुजब है यथा—

देवानन्दोदरे श्रीमान् श्वेतषष्ठ्यां सदा शुचिः ॥ अवतीर्णोऽसिमासस्सा षाढस्य शुचिता ततः ॥ १ ॥ त्रिशाला सर्व सिद्धेच्छा, ऽयोदश्यांमभूद्यतः ॥ तवावतारस्तेनैषा, सर्व सिद्धा त्रयोदशी ॥ २ ॥ शुक्लत्रयोदश्यांयश्चा चलमेरु प्रचालयन् ॥ चित्रं कृतवास्तद्योगा च्चैत्रमासोऽपि कथ्यते ॥ ३ ॥ यस्माद्य दशम्यांदुगं मोक्षमार्गस्यशीर्षकं ॥ चारित्रमादृतं युक्ता, मासोऽस्यमार्गशीर्षता ॥ ४ ॥ दशम्यांयस्यशुक्लायां, केवल श्रीरहोत्वया॥ त्वादत्तातेनमासोऽस्य, युक्तामाधवता प्रभो ॥५॥ तवनिर्वाणकल्याणं, यद्दिनंपावयिष्यति॥ तन्नवेद्मियतोनाथ, मादृशोऽध्यक्षवेदिनः ॥ ६ ॥ सिद्धार्थ राजांगज देवराज, कल्याणकैबह्भिरितिस्तुतस्त्वम् ॥ तथाविधेत्त्वांतरवैरिषट्कं यथा जयाम्याशु तवप्रसादात् ।७॥

उपरके दोनों पाठोंका भावार्थ कहते हैं कि, हे—नाथ प्राणत कल्पनामा दशवें देवलोकके पुण्योत्तर विमानसे देवानन्दा माताके उदर रूपी कमलमें राजहंसकी तरह जिस आषाढ़ मासकी शुक्ल षष्ठीको तीर्थंकरत्व पनेकी लक्ष्मी करके युक्त आपने अवतार लिया सो आप सदा (हमेसां) पवित्र हैं वो आपके पवित्र अवतारसे भव्य जीवोंको पवित्रता प्राप्त होवे इसमें तो कोई आश्चर्य्य नहीं है परन्तु आपके अवतारसे मासको भी पवित्रता प्राप्त हो गई यह बड़ा आश्चर्य्य हुआ इसीही कारणसे आषाढ़को शास्त्रोंमें शुचि नाम पवित्र कहा है सो युक्तही है, तथा आश्विन कृष्णत्रयोदशीको देवानन्दा माताके उदरसे मनको आनन्दके उत्पन्न करनेवाले ऐसे आप त्रिशला माताके उदर में विराजमान हुए सो आपके यहां पधारनेके कारणसे ही

उसी दिन त्रिशला माता सर्व प्रकारके मनोर्थ वांच्छित कार्यों को पूर्ण करने वाले महामङ्गलीक कल्याणकारी चौदह स्वप्नोंसे आनन्दित हुई उसीसे उसीका सर्व सिद्धा त्रयोदशी ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ सोही मैं भी मानता हूं ॥ और हे प्रभो जिस चैत्र महिनेकी शुक्ल त्रयोदशीमें आपका जन्म हुआ तिस समये याने मेरुपर जन्म महोत्सवके अवसरमें इन्द्रकी शङ्का दूर करनेके लिये आपने लीलारूपसे मेरुको कंपाय मान किया उसीमें तो चित्र नाम कोई आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि तीर्थंकरत्वपनेकी अनन्त शक्तिको दिखानेके लिये बायें पैरके अगुठेको नीचा करके उसीको दबायाथा इसलिये उसीमें तो आश्चर्य्य नहीं परन्तु आपके जन्म योगसे मासको चित्रता आश्चर्य्यता प्राप्त हुई उसीसे मासका नाम भी चैत्र हो गया। अथवा। अचल मेरुको चलाया उसीसे पृथव्यादि कपने लगे जिससे लोगोंको आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ तिससे उसी मासको चैत्र कहते है ॥ और हे परमोत्तम श्रीजिनेश्वर जिस मार्गशीर्ष मासकी कृष्ण दशमीके दिन सम्पूर्ण चारित्रके लक्षणोवाला तथा अति कठिण और उत्तम मोक्ष मार्गको किसीकीभी साह्यताविना आपने उच्चत्वपने करके प्राप्तकिया अर्थात् अनेक तरहके बडे बडे उपसर्गों को सहन करनेके लिये बहुत ही कठिण वृत्तिको आपने अङ्गीकार करी उसीके कारणसे महिनेकी कठिणता (मार्गशीर्षता) दुनियामें कही जातीहै सो युक्तहीहै ॥ और हे प्रभो अहो इति आश्चर्य्य जिस उत्तम वैशाख महिनेकी शुक्ल दशमीके दिन आपने शुक्ल ध्यानरूपी दण्डदण्ड करके घाति कर्मरूपी समुद्रको मथन किया और जन्म जरा मरणरूपी रोगको नष्ट करनेवाला केवलज्ञान रूपी उत्तम अमृतको आपने प्राप्त किया, याने शुक्ल ध्यानसे घाति कर्मोंका नाश करके केवल ज्ञान पाये इसलिये तिस

महिनेकी वैशाखता याने श्रेष्ठतायुक्तही हैं ॥ और हे स्वामी आपके पांच कल्याणक तो हस्तोत्तरा नक्षत्रमें जिन जिन मास पक्ष तिथिको हुए उन उन मास पक्ष तिथियोंको तो आपके पांचों कल्याणकोंने पवित्र किये जिससे उन्होंके नामभी सार्थक हो गये परन्तु आपका छठा निर्वाण कल्याणक किस मास पक्ष तिथि नक्षत्रको कब पवित्र करके उसीका गुणयुक्त सार्थक नाम क्या रक्खेगा सोतो परोक्ष तथा भावी वस्तुके जानने वाला ज्ञान रहित और चरमचक्षु से प्रत्यक्ष वस्तुके जानने वाला ऐसा मैं नहीं जान सकता हूं तथापि इतना तो जानता हूं कि आपके पांच कल्याणकतो होगये और छठा मोक्ष कल्याणक होगा इसलिये इन छहों कल्याणकों करके सिद्धार्थ राजाके पुत्र, हे जगत पूज्य मैंने आपकी भक्ति पूर्वक स्तुति करी है सो अब आप मेरेपर ऐसी जल्दिसे कृपा करो कि जिससे आपके प्रसादसे मैं, मेरे अन्तरके छ भाव शत्रुओंको तत्काल जीत लेऊं अर्थात् आपके छहों कल्याणकोंकी मैंने स्तुति करी है उसीसे मेरे अन्तरके (पांच इन्द्रिय तथा छठा मन, या-पांच प्रमाद और छठा मन ॥ अथवा ॥ क्रोध मान माया लोभ और राग द्वेष यह) ६ वैरियोंका शीघ्र नाश हो ॥

अब देखिये उपर्युक्त शास्त्रानुसार भगवान्‌के विद्यमान समय समोवसरणमेंही छहों कल्याणकोंकी स्तुति होती थी तथा वर्तमानमें भी अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने लिखे है तिस परभी विनयविजयजीने उसीका निषेध किया तथा वर्तमानिक तपगच्छीय विद्वान् नाम धरातेभी उसीका निषेध करते हैं सो वृथाही कदाग्रहसे उत्सूत्र भाषण करके मिथ्यात्वके कितने विपाक भवान्तरमें भोगेंगे जिसकोतो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय कोईभी कहनेको समर्थ नहीं है

और इतने परभी श्रीपंचाशकजीमें छठे कल्याणकको न लिखनेसे न माननेके आग्रह करनेवाले विद्वत्ताभास विवेक शून्योंको तो श्रीस्थानागजी सूत्रके पाठानुसार मोक्ष कल्याणक भी नहीं मानना पड़ेगा क्योंकि वहां पंचम उद्देशेके पाठमें तो केवलज्ञान पर्यन्त पांचकल्याणक लिखकर मोक्षको नहीं लिखा है तो क्या तपगच्छीय विद्वान् लोग केवलज्ञान पर्यन्त श्रीवीर प्रभुके पांच कल्याणक मान्यकरके छठे मोक्षको नहीं मानेंगे तो क्या अभीतक वीर प्रभुको विद्यमान, तपगच्छवाले मानते हैं यदि विद्यमान मानते होवे तबतो हम लोगोंकोभी प्रभुके दर्शन कराने चाहिये और दूसरे शास्त्रोंमें चौथे आरेके अन्तमें श्रीवीर प्रभुका मोक्ष लिखा है सो वृथा हो जावेगा और यदि श्रीस्थानांगजी सूत्रके बिना दूसरे शास्त्रानुसार श्रीवीर प्रभुका मोक्ष कल्याणकका लिखना तपगच्छीय लोग सत्य मानते होवे तब तो श्रीपचाशकजीके बिना दूसरे शास्त्रानुसार छठे कल्याणक कोभी मानना पड़ेगा और दूसरे शास्त्रोंके प्रमाण मुजब छठे कल्याणकको मान्य करेगे तो श्रीपंचाशकजीके नामसे छठे कल्याणकका निषेध किया सो प्रत्यक्ष मायाचारीकी धर्मधूर्ताई सिद्ध हो जावेगी इसलिये तपगच्छीय आत्मार्थी विवेकी पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि पक्षपातका मिथ्या हठवाद छोड़करके न्यायकी सत्य बातको प्रमाण करनेमें तत्पर होना चाहिये और भय गर्भित अपेक्षा सम्बन्धी शास्त्रकारोंके वाक्योंका तात्पर्यार्थ गुरुगम्यसे बिना समझे या समझते हुए भी अपने पक्षमें भोले जीवोंको गेरनेके लिये हठवादसे बातको विपरीत खेंचना सोतो संसारपरिभ्रमणका हेतु भवभीरुओंको करना उचित नहीं है क्योंकि जैसे श्रीस्थानांगजी सूत्रमें छठे मोक्ष कल्याणकके लिखनेका पचमस्थानमें सम्बन्ध नहीं होनेसे नही लिखा

तोभी अन्य शास्त्रानुसार मोक्ष मानमेंमें आता है तैसेही श्री पंचाशकजीमें वहुत तीर्थंकर महाराजोंके सम्बन्धसे छठे कल्याणकको नहीं लिखा तोभी उपर्युक्त शास्त्रानुसार जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थियोंको तो छठा कल्याणक अवश्यमेव मानना पड़ेगा परन्तु जिनाज्ञाके विराधक दीर्घसंसारी दुल्लभबोधिकी तो बातही जूदी है इसको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और आगे फिर भी विनय विजयजीने लिखा है कि (अन्यच्च नीचैर्गोत्र विपाकरूपस्य अतिनिंद्यस्य आश्चर्यरूपस्य गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्व कथनं अनुचितं) इन अक्षरों करके श्रीवीरप्रभुके गर्भापहाररूप छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये विनयविजयजीने नीच गोत्रका विपाकरूप अतिनिंदनीक आश्चर्यरूप गर्भापहारको कल्याणक कहना भी अनुचित है ॥ इस तरहका दिखाया सो इस तरहका उनका लेखको देखकर मुझे बड़ेही खेदके साथ बहुतही लाचारीसे लिखना पड़ता है कि विनयविजयजीने गुरुगम्यसे श्रीजैनशास्त्रोंका तात्पर्यार्थको समझे बिनाही श्रीवीरप्रभुके गर्भापहाररूप छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये ऊपरके शब्द लिखके वृथाही अनन्त भव भ्रमणका हेतूभूत तथा अपने और दूसरोंके सम्यक्त्वरत्नरूपी कल्पवृक्षके मूलमें दावानल लगाने जैसा महान् अनर्थकारक गाढ़ मिथ्यात्वका कारण करनेको और शासनपति श्रीवीर प्रभुकी निन्दा करनेको ही मानों विद्वान् नाम धरा करके श्रीपर्युषणा पर्वमें वांचनेके लिये ऊपरके शब्द लिखके सुबोधिका बनानेका परिश्रम किया मालूम होता है क्योंकि देखो प्रथम तो श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों ने श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको खुलासा पूर्वक कथन किया हैं तथापि विनयविजयजीने उपरके अनुचित शब्दोंसे निषेध किया सो प्रत्यक्ष दीर्घसंसा-

रीपनेका लक्षण है क्योंकि दीर्घसंसारीके सिवाय तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका आत्मार्थी कोईभी उपरके अनुचीत शब्दोंसे कदापि निषेध नहीं करेगा इस बातको विशेष करके पाठकगण स्वय विचार लेवेंगे

और दूसरा यह है कि–चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्र बाहुस्वामीजीने श्रीकल्पसूत्रमें माहणकुण्डनगरके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानन्दा ब्राह्मणीकी कूक्षिमें श्रीवीरप्रभु आकर उत्पन्न हुए उसीकोही कुल मदके कारणसें अच्छेरा कहा है और उसीकोही आषाढ शुदी ६का च्यवन कल्याणकभी शास्त्रकारोंने माना है- तथा सब कोई मानते भी हैं इसलिये नीच गौत्रका विपाक रूप कह करके अच्छेरेके बहानें गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनय विजयजीने निषेध किया सो भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्रभाषण करके अपनी विद्वत्ताकी वृथा ही हांसी कराई है सो विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे.

और अब पाठक वर्गको निःसन्देह होनेके लिये उपरकी बात सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका पाठभी दिखाता हूं—तथाहि ॥

तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो, अयमेआरूवे अभत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था,— नं एयभूअं,नएयमव्व,नएयमभविस्सति,जन्न अरिहन्ता वा,चक्कवट्टी वा,बलदेवावा,वासुदेवावा। अंतकुलेसुवा,पंतकुलेसुवा, तुच्छकुलेसुवा, दरिद्दकुलेसुवा, किविण कुलेसुवा, भिक्खाग कुलेसुवा माहणकुलेसुवा, आयाइंसुवा,आयाइंतिवा,आयाइस्सन्तिवा, एवं खलु। अरिहंतावा, चक्कवट्टीवा, बलदेवावा, वासुदेवावा, उग्ग कुलेसुवा, भोग कुलेसुवा, राइन्न कुलेसुवा, इक्खागु कुलेसुवा, खत्तिय कुलेसुवा, हरिवंस कुलेसुवा, अन्नयरेसुवा,

तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसुवा, आयाइंसुवा (३) अत्थिपुण एसेविभावे लोगच्छेरयभूए, अणंताहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ, नामगुत्तस्स कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइअस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं, जंन्नं॥ अरिहन्तावा चक्कवट्टीवा बलदेवावा वासुदेवावा, अंत-कुलेसुवा पंतकुलेसुवा तुच्छक० दरिद्द० भिक्खाग० किविण० माहण० आयाइंसुवा (३) कुच्छिंसि गब्भत्ताए। वक्कमिंसुवा, वक्कमंतिवा, वक्कमिस्संत्तिवा, नो चेवणं जोणी जम्मण निक्ख मणेणं-निक्खमंसुवा, निक्खमिंतिवा, निक्खमिस्संतिवा॥ अयंचणं समणे भगवं महावीरे जम्बूद्दीवे दीवे भारहे वासे माहण कुंडग्गामे नयरे उस्सभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारियाए देवाणंदा माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कन्ते। तं जीअमेयं तीअपच्च पन्न मणा-गयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं, अरिहन्ते भगवन्ते तहप्पगारेहिन्तो अंत कुलेहिंतो पंतकुलेहिंतो तुच्छकु० दरिद्द० भिक्खाग० किविण कुलेहिंतो माहणकु० तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसुवा रायन्न० नाय खत्तिय० हरिवंस कुलेसुवा अन्नयरेसुवा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइ कुल वंसेसुवा साहरा-वित्तए। तं सेयं खलु ममवि समणं भगवं महावीरं चरम तित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहण कुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्त स्समाहणस्स कोडालस्स गुत्तस्स भारियाए देवानंदाए माहणीए जालंधरस्सगुत्ताए कुच्छीओ खत्तिअ कुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिठस्सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविसए॥ इत्यादि॥

और यद्यपि श्रीकल्पसूत्रका उपरके पाठकी अनेक व्याख्या-

ओंके पाठ मौजूद हैं तथापि इस अवसरपरतो खास विनय विजयजीकी बनाई सुबोधिका वृत्तिमेंसे उपरके पाठकी टीका पाठकवर्गको दिखाता हूं तथाचतत्पाठः॥

तएणमित्यादि तत शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवाना राज्ञः। अय मेयारूवेत्ति, अयं एतद्रूपः। अभ्मत्थिएत्ति,आत्मविषय इत्यर्थः। चितिएत्ति,चितात्मकः। पत्थिएत्ति, प्रार्थितो ऽभिलाषरूप। मणोगएति, मनोगतो नतु वचनेन प्रकाशितः ईदृशः। संकप्पेति, संकल्पो विचार। समुप्पज्जित्थात्ति, समुत्पन्नः कोऽसौ इत्याह॥ नखलित्यादि,एतत् न भूत अतीतकाले।न एय भव्वत्ति,न भवति एतत् वर्त्तमानकाले।न एयभविस्सत्ति, एतत् न भविष्यति आगामिनिकाले। किंतदित्याह। जंन्नति, यत् अर्हतश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवाय। अन्तकुलेसुवति, अन्तकुलेषु शूद्र कुलेषु इत्यर्थ। पंतकुलेसुवत्ति, प्रान्त कुलेषु अधम कुलेषु। तुच्छ कुलेसुवत्ति, अल्पकुटम्बेषु। दरिद्द कुलेसुवत्ति, निर्द्धनकुलेषु। किविणकुलेसुवत्ति, कृपण कुलेषु अदातृ कुलेषु इत्यर्थ। भिरकागु कुलेसुवत्ति, भिक्षाकास्तालाचरास्तेषां कुलेषु॥ तथा॥ माहण कुलेसुवत्ति, ब्राह्मण कुलेषु तेषा भिक्षुकत्वात्, एतेषु कुलेषु। आयाइंसुवत्ति, आयाता अतीतकाले। आयाइंतिवत्ति, आगच्छंति वर्त्तमानकाले। आयाइस्सन्तिवत्ति, आगमिष्यन्ति अनागत काले। एतन्नभूत मित्यादि, योग तर्हि अर्हदादयः केषु कुलेषु उत्पद्यन्ते, इत्याह एव खल्वित्यादि, एवं अनेन प्रकारेण खलु निश्चय अर्हदादयः। उग्गकुलेसुवत्ति, उग्रा श्रीआदिनाथेन आरक्षकतयास्थापिताजना तेषां कुलेषु। भोगकुले सुवत्ति, भोगा गुरुतया स्थापिता तेषां कुलेषु। रायन्नकुलेसुवत्ति, राजन्याः श्रीऋषभ देवेन मित्रस्थाने स्थापिता तेषां कुलेषु। इख्खागत्ति,इक्ष्वाका श्रीऋषभ देव वंशोद्भवा स्तेषां कुलेषु। खत्तिअत्ति, क्षत्रिया श्री-

आदिदेवेन प्रजालोकतया स्थापिता स्तेषां कुलेषु। हरिवंसत्ति, तत्र हरिति पूर्वभव वैरिसुरानीत हरिवर्षक्ष युगलं तस्य वंशो हरि वंश स्तत् कुलेषु। अन्नयरे सुयत्ति, अन्यतरेषु विशुद्ध जाति कुलेषु यत्र एवं विधेषु वंशेषु तत्र जाति मातृपक्ष कुलं पितृपक्षः ईदृशेषु कुलेषु आगता आगच्छन्ति आगमिष्यन्तिच नतु पूर्वोक्तेषु तर्हि भगवान् कथं उत्पन्न इत्याह। अत्थिपुणे त्यादि, अस्ति पुनः एषोपिभावो भवितव्यतास्य लोके आश्चार्य्यभूत। अणंताहिंति,अनन्तासु उत् सर्पिण्यवसर्पिणीषु व्यतिक्रांतासु ईदृशः कश्चित् पदार्थ उत्पद्यते तत्रास्यां अवसर्पिण्यां ईदृशानि (यहां दश अछरोंका वर्णन है सो ग्रन्थसे देखो) अश्चार्याणि जातानि॥ नाम गुतस्सेत्यादि, एकंतावत आश्चर्यमिदं। नामगुत्तस्स, नाम्ना गोत्रं इति प्रसिद्धं यत् कर्म्म गोत्राभिधानं कर्म्मेत्यर्थः। तस्य किंविशिष्टस्य। अक्खीसस्सत्ति, अक्षीणस्थिते अक्षयेण। अवेइयस्सत्ति,अवेदितस्य रसस्य अपरि भोगेन। अणिजिणस्सत्ति, अनिजीर्णस्य जीव प्रदेशभ्यो अपरि शटितस्य। ईदृशस्य गोत्रस्य नीचस्य नीचैर्गोत्रस्य उदयेन भगवान् ब्राह्मणी कुक्षौ उत्पन्न इति योगः (यहां नीच गौत्रके कर्म बंधका कारण और २७ भवोंका वर्णन है सो ग्रन्थसे देखो) ततः शक्र एवं चिंतयति यत् एवं नीचैर्गोत्रोदयेन अर्हदादयः ४ अन्तादिकुलेषु आगता आगच्छंति आगमिष्यन्तिच परं नो चेवणं ति नैव, जोणी जन्मण निक्खमणेणंति, योन्या यत् जन्मार्थं निष्क्रमणं तेन निष्क्रान्ता निष्क्रामन्ति निष्क्रमिष्यन्तिच। अयमर्थः। यद्यपि कदाचित् कर्म्मोदयेन आश्चर्य्यभूत तुच्छादि कुलेषु अर्हदादिनां अवतारो भवति परं जन्मत कदाचिन्न भूतं न भवति न भविष्यति च। अयंचणमित्यादितः गब्भाताएवक्कंतेत्ति, यावत् सुगमं। तंजीअमेयन्ति, तत्तस्मात्

जीतं एतत् आचार एव । इत्यर्थः । केषा इत्याह । सक्काणन्ति, शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजाना, कि विशिष्टानां । तीअपच्चु-प्पन्नमणागयाणन्ति,अतीत वर्तमानानागताना। कोऽसौ इत्याह यत् अरिहतेत्ति, अर्हंतो भगवत । तहप्पगारेहिंतोत्ति, तथा प्रकारेभ्य पूर्वोक्त स्वरूपेभ्य अ तादि कुलेभ्यस्तथा प्रकारेषु, उग्रादीना अन्यतरेषु कुलेषु। सहाराविंत्तएत्ति मोचयितु ॥ त सेय खलुत्ति, तत्श्रेय खलु निश्चय युक्तमेतन्ममापि श्रमण भगवत श्रीमहावीर देवानदाकुला । नायाणत्ति, राज्ञां श्रीऋषभदेव स्वामि वश्यानां क्षत्रिय विशेषाणा मध्ये सिद्धार्थस्य क्षत्रियस्य भार्याश्त्रिशला क्षत्रियाण्याः कुक्षौगर्भतयामोचयितु ॥इत्यादि॥

उपरके पाठका सक्षिप्त भावार्थ कहते हैं कि-सौधर्मइन्द्रने भगवान्को नमस्कार करके सिहासनपर बैठे बाद मनमें विचारा कि-अरिहत, चक्रवर्त्ती, बलदेव और वासुदेव यह चारों ही तरहके उत्तम पुरुष होते हैं सो क्षुद्रके कुलमे, अधर्मीके कुलमें, अल्प कुटुम्बवालेके कुलमें,कृपणके कुलमें, निर्द्धनकेकुलमें,भिक्षा-रीकेकुलमे और ब्राह्मणके कुलमें, पहिले आये होवें, अबी आते होवे, और आगे आवे गे, ऐसा हुआ नही, होगा नही, और हो सकताभी नहीं, परन्तु उग्रकुलमें, भोग कुलमें, राज्यकुलमें, आदिनाथस्वामीके कुलमें, क्षत्रियकुलमें, हरिवस कुलमें, इस तरहसे उत्तमजाति और उत्तमकुल दोनो तरहकी शुद्धतावाले कुलोंमें अरिहतादि चारोंही तरहके उत्तम पुरुष पहिले उत्पन्न हो गये, आगे होवे गे, वर्तमानकाले होते हैं, तथापि अनन्ती उत्सर्पिणी और अनन्ती अवसर्पिणी व्यतीत हो जानेसे भवि-तव्यताके योगसे कुलमदादि कारणसे अरिहतादिकोके क्षुद्रादि-कुलोमें उत्पन्न होने वगैरहकी लोकमें आश्चर्यभूत एसी बातें आगे बनी है फिर बनेंगे और वर्तमानमें बनती भी हैं परन्तु

निश्चय करके अरिहंतादिकोका क्षुद्रादिकुलोंमें जन्मतो हुआ नहीं होगानहीं और होताभी नहीं क्योंकि पहिले होगये, आगे होवेंगे और वर्त्तमानमें है उन सब इन्द्रोंका यह आचाररूप धर्महै, कि अरिहंतादि अशुभकर्मयोगसे क्षुद्रादिकुलोंमें आकर उत्पन्न होवे उन्होंको उग्रादि उत्तमकुलोंमें स्थापन करावे इसलिये सौधर्म इन्द्रने विचारा कि मैंरेकोभी श्रमण भगवंत् श्री महावीर स्वामीको ब्राह्मण कुलसे देवानंदाके उदरसे क्षत्रिय कुलमें त्रिशलाकेउदरमें स्थापन कराना सोकल्याणकारी निश्चय करके योग्यही है इसतरहका विचारके अपना आज्ञाकारी हरिणैगमेषिदेवको बुलाकर, उपर मुजब कहकरके समझाया और श्रीवीरप्रभुको ब्राह्मणकुलसे क्षत्रियकुलमें पधराये

अब इस जगह आत्मार्थी विवेकी पुरुषोंको पक्षपात रहित होकरके न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि, सूत्रकार महाराजके कथनानुसार खास आप विनयविजयजीने ही श्रीवीर प्रभु ब्राह्मण कुलमें आषाढ़ शुदी ६ को देवानंदा माताके उदरमें उत्पन्न हुए उसीकोही नीचगौत्रका विपाक और आश्चर्य कहा तथा उसीकोही च्यवन कल्याणक आप भी मानते हैं और नीच गौत्रका विपाक तथा आश्चर्य यह दोनों ऊपरके विशेषण भी ब्राह्मण कुलमें भगवान्के उत्पन्न होनेको लगते हैं इसलिये ब्राह्मण कुलसे क्षत्रिय कुलमें सिद्धार्थ राजाके यहां भगवान् गये उसीसे गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको विनयविजयजीने ऊपरके विशेषण लगाके कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि यद्यपि कारणकार्य भावसे ऊपरके विशेषण ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेरूप देवलोकसे आनेके प्रथम च्यवन कल्याणकको तथा उत्तम कुलमें प्रवेश करने रूप गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको भी

लगते हैं परन्तु कल्याणकत्वपनेसे तो कोई भी निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि कारण भावसे ब्राह्मण कुलमें भगवान्के उत्पन्न होनेमें उपरके विशेषण लगते भी प्रथम च्यवन कल्याणकत्वपना माना जाता है तैसे ही कार्य भावसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको भी ऊपरके विशेषण लगते भी दूसरा च्यवन कल्याणकत्वपना माननेमें कुछ भी वितंडावाद नहीं चल सकता है तथापि गच्छकदाग्रहके हठवादसे ऊपरके विशेषण त्रिशलामाताके उदरमें पधारनेको लगाके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेसे तो ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेको भी उपरके विशेषण लगके कल्याणकत्वपना निषेध हो जावेगा तबतो प्रथम च्यवन और गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन यह दोनों कल्याणक निषेध होनेसे बाकी श्रीवीरप्रभुके च्यारही कल्याणक रह जानेका तपगच्छीय विद्वत्ताभास कदाग्रहियोंकी कल्पनाका ११ वा एक अपूर्व आश्चर्य पंचमकालमें भी होवेगा उसीको श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक विवेकीतत्वज्ञ तो (ऐसी कदाग्रहकी कल्पित बातको) कदापि नहीं मान सकते हैं परन्तु श्रीजिन आज्ञा विराधक गड्डरीह प्रवाही विवेक शून्योंकी तो बात ही जूदी है और उपरके विशेषणोंका कारण कार्यभाव दोनोमें विद्यमान होते भी एकको कल्याणक मानना और दूसरेको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करना सो गच्छ कदाग्रहका प्रत्यक्ष अन्याय अंध परंपरा वालोंके सिवाय विवेकी तत्वज्ञोंका तो कदापि न होगा सो भी पाठकगण स्वय विचार लेना

और तीसरा यह है कि-मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी भव्य जीवोंको कुल मदादि कर्मविटंबनासे छोड़ा करके प्रमाद रहित तासे मोक्ष मार्गमें प्रवर्तानेवाला गर्भापहाररूप श्रीवीरप्रभुका

अतिउत्तम दूसरा च्यवन कल्याणकको अति निंदनीक लिख करके और कहकरके श्रीजिन आज्ञाके विराधक गच्छकदाग्रहप्रवाही विवेकशून्य साध्वाभासोंसे हरवर्ष पर्युषणामें वंचानेका कारण करके भोले जीवोंको शासनपति तीर्थंकर महाराज श्रीवर्द्धमान स्वामिकी निन्दा करने करानेके कार्यमें फसाकर संसारमें परिभ्रमणका रस्ता दिखाना सोतो मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी प्राणियोंके आत्मसाधनमें विघ्न कारक प्रत्यक्ष अनन्त संसारीपनेका लक्षण है क्योंकि-देखो-श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको दूसरा च्यवन कल्याणक मान्य करके तपश्चर्यादि धर्मकृत्यों करके आराधन करनेसे मरीचिके भवमें नीचगोत्र बांधनेकी तथा अनेक भवोंमें उसीको भोगनेकी और अन्तमें ब्राह्मणकुलमें अवतार होकरके गर्भापहारके होनेसे कर्मोंकी विचित्रगतिकी भावनासे कुलमद रहित होकरके आत्मार्थी प्राणी अपने दिलमें ऐसा विचारेगा कि, देखो अनन्त सकती वाले श्रीवीर प्रभुको भी पूर्व भवके कुल मदका कर्म भोगना पड़ा तो अल्प सकती वाला मेरे जैसा तुच्छ जीवकी तो कौन गिनती है इत्यादि भावनासे उसीको कोई बातका अभिमान नहीं हो सकेगा और विनय नम्रतादिगुणोंकी प्राप्ति होवेगी सोतो श्री वीरप्रभुके दूसरा च्यवन कल्याणकको माननेसे ही उत्तम प्रकारकी भावना और धर्मध्यान अवश्यमेव करनेमें आवेगा उसीसे कर्मोंकी अनन्त निर्ज्जरा होनेका कारण है और इस कारणसे भव्यजीवोंका कल्याणकरूप आत्मसाधनका कार्य्य हो सकता है इसलिये ही श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने उसीको कल्याणक माना है सो आत्मसाधनाभिलाषियोंको तो अवश्यमेव निश्चय करके गर्भापहारको दूसरा च्यवन कल्याणक मानना चाहिये और विनयविजयजीने आज्ञानतासे उसीको

निषेध किया तथा उसी रस्तेसे वर्तमानिक कितनेही लोग निषेध करते हैं सोतो अपनी आत्म घातका ही कारण करते है इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,

और देखिये बडी ही आश्चर्यकी बात है कि-नीचगोत्रके विपाक रूप तथा आश्चर्यरूप ब्राह्मणकुलमें भगवान् उत्पन्न हुए सो व्यवहार विरुद्ध अतिनिन्दनीक कहते हुएभी उसीको कल्याणक मानते है और नीचगोत्रका विपाक भोगेबाद (क्षय हुएबाद) व्यवहार विरुद्ध निन्दनीकपना मिटानेके लिये उत्तम कुलमें पधारे उसीको कल्याणकपनेसे निषेध करते हैं सो विनयविजयजीकी तथा वर्तमानिक कदाग्रहियोंकी विवेक शून्यताकी विद्वत्ताका निज परके आत्मघात करने वाला कलयुगी प्रकाश ही मालूम होता है सो गच्छरीह प्रवाहीअ धपरंपरा वाले और दृष्टिरागके फन्दमें फसे हुए जनोंके सिवाय आत्मार्थियोंको अवश्यमेव परिहरणे योग्य है इसको भी विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,

और ब्राह्मणकुलमें भगवानूका उत्पन्न होना सो निन्दाका और लज्जाका कारण कहा जा सकता है नतु उत्तम कुलमें पधारना सो, क्योंकि देखो, यदि ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरे भगवानूका जन्म होता तो तत्वज्ञान रहित ब्राह्मण लोग विना विचार कियेही हरेक जैनीसे हरेक प्रसंगमें वारवार क्षुद्रपनेकी वाचालता प्रगट करते ही रहते कि जैनियोके परमेश्वर तो ब्राह्मण लोग होतेहैं औरअब जैनी लोग ब्राह्मणोंको पूजने वगैरहकी बातोंको नहीं मानते हैं सो परमेश्वरके द्रोहीहैं इस तरहसे बालजीवोके आगे अपना प्रपच प्रगट करके जैनियोंकी निन्दा पूर्वक मिथ्यात्व बढाते रहते और अपनी भ्रम जालमें भोले जीवोंको फंसाकर अपना अभीष्टसिद्ध करनेके लिये जैनियोंको

कलङ्कीत करते रहते और राज्यवंशी उत्तम क्षत्रिय शूरवीरोंका जैनधर्मको हाणी पहुंचाते सोही जैनियोंको परम लज्जाका कारण होनेसे अतीव निन्दनीक था सो इन्द्र महाराजने मिटानेके लिये सिद्धार्थ राजाके घरे उत्तम कुलमें भगवान्को पधारनेका अतीव श्रेष्टकार्य करके राज्यवंशी उत्तम क्षत्रिय शूर वीरोंका जैनधर्मको कलङ्क रहित कायम रक्खा और लज्जाके निन्दाके तथा ब्राह्मणोंसे मिथ्यात्व बढ़नेवाली बातके कारणको जड़ मूलसे काटडाला उसी कारणकोही विनयविजयजीने अति निन्दनीक कहा तथा अंधपरंपराके मिथ्यात्वसे वर्तमानिक तपगच्छीय कदाग्रही लोग हरवर्षे कहते रहते हैं। हा अतीव खेदः। विवेक विकल विद्वत्ताभासोंके सत्यज्ञान रूपी अन्तर चक्षुको गाढ़ मिथ्यात्व रूप अतीव अन्धकारके पडलोंने कैसी दृढ़ता करलीहै सो सत्य बातका निषेध करनेके लिये संसार वृद्धिका हेतूभूत उत्सूत्र भाषण और श्रीवीरप्रभुकी निन्दा करते हुए भी सत्यवादी शुद्ध प्ररूपक बनते हैं सो तो भारी कर्मी प्राणियोंके लिये पाखण्ड पूजा नामक अच्छेरेका कलयुगी प्रकाश ही मालूम होताहै इसको विशेष करके विवेकी तत्त्वज्ञ-जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और चौथा यह है कि गर्भापहारको अति निन्दनीक वगैरह विशेषण लगा करके कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजीने निषेध किया तथा वर्तमानिक लोग करते हैं सोतो निष्केवल अपने गच्छपक्षके आग्रहसे उत्सूत्रभाषण करके भोले जीवोंको वृथाही मिथ्यात्वके भ्रममें गेर कर संसार वृद्धिका हेतु करके अपनी आत्मसाधनके सम्यक्त्व रूपी सरल रस्ताको भूल करके मिथ्यात्वके विकट भ्रममें फिरनेका कारण करते हैं क्योंकि-श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामीजीने श्रीसमवायांगजी सूत्रमें तथा श्री

नवागी वृत्तिकार श्रीखरतर गच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमदभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीसमवायागजी सूत्रकी वृत्तिमें देवानन्दा माताके उदरसे त्रिशला माताके उदरमें भगवान्‌के पधारने रूप गर्भापहारको उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमे लिया है इस लिये गर्भापहार निन्दनीक नहीं हो सकता है किन्तु उत्तम तो प्रत्यक्षही सिद्ध होता है अब इस अवसरपर श्रीगणधर महाराजकृत श्रीसमवायागजी सूत्रका तथा श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजकृत उसीकी वृत्तिका पाठ यहा दिखाता हूं सो धनपति सिंह बहादुरके आगम सग्रह भाग चौथेमें श्रीसमवायांगजी सूत्रवृत्ति सहित छपकर प्रसिद्ध हुआ है जिसके पृष्ठ १६६।१६७ का पाठ नीचे मुजब है यथा—

समणे भगव महावीरे तित्थगर भवग्गहणाओ छठे पोट्टिल भवग्गहणे एगंवासकोडि सामन्न परियाग पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वठ विमाणे देवत्ताए उववन्ने ॥

व्याख्या-समणेत्यादि किल भगवान् पोट्टिलाभिधानो राजपुत्रो बभूव तत्र वर्षकोटि प्रव्रज्यापालितवानित्येकोभव । ततो देवो भूदिति द्वितीय । ततो नदनाभिधानो राजसूनु छत्रा नगर्यां मभ्द-इति तृतीय । तत्र वर्ष लक्षम् सर्वदामास क्षपणेन तपस्तप्त्वा दशम देवलोके पुष्पोत्तर वरविजय पु डरीका भिधाने विमाने देवोभवदिति चतुर्थ । ततो ब्राह्मण कु ड ग्रामे ऋषभदत्त ब्राह्मणस्य भार्यांया देवानदाभिधानाया कुक्षावुत्पन्न इति पचम । ततोद्व्यशीतितमे दिवसे क्षत्रिय कुंड ग्रामेनगरे सिद्धार्थ महाराजस्य त्रिशलाभिधान भार्यांया कुक्षाविन्द्रवचन कारिणा हरिनैगमेषिनाम्ना देवेन सहृतोनीतस्तीर्थंकरतयाध जात इति पष्ठ । नह्य भवग्रहणं हि विना नान्यद्भवग्रहण पष्ठ' श्रु यते भगवत इत्येतदेव पष्ठभवग्रहण तया व्याख्यात यस्माच्च

भवग्रहणादिदं षष्ठ तदन्ये तस्मात् षष्ठमेवेति सुष्ठूच्यते तीर्थंकर भवग्रहणात्षष्ठे पोटिल भवग्रहणं — इति॥

उपरके पाठका भावार्थ कहते हैं कि — श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीके पूर्वभवोंकी गिनती करनेमें तीर्थंकरत्वपनेके पहिले निश्चय करके भगवान् छठे भवमें महाविदेह क्षेत्रे मुका नगरीमें चौराशी लाख पूर्वके आयुष्ये पोटिल नामा राजपुत्र हुए वहां चक्रवर्तीपनेकी ऋद्धिको छोड़ करके एक क्रोड़ वर्ष पर्यन्त समान्यपने दीक्षा पर्यायको पालन करी सो प्रथम भव। वहांसे सहसार नामा आठवें देवलोकके सर्वार्थ सिद्ध नामा विमानमें देवतापने उत्पन्न हुए सो दूसरा भव। और वहांसे इसी भरतक्षेत्रकी छत्रानगरीमें नन्दनामा राजपुत्र हुए सो तीसरा भव॥ और वहां २४ लाख वर्ष तक गृहस्थावासमें राज्यका पालण करके पीछे दीक्षा लेकरके एक लाख वर्षतक निरन्तर मास मास क्षमणकी तपस्यासे श्रीवीश स्थानकजीका आराधन किया सो ११८०६४५,अथवा मतान्ततरे ११८०५००, मास क्षमण करके दशवे देवलोकके पुष्पोत्तर नामा विमानमें देवता हुए सो चौथाभव॥ और वहांसे देवत्वपनेका आयुष्य पूर्ण करके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानंदा नामा ब्राह्मणीके उदरमें आकर उत्पन्न हुए सो पञ्चमभव। और वहांसे ८२ वेंदिन इन्द्रकी आज्ञानुसार हरिणैगमेषी देवने सिद्धार्थ राजाकी त्रिशलाराणीके उदरमें स्थापित किये और तीर्थंकरपने प्रगट हुए सो छठाभव।

और देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशलामाताके उदरमें भगवान्का पधारना हुआ सो उपरमें भगवान्का छठा भव कहा है उसीको छठेभवमें गिनती किये बिना तो निश्चय करके भगवान्का दूसरा कोई अन्य छठा भवग्रहण करनेका तो किसी भी शास्त्रमें सुननेमें नहीं आया इसलिये वोही (त्रिशलामाताके

उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको) छठा भवकी गिनतीमें कहा गया है सो ही जिस पोटिलके भवग्रहणसे भगवान्का यह छठा भव श्रेष्टपनेसे कहनेमें आया तिस भगवान्के भवग्रहणसे छठा पोटिलकाभव गृहण किया गया॥

अब देखिये उपरके पाठमें श्रीगणधर महाराजने तथा श्री अभयदेव सूरिजी महाराजने देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशला माताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारको निश्चय करके उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें प्रमाण किया तथा त्रिशला माताके उदरमें जानेसे ही तीर्थंकरपने प्रगट होनेका लिखा इससे तथा श्रीकल्पसूत्र और उनकी अनेक व्याख्या वगैरह अनेक शास्त्रानुसार भगवान्के गर्भापहार होनेसे च्यवन कल्याणककी तरह ही त्रिशलामाताने चौदह स्वप्नोंको देखे तथा शास्त्रकारोंने भी स्वप्नोंका विस्तारसे वर्णनकिया और सिद्धार्थ राजाने स्वप्न पाठकोकों बुलाकर स्वप्नोका अर्थ पूछनेसे पुत्रोत्पत्ति सम्बन्धी व्याख्या वगैरह कारणोंसे भगवान्के गर्भापहारको अति श्रेष्टतापूर्वक कल्याणकत्वपना तो स्वय सिद्ध होतेभी विनयविजयजीने उसीको अतिनिन्दनीक कह करके कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सो गच्छकदाग्रहके मिथ्यात्वसे भगवान्की तथा अनेक शास्त्रकार महाराजोंकी बड़ी ही आशातना करके अपनेको और अन्धपरंपरा वाले दृष्टिरागियोंको भवोभवमें भगवतकी आशातनाके अतीव निन्दनीक महान् अनिष्ट कर्म उपार्जन करने करानेका वृथाही कारणकिया है सो तो शास्त्रज्ञ विवेकीजन स्वयविचारलेवेंगे,-

और अब वर्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशयोंसे मेरा यही कहना है कि आप लोग श्रीगणधर महाराजके तथा श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके और पञ्चांगी-

शास्त्रोंके वचनोंको सत्यमान्यकर उनपर पूर्ण विश्वास (श्रद्धा) रखने वाले सत्यग्रहणाभिलाषी श्रीजिनाज्ञाके आराधक सम्यक्त्वधारी हो तब तो गर्भापहार रूप भगवान्का दूसरा च्यवन कल्याणकको निषेध करनेके लिये अतिनिन्दनीक वगैरह शब्द कह करके, संसार परिभ्रमणका कारण करते हो जिसको तत्काल छोड़कर उपर्युक्त महाराजके शास्त्र वचनानुसार निश्चय करके गर्भापहारको उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें लेकरके कल्याणकत्वपनेमें अवश्यमेव मान्य करोगे तथा दूसरोंको कराओगे तबहीतो आप लोग श्रीगणधर महाराजके तथा श्रीअभयदेवसूरिजीके और पञ्चांगी शास्त्रोंके वचनोंको सत्य मान्यकर उनपर श्रद्धा रखनेवाले तथा न्यायानुसार सत्य बातको ग्रहण करनेवाले सम्यक्त्वधारी आत्मार्थी श्रीजिनाज्ञाके आराधक बन सकोगे, अन्यथा कदापि नहीं क्यों, कि जो गर्भापहार अतिनिन्दनीक होता तो शास्त्रकार महाराज गर्भापहारको निश्चय करके उत्तम प्रकारके भवकी गिनतीमें कदापि नहीं लाते और यहां तो खुलासा पूर्वक लाये हैं इसलिये गर्भापहार अतिनिन्दनीक तो क्या परन्तु कुछ भी निन्दनीक नहीं अर्थात् अतीव श्रेष्ट है तथापि विनयविजयजीने अतिनिन्दनीक कहा तथा वर्तमानमें भी अन्धपरंपरासे जो लोग कहते हैं सो अपने और गच्छममत्वियोंके विकट कर्मबंधका और संसारमें परिभ्रमणका कारण करते हैं इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी जन तो अपनी बुद्धिसे आप ही विचार लेवेंगे,–

और इतने परभी वर्तमानिक श्रीतपगच्छवाले महाशयोंको श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक माननेमें लज्जा आती होवे तो आषाढ़ शुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें भगवान् पधारे

उसीको च्यवन कल्याणक मानना छोडकर आश्विन वदी १३ को त्रिशला माताके उदरमे भगवान् पधारे उसीको च्यवन कल्याणक मान्यकर लेवें, क्योंकि-नीच गौत्रके विपाकसे आश्चर्यरूप तथा ब्राह्मण लोगोसे जैनियोकी निन्दापूर्वक मिथ्यात्व बढनेका कारण तो आषाढ शुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें भगवान् उत्पन्न हुए सो वहां जन्म होनेसेही होता जिसको अर्थात् उपरकी सब बातोंको मिटानेके लिये त्रिशला माताके उदरमें पधारे हैं इसीलिये तो उपरोक्त शास्त्रकार महाराजने उसीको भवकी गिनतीमें लिया ॥ इस जगह परभी विवेकी तत्वज्ञोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि-जब त्रिशलामाताके उदरमें भगवान् पधारे तब ही तीर्थंकर भगवान् उत्पन्न होने सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंका विस्तारसे वर्णन वगैरह कार्य भी सिद्धार्थ राजाके वहां हुए इसलिये आश्विन वदी १३ को भगवान्के उत्पन्न होनेको च्यवन कल्याणकत्वपना निश्चय करके नि सन्देहता पूर्वक स्वय सिद्ध हो चुका, इसलिये आश्विन वदी १३ को त्रिशला माताके उदरमें भगवान्का पधारना हुआ सो गर्भापहाररूप च्यवन कल्याणकको शास्त्र वाक्य प्रमाण करनेवाले आत्मार्थी तो कोई भी कदापि काले निषेध नहीं करेगा परन्तु दीर्घ ससारी मिथ्यात्वियोके अन्तरका हठवादको तो तीर्थंकर गणधर भी छोड़ाने समर्थ नहीं होसकते तो मेरा लिखना किस हिसाबमें अर्थात् उपरका मेरा लेख सत्यग्रहणाभिलाषी श्रीजिनाज्ञाके आराधकोको तो हितकारी होगा नतु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दुर्लभबोधिजनोंको

और सवेगच्छवालोंके माननीय पूज्य श्रीअभयदेव सूरिजीके वचनानुसार श्रीसमवायांगजी चौथे अङ्गकी वृत्तिके वाक्यसे आश्विन वदी १३ को त्रिशलामाताके उदरमें भगवान पधारनेको उपर्युक्त

कारणोंसे कल्याणकत्वपना सिद्ध करके पाठक गणको यहां दिखाया तथा इन्हीं महाराजके वचनानुसार श्रीस्थानांगजी तीसरे अङ्गकी वृत्तिके वाक्यसे और श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंके वाक्योंसे छ कल्याणक श्रीवीरप्रभुके प्रत्यक्षपने सिद्ध होते भी ऐसा कौन श्रीजिनाज्ञा विराधक मायाचारी निर्लज्जहोगा सो शास्त्र प्रमाण और युक्तिपूर्वक प्रत्यक्षसिद्ध बातको भी निषेध करके अपने गच्छकदाग्रहके हठवादके मिथ्यात्वको स्थापन करनेका परिश्रम करके भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये आगेवान होगा जिसकी तो अब थोड़े ही समयमें यह ग्रन्थ प्रगट हुए बाद परीक्षा हो जावेगा

और भी पाठकवर्गको विनय विजयजीकी धर्म ठगाईकी मायाचारीका नमूनादिखाता हूं, कि-देखो-खास आपने ही श्री कल्पसूत्रके मूलपाठानुसार सौधर्मेन्द्रने भगवान्‌को ब्राह्मण कुलसे क्षत्रिय कुलमें पधारनेका किया सो आचाररूपी धर्म तथा कल्याणकारी है इसलिये गर्भापहार करना निश्चय करके युक्तही है ॥ ऐसा लिखा-जिसका पाठ भावार्थ सहित उपरमें ही छप गया है और फिर ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरमें भगवान्‌के पधारनेकी व्याख्या करते विशेष करके १ श्लोकमें "भव्यजीवोंका कल्याण करनेवाले श्रीवीरप्रभु अच्छा मुहूर्त्त देखकर ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरे पधारे" ऐसे मतलबकी व्याख्या करी सो श्लोक भी इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ५०४ में छप गया है॥ अब इस जगह परभी विवेकी सज्जनोंको पक्षपात रहित हो करके न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि-देवानन्दा ब्राह्मणीके उदरसे त्रिशला क्षत्रियाणीके उदरमें इन्द्रने भगवान्‌का पधारना किया सोही गर्भापहार होनेको खास आप विनय विजयजी ही अपनी बनाई सुबोधिकामें प्रगटपने

गर्भापहार करानेका इन्द्रका धर्म है कल्याणकारी है सो निश्चय करके युक्तही है और भव्यजीवोका कल्याणके लिये अच्छा मुहूर्त्त देखकर ब्राह्मणके घरसे सिद्धार्थ राजाके घरमें भगवान् पधारे इस तरहका लिखते है सो अनन्तपुण्यवाला एक भव अवतारी अनेक तीर्थंकर महाराजोका भक्त और निर्मल सम्यक्त्वरत्नके तथा अवधिज्ञानके धरनेवाला सौधर्मेन्द्रको तो गर्भापहारका होना कल्याणकारी ठहरा तब तो श्रीवीरप्रभुके भक्त आत्मार्थी अन्य जीवोको तो निःसन्देहतापूर्वक निश्चय करके गर्भापहार कल्याणकारी स्वयं सिद्ध होगया इससे तो गर्भापहारको विनय विजयजीके लिखनेके अनुसार भी कल्याणकत्वपना प्रगटपने सिद्ध होता है तथापि विनयविजयजीने उसीको अतिनिन्दनीक लिखकर अपने अन्धपरंपराके मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें भोले जीवोको गेरनेके लिये कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेका परिश्रम किया सो उनकी तात्पर्यार्थमें विवेक बुद्धिकी विकलता कहीजावे, या-जानबुझकर अपने गच्छकदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेरूप अभिनिवेशिकमिथ्यात्व कहाजावे, अथवा विवेक बुद्धिके विना अपने लिखे वाक्यका भी अर्थ भूल करके तत्वज्ञोंसे अपने विद्वत्ताकी हांसी करानेका कारण कहा जावे सो तो निष्पक्षपाती विवेकी पाठकगण अपनी बुद्धिसे आपही विचार लेना चाहिये ॥

और भी देखिये बडेही खेदके साथ बहुतही आश्चर्यकी बात है कि विनयविजयजीने एक जगह तो गर्भापहारके करानेका इन्द्रका धर्म तथा अवश्य कर्तव्य और कल्याणकारी लिखा फिर इसी बातको अपने अन्तर मिथ्यात्वसे पूर्वापरविरोधि वाक्यका भय न करके अतिनिन्दनीक लिखते विवेक बुद्धि विना विद्वानोंसे अपनी हांसी करानेकी कुछ भी अपने हृदयमें लज्जा नहीं

रक्खी परन्तु वर्तमानमें गच्छकदाग्रहके अन्धपरंपरामें चलने वाले विवेक शून्यतासे साध्वाभास लोग प्रतिवर्षे श्रीपर्युषणा पर्वमें धर्मध्यानके दिनोंमें कल्याणकारी बातको भी अति निन्दनीक कहते हुए धर्माधर्मका विचार किये बिना गाडरीह प्रवाहसे निज परके सम्यक्त्वरत्नको नष्ट करनेका और अनन्त भव भ्रमणका हेतु करते कुछ भी लज्जा नहीं रखते हैं। हा हा अति खेदः। इस पञ्चम कालमें तत्वज्ञान रहित, विवेक विकल, विद्व-त्ताके अभिमान रूपी अजीर्णताके रोगसे ग्रस्त, जैनाभास, उत्सूत्रभाषक, तथा श्रीवीरप्रभुके निन्दक, भारीकर्मे प्राणियोंने शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको भी उत्थापन करके सत्य बातका निषेध करनेके लिये कुयक्तियोंके भ्रमका और भगवंतकी आशा-तनाका कारण तथा गाढ़ मिथ्यात्व बढ़ानेवाला कैसा कल्पित मार्गको चलाया और चला रहे हैं जिन्होंकी आत्माका संसारमें परिभ्रमणका पार कब आवेगा जिसको तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और ऐसे मिथ्यात्वके मार्गमें जिनाज्ञा विराधक दीर्घ संसारीके सिवाय आत्मार्थी तो कोई भी फसनेका संभव नहीं है तथापि कोई अज्ञान दशासे फसगये होवे उन्होंका तत्काल उद्धार करके श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातकी शुद्ध श्रद्धा जो सम्यक्त्वरत्न उसको प्राप्तिके लिये ही यह मेरा लिखना अल्प-संसारीको उपयोगी हो सकेगा नतु मिथ्यात्वी दीर्घ संसारके लिये क्योंकि जो सत्यग्रहणकाभिलाषी आत्मार्थी प्राणी होगा सो तो शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्तिपूर्वक सत्य बातको देखते ही तत्काल उसीको ग्रहणकरके अपने अंधपरंपराके कदा-ग्रहका शीघ्र त्याग करेगा और भगवान्‌की आज्ञा मुजब अपने आत्म कल्याण करनेके कार्यमें उद्यम करेगा और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दीर्घ संसारी होगा सो तो सत्य बातका ग्रहण करनेके

बदले अपने कल्पित मन्तव्यके कदाग्रहको विशेष पुष्टकरता हुआ भोले जीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके विशेष मिथ्यात्व बढानेका कारण नहीं करेगा तोभी बहुत ही अच्छा है

और ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरे भगवान्‌का उत्पन्न होना सो नोच गौत्रका विपाक तथा आश्चर्य रूप होनेसे गुप्तपने रहे क्योंकि तीर्थंकरकी उत्पत्ति सम्बन्धी दुनियामें कोई भी बात प्रगट नहीं हुई जिसको तो कल्याणक मानते है और नीच गौत्रका विपाक भोगे बाद भगवान् सिद्धार्थ राजाके घरे पधारे सो प्रगटपने तीर्थंकर उत्पत्तिका बड़ा महोत्सव हुआ तथा तीर्थंकर उत्पत्ति सम्बन्धी दुनियामें भी प्रगटपने बात हुई और शास्त्रकारोंने भी उसीको कल्याणक माना और श्रीपार्श्वनाथ-स्वामीके श्रीनेमिनाथस्वामीके तथा श्रीआदिनाथस्वामीके तीर्थंकरत्वपने उत्पन्न होनेसे माताके चौदह स्वप्नोंकी व्याख्या करने सम्बन्धी भलामण शास्त्रकारोंने श्रीवीरप्रभुके गर्भापहा-रसे त्रिशलामाताके चोदह स्वप्नोंकी खुलासा पूर्वक दी है इससे भी गर्भापहारको कल्याणकत्वपना सिद्ध है क्योंकि जो गर्भाप-हारको च्यवन कल्याणककी प्राप्ति नहीं होती तो शास्त्रकार महाराज श्रीपार्श्वनाथस्वामी आदि तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन कल्याणक सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंका विस्तार करनेके लिये उसीकी भलामण कदापि नहो देते परन्तु प्रगटपने दी है इसलिये सामान्यता होनेसे गर्भापहारको कल्याणत्वपनेकी अवश्यमेव प्रगटपने प्राप्ति है तथापि उसीका निषेध करके कल्याणक नमाननेके आग्रहमें फसकर विशेष करके उसीकी निन्दा करना सो तो प्रत्यक्षपने गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके सिवाय और क्या होगा सो पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे,–

तथा और भी देखिये गर्भापहारको अति निन्दनीक कहने वाले गच्छममत्वियोंको हृदयमें विवेक बुद्धि लाकर थोड़ासा भी तो विचार करना चाहिये कि कोई अल्प बुद्धिवाला सामान्य पुरुष भी जान बुझकर निन्दनीक काम नहीं कर सकता है तो फिर अनन्तबुद्धिवाले निर्मलअवधिज्ञानी और अनेक तीर्थंकर महाराजोंके परम भक्त तथा धर्मदेशना सुननेवाले एकभव करके ही मोक्षमें जानेवाले सौधर्मेन्द्रने जानबुझ करके गर्भापहारका अतिनिन्दनीक काम क्यों किया, क्योंकि तुम्हारे मन्तव्य मुजब तो गर्भापहार हुआ सो अति निन्दनीक हुआ सो अतिनिन्दनीक काम नहीं होना चाहिये तबतो ब्राह्मण कुलमें ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें भगवान्‌का जन्म होता तो आप लोगोंके अच्छा होता परन्तु शास्त्रकार महाराजोंने तो ब्राह्मण कुलमें भगवान्‌का जन्म होना अच्छा नहीं समझा और इन्द्र महाराजने भी भगवान्‌का ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होना तथा वहां ब्राह्मण कुलमें ही जन्म होना इसको अच्छा नहीं याने अनुचित समझ करके ही तो अपने और दूसरोंके हितके लिये तथा भगवान्‌की भक्तिके लिये गर्भापहारसे भगवान्‌को उत्तम कुलमें पधारनेका किया सो उसीको शास्त्रकारोंने खुलासापूर्वक लिखा इससे प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है कि गर्भापहार अतिनिन्दनीक नहीं किन्तु अतीव उत्तम तथा कल्याणकारी है इसलिये जो श्रीजिनाज्ञाके अराधक आत्मार्थी होवेगें सो तो इन्द्र महाराजकी तरह गर्भापहारको अतीव उत्तम तथा कल्याणकारी मान्य करेगें जिन्होंका शुद्ध श्रद्धासे आत्मकल्याण भी शीघ्र होजानेका संभव है और श्रीजिनाज्ञाके विराधक बहुलसंसारी गच्छकदाग्रहके मिथ्या हठवादी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होवेगें सो ही अति उत्तम कल्याणकारी

गर्भापहारको अतिनिन्दनीक तथा अकल्याणकारी कहके श्री वीरप्रभुकी आशातना तथा भव्यजीवोंके आत्म साधनमें विघ्न करेंगें और करानेका कारण करेंगे जिन्होंकी आत्माका कल्याण होना बहुत ही मुश्किल है इस बातको विवेकी तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वय विचार लेवेंगे,—

और अब गर्भापहारको अतिनिन्दनीक कहके श्रीवीर प्रभुकी आशातनासे तथा भोले जीवोंको गच्छकदाग्रहका मिथ्यात्वके भ्रममे गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणसे ससारमें परि-भ्रमणका हेतु करनेवालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके उपका-रके लिये तथा भोले जीवोंके मिथ्यात्व रूपी भ्रमको दूर करके सम्यक्त्व रूपी रत्नकी प्राप्तिका उपकारके लिये गर्भापहारको अतिउत्तमतापूर्वक कल्याणकत्वपना सिद्ध करनेवाला एक दृष्टान्तकी युक्तिके अमृत रूपी औषधको यहां दिखाता हू जिससे कदाग्रहियोंके अन्तर मिथ्यात्व रूप अन्धकारके रोगकी शाति होनेसे सम्यग्ज्ञानका स्वय प्रकाश होजावेगा, सो देखो— जैसे-गर्भावासका निवास तथा जन्म, जरा, रोग, शोक, आधि, व्याधि, उपाधि, सयोग, वियोग, मृत्यु आदि दु खोंसे व्याप्त, तथा अशुचि दुर्गन्धमय सात धातुओंसे मिलित मनुष्यका शरीर सो देवताओंके शरीरसे अनन्तगुणाहीण होतेभी उसीमें धर्मसाधनका तथा मोक्षगमनका कारण होनेसे उसीको उत्तम कहा, तथा रोगरहित अनन्तशक्तिवाला अनन्तस्वरूपकी कातिवाला अनन्तसुखवाला नवग्रैवेक निवासी देवताके शरीरको भी दीर्घ ससारी मिथ्यात्वीके लिये बुरा कहा और छेदन भेदन ताडण मारण रोग शोकादि अनन्त दुखोंवाला अतीव दुर्गन्धमय सातवीं नरक वासीके शरीरको भी सम्य-क्त्वधारी अल्प ससारीवालेके लिये श्रेष्ठ कहा, तैसेही भगवा-

नके च्यवन, तथा गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन, भव्यजीवोंके उपकार करनेवाले होनेसे उनको अति उत्तम कल्याणक कहते हैं, अर्थात्-जैसे-देवसम्बन्धी शरीरकी अपेक्षासे सात धातुओंको अशुचियुक्त मनुष्यका शरीर-जो माताका उदर उसीमें गर्भावासपने ऊंधे मस्तक उत्पन्न होना सो व्यवहारमें अच्छा नहीं कहें-तोभी भगवान्का माताके उदरमें उत्पन्न होना सो भव्यजीवोंके उपकारका कारण होनेसे देवलोकके शरीरको छोड़ करके वहांसे च्यवनेको कारण भावसे च्यवन कल्याणक कहते हैं सो माताके उदरमें उत्पन्न होनेसे भव्यजीवोंका उपकार रूप कार्य्य होता है तैसेही गर्भसे गर्भस्थानांतरे होना भी व्यवहारिकमें अच्छा नहीं कहा जा सकता तथापि भगवान्का त्रिशलामाताके उदरमें आना सो भव्यजीवोंके उपकारका कारण होनेसे देवानन्दामाताकी कुक्षिसे गर्भहरण रूप गर्भापहारको कारण भावसे दूसरा च्यवन कल्याणक कहते हैं उसीसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारनेसे भव्यजीवोंके उपकार रूप कार्य हुआ तथा नीच गौत्रत्व पना मिटा इसलिये कारणकार्य भावको तथा अपेक्षाको और लाभालाभको गुरु गम्यसे समझे विना गर्भापहारकी निन्दा करके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेके लिये उत्सूत्रभाषण करके श्रीजिनाज्ञाके अनुसार सत्य बातकी शुद्ध श्रद्धासे भोले जीवोंको भ्रममें गेरने रूप मिथ्यात्व बढ़ानेसे दुर्लभबोधिका और संसार वृद्धिका हेतु है सो आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और देवानन्दामाताकी कुक्षिसे निकलने रूप गर्भापहारको तथा त्रिशलामाताके उदरमें प्रवेश करने रूप गर्भ संक्रमणको अतिनिन्दनीक विनय विजयजी तथा अन्धपरंपरावाले वर्तमानमें जो लोग कहते हैं सो ऐसा कहने वालोंकी पूर्ण अज्ञानता है क्योंकि जो उपरकी बातको निन्दनीक ठहराओगे तब

तो माताकी कुक्षिसे निकलने रूप जन्मको तथा देवलोकसे च्यव करके माताकी कुक्षिमे प्रवेश करने (उत्पन्न होने) रूप च्यवनको भी तुम्हारे कहनेसे तो निन्दनीक पना प्राप्त हो जावेगा और निन्दनिकपनेको आप लोग कल्याणक मानोगे नही तब तो च्यवन, गर्भापहार, और जन्म, यह तीनो कल्याणक आप लोगोके अमान्य ठहरनेसे तुम्हारी कल्पना मुजब तो श्रीमहावीरस्वामीके तीनही कल्याणक रह जावेगे सो तो कदापि नही बन सकता इसलिये संसारके व्यवहारिक स्वरूपको तथा कारण कार्य भावको और लाभालाभको जाने बिना भगवान्के छठे कल्याणकके निषेध करनेके झगडेसे भगवान्के गर्भापहार की निन्दा करना सो अनन्तभव भ्रमणके हेतुको तथा मिथ्यात्वको छोड कर शास्त्रानुसार छहो कल्याणकोको माननेकी शुद्ध श्रद्धामे तत्पर होकर आत्म कल्याणके कायमे उद्यम करना चाहिये जिसमें सार है नतु निषेधके मिथ्यात्वमें आगे इच्छा आपकी

और च्यवनादि पाचो कल्याणकोकी तरह श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकमे भी सब जीवोको सुख तथा तीन जगतमे उद्योत और नमुत्थुणं न होनेकी भ्रांतिसे उसीको कल्याणक माननेमें शंका करने वालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके लिये भी इसका निर्णय आगे लिखनेमें आवेगा,–

और भी यहा विचारने योग्य एक बात है, कि-अपने भगवान्की लोक विरुद्ध निन्दाकी कोई भी बात होवे तो उसीको उनके भक्तजन, जान-बुझकर कदापि प्रगट नहीं कर सकते किन्तु अवश्यमेव गुप्तपने रक्खेंगे परन्तु श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको तो अनेक शास्त्रोंमें विस्तार पूर्वक तथा कारण कार्यभाव सहित वर्णन करनेमें आया है और विशेषमें श्रीवीर-

प्रभुके ही आगे सूर्याभदेवने समोवसरणके पास बतीस प्रकारका नाटक करके श्रीगौतम स्वामी आदिको दिखाया जिसमें प्रभुके च्यवन, गर्भापहार, जन्मादिकोंका वर्णन भी खुलासा पूर्वक दिखाया है इसलिये जो गर्भापहार निन्दनीक होता तो भगवान्का पूर्ण भक्त सूर्याभदेव वहाँ नाटकमें उसीके स्वरूपको कदापि नहीं दिखाता तथा उसी बातको जगह जगह पर शास्त्रकार महाराज भी कदापि नहीं लिखते परन्तु लिखा है इसपर भी विवेक बुद्धिसे विचार किया जावे तो कर्मोंकी विचित्रताका दर्शाव जैन शास्त्रोंमें पक्षपात रहित लिखनेमें आया है सो भव्यजीवोंके आत्मनिर्ज्जराका कारण है इस लिये गर्भापहारकी निन्दा करनेवाले अपनी आत्माको कर्मोंसे भारी करते हैं इस बातको विवेकी तत्वज्ञ सज्जन अपनी बुद्धिसे आपही विचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी विनयविजयजीने लिखा है कि (अथ पंचहत्थुत्तरे इत्यत्र गर्भापहरणं कथं उक्तं इति चेत् सत्यं अत्रहि भगवान् देवानन्दा कुक्षौ अवतीर्णः प्रसूतपतीचत्रिशलेति असंगतिः स्यात्तन्निवारणाय पंच हत्थुत्तरेत्ति वचनं इत्यलंप्रसंगेन) इन अक्षरों करके भगवान्के देवलोकसे देवानन्दामाताकी कुक्षिसे उत्पन्न होनेका और जन्म त्रिशलामाताकी कुक्षिसे होनेका दिखा करके असङ्गति निवारणके लिये 'पंच हत्थुत्तरे' लिखनेका कारण विनयविजयजीने ठहराया और गर्भापहारके छठे कल्याणकको निषेध किया सो शास्त्रोंके तात्पर्यार्थको समझे बिना अज्ञानतासे अथवा गच्छकदाग्रह रूप अभिनिवेशिकमिथ्यात्वकी मायावृत्तिसे भोलेजीवोंको भ्रमानेके लिये वृथा ही परिश्रम करके अपनी विद्वत्ताकी हंसी करा है हैं क्योंकि देखो—प्रथम तो श्रीकल्पसूत्रमें 'पञ्चहत्थुत्तरे'का

जो पाठ है सो असङ्गति निवारणेके लिये नहीं किन्तु हस्तोत्तरा नक्षत्रमें पांचो कल्याणकोंको प्रगटपने दिखाने वाला है क्योंकि आषाढ़ शुदी ६ के हस्तोत्तरा नक्षत्रमें देवानन्दामाताके उदरमें भगवान्‌के अवतार लेने रूप प्रथम च्यवन कल्याणकमें चौदह स्वप्न तथा पुत्र उत्पत्ति, वगैरहकी व्याख्याकी तरह ही आश्विन वदी १३ के हस्तोत्तरा नक्षत्रमे त्रिशलामाताके उदरमें अवतार लेने रूप दूसरा च्यवन कल्याणकमें भी चौदह स्वप्न तथा पुत्र उत्पत्ति वगैरहकी विशेष विस्तारार्थ पूर्वक खुलासा व्याख्या लिखी है सो प्रसिद्ध है तथा हरवर्षे श्री पर्युषणा पर्वमें बचाती भी है इसलिये विनयविजयजीने असङ्गति निवारणेके बहानेसे दूसरा च्यवन कल्याणकका निषेध किया सो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्रभाषण करनेके सिवाय और क्या कहा जावे क्योंकि श्रीवीर प्रभुके दो च्यवन कल्याणिक सिद्ध हो गये और जन्म, दीक्षा, केवल, तथा मोक्ष, यह चार कल्याणक तो स्वयं सिद्ध होनेसे श्रीवीर प्रभुके ७ कल्याणक अनेक शास्त्रानुसार प्रगटपने दिखते हैं सो विवेकी तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे,—

और दूसरा यह है कि त्रिशलामाताके उदरमें भगवान्‌के अवतार लेनेरूप दूसरे च्यवन कल्याणकको नहीं मान्यकरके असङ्गति निवारणेके बहाने उसीको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करनेसे तो विनयविजयजीकी तथा वर्तमानिक गच्छसमस्थियोंकी कल्पना मुजब गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणकके मास पक्ष तिथि नक्षत्रका तथा चौदह स्वप्नोंको त्रिशलामाताके देखनेका और सिद्धार्थ राजाने तथा स्वप्न पाठकोंने स्वप्न सम्बन्धी पुत्र उत्पत्ति सम्बन्धी चौदह स्वप्नोंके फल कहनेका इत्यादि बातोंका जो शास्त्रकार महाराजोंने विस्तारसे वर्णन किया

है सो सब वृथा हो जावे क्योंकि जब आप लोगोंकी बुद्धि मुजब उसीको कल्याणक ही नहीं मानना था तो फिर इतनी विस्तारसे उपरकी बातों सम्बन्धी व्याख्या करनेका शास्त्र-कारोंने वृथा क्यों परिश्रम किया और जो शास्त्रकारोंने उसीको कल्याणक मान्य करके ही उपरकी बातोंकी व्याख्याकरी है तब तो असङ्गतिके बहाने विनयविजयजीका तथा वर्तमानिक गच्छ ममत्वि लोगोंका निषेध करना सो शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें वृथाही हठवादका कारण है सो विवेकी सज्जनोंको तो करना उचित नहीं है

और अब तीसरा यह है कि-श्रीकल्पसूत्रके "पञ्चहत्थुत्तरे" के पाठको विनयविजयजीने असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया, तो क्या श्रीआचारांगजी श्रीस्थानांगजी वगैरह शास्त्रोंमें श्रीवीरप्रभुके कल्याणकाधिकारे 'पञ्चहत्थुत्तरे' पाठ है वहां भी सब जगह असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे विनयविजयजी निषेध करसकेगें सो तो कदापि नहीं हो सकता क्योंकि वहां तो श्रीस्थानांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानमें श्रीगणधर महाराजने श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके नाम पूर्वक पांच पांच कल्याणकोंके नक्षत्र गिनाये हैं जिसमें श्रीपद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंका तो-पहिला च्यवन, दूसरा जन्म, तीसरा दीक्षा, चौथा केवल ज्ञान उत्पत्ति, और पांचवा मोक्ष, इस तरहसे सब तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणक दिखाये और श्रीवीरप्रभुके कल्याणकाधिकारे तो पहिला च्यवन, तथा दूसरा गर्भापहारसे गर्भ संक्रमणरूप दूसरा च्यवन, तीसरा जन्म, चौथा दीक्षा, और पांचवा केवल ज्ञानकी उत्पत्ति, यह पांच कल्याणक खुलासा पूर्वक दिखाये है,

इसलिये यहा गर्भापहारकी असङ्गति निवारणका बहाना कदापि नहीं हो सकता है क्योकि श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थंकर महाराजोसे श्रीवीरप्रभुजी तक १४ तीर्थंकर महाराजो सम्बन्धी कल्याणकाधिकारे एक समान पाठ होनेसे श्रीवीरप्रभुके पाठका अर्थ बदला जावे तो सबी तीर्थंकर महाराजोके पाठका अर्थ बदल जानेसे महान् अनर्थ हो जावे और एकही सूत्रमे एकही जगहपर तथा एकही सम्बन्धपर सबी तीर्थंकर महाराजो सम्बन्धी पाच पाच कल्याणकोकी व्याख्या समान है इसलिये श्रीपद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजो सम्बन्धी पाठका तो पाच पाच कल्याणकोका अर्थ करना और श्रीमहावीर स्वामी सम्बन्धी पाठका पाच कल्याणकोका अर्थ नही करना ऐसा सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमे प्रत्यक्ष अन्याय अन्तर मिथ्यात्वीके सिवाय आत्मार्थी तो कदापि नही करेगा इसलिये सत्यग्रहणके अभिलाषी विवेकी पाठकगणसे मेरा यही कहना है कि-असङ्गति निवारणके बहाने गर्भापहार रूप श्री वीरप्रभुके दूसरे च्यवन कल्याणकको निषेध करनेका विनय विजयजीने परिश्रम किया सो निष्केवल धर्मठगाईसे भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममे गेर करके श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बातपरकी शुद्ध श्रद्धासे भ्रष्ट करनेकी प्रत्यक्ष मायाचारी है सो विवेकी पाठकजन स्वय विचार लेना

और यहांपर भी विचारने योग्य बात है कि-श्रीस्थानांगजी सूत्रमें श्रीपद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंके तो पाचवे कल्याणकमें मोक्ष होनेका गणधर महाराजने कहा और श्रीवीरप्रभुके पाचवेंकल्याणकमें केवल ज्ञान उत्पन्न होनेका ही कहा सो इस जगह पर विनयविजयजी तथा वर्त्तमानिक तपगच्छवालो के मन्तव्य मुजब तो जो श्रीमहावीर स्वामीकेभी पांचही कल्या-

णक होते तो सभी तीर्थंकर महाराजोंकी तरहही श्रीवीरप्रभुका भी पांचवेमें मोक्ष होनेका श्रीगणधर महाराजको कथन करना योग्य था सो तो किया नहीं और गर्भापहारको कथन करके पांचवेमें केवल ज्ञानकी उत्पत्ति कहकर छठा मोक्ष गमनका कथन करना छोड़ दिया तो क्या मोक्ष छोड़ने सम्बन्धी सूत्रकारको असङ्गति करनेका कहा जा सकेगा सो तो कदापि नहीं क्यों-कि जिस बातका प्रकरण चलता होवे उसीके अनुसार अपेक्षा सम्बन्धी सूत्रकार व्याख्या करते हैं सो यहां श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पांचवे स्थानकमें एक समान पांच पांच बातोंका प्रकरण होनेसे जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके उसी एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन उन महाराजोंके पांच पांच कल्या-णक यहां दिखाये गये जिसमें श्रीआदिनाथस्वामी आदि-तीर्थंकर महाराजोंके केवलज्ञान पर्यन्त च्यार कल्याणक एक नक्षत्रमें और पांचवा मोक्ष गमन दूसरा नक्षत्रमें इस तरहसे दो नक्षत्रोंमें पांच पांच कल्याणक जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके हुए थे उन उन तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंकी व्याख्या तो श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पञ्चम स्थानमें श्रीगणधर महाराज नहीं करसके तैसेही जो श्रीवीरप्रभुके भी च्यार कल्या-णक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें और पांचवा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें इस तरहसे पांचही कल्याणक होते तो श्रीआदिनाथ स्वामीकी तरह श्रीवीरप्रभुके भी पांच कल्याणकोंकी व्याख्या यहां श्रीस्थानांगजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराज कदापि नहीं करते परन्तु श्रीवीरप्रभुके तो केवल ज्ञानपर्यन्त पांच कल्याणक उसी एक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें हुए और छठा मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें हुआ इसलिये छठे मोक्ष कल्याणकको भी यहां कथन नहीं करसके परन्तु केवल ज्ञान पर्यन्त पांच कल्याणक कथन कर दिये

सो जिन जिन तीर्थंकर महाराजोंके एक एक नक्षत्रमें पांच पांच कल्याणक हुए थे उन उन महाराजोंके पांच पाच कल्याणकोंकी व्याख्या नक्षत्रोंके नाम पूर्वक खुलासा कर दिखाई इससे श्री वीरप्रभुके छठे मोक्षको न लिखनेकी असङ्गति करनेका गणधर महाराजको दूषण कदापि नहीं लग सकता और 'पञ्चहत्थुत्तरे' शब्दके अर्थमें असङ्गति निवारणके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्व पनेसे निषेध भी नहीं हो सकता है तथापि उसीको निषेध करनेवाले सूत्र पाठके अर्थका भङ्ग करते हैं इसलिये उन्होंको उत्सूत्रभाषक अन्तर मिथ्यात्वी कहनेमें कोई दुषण भी मालूम नहीं होता है सो इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ पाठक जन स्वय विचार लेवेंगे ॥

और इस जगहपर कितनेही विवेक रहित ऐसा सन्देह करते हैं कि श्रीआचाराङ्गजी तथा श्री स्थानाङ्गजी सूत्रमें उपरोक्त सम्बन्धवाले पाठोमें कल्याणक शब्द देखनेमें नहीं आता है तो फिर कल्याणक कैसे मासे जावे, सो ऐसा सन्देह करने वालोंकी अज्ञानताको दूर करनेके लिये, मेरा इतनाही कहना है कि तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्मादिकोंको कल्यणकत्वपना तो जैनमें प्रसिद्ध है इसलिये जहां जहा तीर्थंकर महाराजके च्यवन जन्मादिकोंके नाम लिखे होंवे वहां वहां वही च्यवन जन्मादिकल्याणक समझनेचाहिये (और गर्भापहारको भी दूसरे च्यवनकी प्राप्ति होनेसे गर्भापहारको दूसरा च्यवन कल्याण माननेमें आता है) इसका विशेष निर्णय आत्मारामजीकेलेखकी समीक्षामें आगेलिखनेमें आवेगा ;—

और चौथा यह है कि-जैसे इसीही श्रीकल्पसूत्रमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके चरित्राधिकारे "तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसा दाणीए-पंचविसाहे हुत्था" इस

तरहका पाठ है तथा श्री नेमिनाथजीके चरित्राधिकारे भी "तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते हुत्था" इस तरहका खुलासा पूर्वक पाठ है तैसेही श्रीमहावीर-स्वामीके चरित्राधिकारे भी "तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-पंचहत्थुत्तरे हुत्था' इसीही तरहका पाठ है सो अब इस जगह विवेकी पाठकगणको विचार करना चाहिये कि श्रीवीरप्रभु श्रीपार्श्वप्रभु और नेमिप्रभुके चरित्रकी आदि-मेंही तीर्थंकर भगवान्के कल्याणकाधिकारे जघन्य वाचना सम्बन्धीउपरकापाठ चौदहपूर्वधर श्रुतकेवलि श्रीभद्रबाहुस्वा-मीने श्रीकल्पसूत्रमेंकहा है और इनही पाठोंकी उत्कृष्ट वाचना पूर्वक खुलासा व्याख्या खास सूत्रकार महाराजनेही करी है सो श्रीपार्श्वप्रभुके पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें तथा श्रीनेमि-प्रभुके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए इस तरहका अर्थ विनयविजयजी तथा वर्त्तमानिक सब कोई तपगच्छवाले खुलासा पूर्वक करते हैं तैसेही श्रीवीरप्रभुके भी पांचकल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें हुए ऐसा अर्थ सूत्रकार महाराजके अभिप्राय मुजबही तपगच्छवालोंको करना चाहिये क्योंकि एकही सूत्रमें एकही सम्बन्ध वाले एकही समान पाठोंका एकही शास्त्रकार महाराजने कथन किये हैं उसीसे एकही तरहके अर्थके सिवाय दो तरहके अर्थ कदापि नहीं हो सकते हैं तथापि विनयविजयजीने असङ्गति निवारणके बहाने श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे "पंच हत्थुत्तरे' पाठका अर्थ बदलाया सो प्रत्यक्षपने सूत्र पाठके अर्थकी चोरी करी है— क्योंकि 'पंच हत्थुत्तरे' पाठका च्यार कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें ऐसा अर्थ करके गर्भापहारके कल्याणकको अकल्याणक ठहराके उडा देनेका इतना महान् अनर्थ कदापि काले नहीं

हो सकता है तथा किसी भी पूर्वाचार्यने ऐसा अनर्थ किसी भी प्राचीन शास्त्रमें किसी जगहपर भी नहीं लिखा है तो फिर विनयविजयजी वगैरह आधुनिक कदाग्रही लोगोंने सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें सूत्रपाठके अर्थका भङ्गरूप उत्सूत्रभाषणके झगड़ेको वृथा क्यों स्वीकार करके अपनी आत्माको ससारगामी करनेका कारण किया होगा तथा वर्तमानमें क्यों करते है जिसको तो तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वय विचार लेवेंगे,—

और ऊपरमें तीनों तीर्थंकर महाराजोंके पाच पांच कल्याणको सम्बन्धी सूत्रके पाठोंकी टीकाओंके पाठोमें भवनूरूप क्रिया एक समान होते भी महावीर स्वामीके पांच कल्याणक हस्तोत्तर नक्षत्रमें कहनेके बदले च्यारही कल्याणक कहकर उसीके अन्तरगत साथके गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निकालकर अकल्याणक कहते हुए श्रीसिद्धहेमके तथा पाणिनिय व्याकरणके और महाभाष्यके नियमका भङ्ग करते विनयविजयजीको तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धरानेवालोंको तत्त्वज्ञार्थ ज्ञाताओंके आगे अपने विद्वत्ताकी हासी करानेकी कुछ भी लज्जा नहीं आई क्योंकि “सन्नियोग सिष्टाना सहैव प्रवृत्ति सहैव निवृत्ति ॥ तथा ॥ एक योग निर्दिष्टाना सहवा प्रवृत्ति सहवा निवृत्ति” इस वचनानुसार ‘पञ्चहत्थुत्तरे होत्थत्ति” इस पाठकी व्याख्यामें अपनी कल्पना मुजब गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे निषेध करोगे तो च्यवन जन्म दीक्षादिकों भी कल्याणकत्वपनेका निषेधकी आपत्ती आजावेगा और च्यवन जन्मादिकोंको कल्याणक मानोगे तो उसीके भी साथ अन्तरगत गर्भापहार भी होनेसे उसीको तो स्वयही कल्याणकत्वपना प्राप्त हो जावेगा इसलिये व्याकरणके भी

न्यायानुसार गर्भापहारको कल्याणकत्वपना प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है सो व्याकरणके नियमानुसार आपलोग गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको कदापि निषेध नहीं कर सकोगे इतने परभी गच्छकदाग्रहके हठवादरूपी अन्यायसे गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करोगे तो व्याकरणके नियमका भङ्ग हो जावेगा सो विवेकी विद्वानोंको तो करना कदापि उचित नहीं है तथापि हठवादीजन करें तो उनके कल्पनाको तो कोई रोक नहीं सकता क्योंकि जब हठवादसे शास्त्रोंके पाठोंकोभी उत्थापन करके उसीके अर्थोंको भङ्ग करते जिनको लज्जा नहीं तो फिर व्याकरणके नियमकी तो क्या गिनती और विनयविजयजी तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धरानेवाले होकरके भी सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें सूत्र पाठके अर्थका भङ्ग और व्याकरणकेनियमका भङ्ग करतेहुए अपनीकल्पना मुजब प्रत्यक्ष अन्यायवाला असङ्गतअर्थ करके भोलेजीवोंको कदाग्रहके भ्रममेंगेरतेहैं सो यह बड़ेही अफसोसकी बात है

और यहां उपर्युक्त व्याकरणके नियमका आलम्बनलेकरके राज्याभिषेककोंभी कल्याणकत्वपना सिद्ध करनेका कोई आग्रह करेतोभी नहीं बन सकता है क्योंकि श्रीभद्रबाहुस्वामीजीका कथन किया हुआ इसीही श्रीकल्पसूत्रमें श्रीआदिनाथजीके चरित्राधिकारे कल्याणक सम्बन्धी राज्याभिषेकके बिना चयवन जन्म दीक्षादि कल्याणकोंका पाठ मौजूद है तथा तपगच्छकेही विद्वानोंने श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी व्याख्यायोंमें राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है जिसका खुलासा कर दिया है और इसका विशेष खुलासा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ४९० से ४९७ तक छप गया है इसलिये उपरके नियमका आलम्बनसे राज्याभिषेककों कल्याणक बनानेका आग्रह करना सर्वथा अनुचित है और

श्रीवीरप्रभुके चरित्राधिकारे तो गर्भापहारके विना किसी भी शास्त्रमें पाठ नहीं है इसलिये इनको तो कल्याणक मानना सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक प्रत्यक्षपने सिद्ध है और गर्भापहारके सहित सब शास्त्रोंमें समान पाठ होनेसे उपर्युक्त व्याकरणका नियम गर्भापहार सम्बन्धी लग सकता है नतु राज्याभिषेक सम्बन्धी इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी सज्जन स्वय विचार लेवेंगे,—

और श्रीसमवायागजी सूत्रवृत्तिमें देवानन्दामाताके उदरमें भगवान्‌का उत्पन्न होना सो पञ्चमभव और वहासे ८३ वें दिन हरिणेगमैषिदेवने त्रिशलामाताके उदरमें पधराये सो छठा भव गिना है इसलिये यहां शास्त्रकार महाराजने अलग अलग भव गिनलिये जिससे किसी प्रकारका सन्देहही नहीं रह सकता है और श्रीकल्पसूत्रमें भी 'पञ्चहत्थुत्तरे' कह करके देवानन्दामाताके उदरसे त्रिशलामाताके उदरमें पधारने रूप गर्भापहारसे गर्भसक्रमणकी खुलासासे उत्कृष्ट वाचना पूर्वक व्याख्या खास सूत्रकार महाराजनेही कर दी है इसलिये इस बातमें सन्देह नहीं हो सकता है तो फिर उसीका, याने असङ्गति रूप सन्देहका निवारण करने सम्बन्धी 'पञ्चहत्थुत्तरे' शब्दको कथन करनेका सूत्रकारको कैसे कह सकते हैं अपितु कदापि नहीं इसलिये असङ्गति निवारणका बहाना करना सो गच्छममत्वसे मायाचारीकरके वृथाही भोलेजीवोंकोभ्रमानेसे कर्मबन्धके तथा ससार वृद्धिके सिवाय और कुछ भी सारनहीं है इस ऊपरकी बातको विशेष करके पाठकगण स्वय विचार लेवेंगे

और जैसे श्रीआदिनाथ स्वामीके चरित्रकी आदिमें कल्याणकाधिकारे "चउउत्तरासाढ अभीइपंचमे" ऐसापाठ श्रीभद्रबाहु स्वामीने श्रीकल्पसूत्रमेंखुलासापूर्वक कहके राज्याभिषेकको कल्या-

णकत्वपनेसे अलगकरदिया इससे राज्याभिषेकको कल्याणक माननेका झगड़ाउठगया तैसेही श्रीवीरप्रभुके चरित्रकी आदिमेंही कल्याणकाधिकारे "पउहत्थुत्तरे साइणा पंचमें" ऐसापाठ सूत्रकार महाराजही कहके गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसे अलगकरदेते तो गर्भापहारको कल्याणक माननेका झगड़ाही उठकर आपलोगोंके मन्तव्यमुजब अपनेअभीष्टकी सिद्धिहोजाती परन्तु सूत्रकारमहाराजने ऐसा न कहके गर्भापहारकी गिनती पूर्वक 'पञ्चहत्थुत्तरे साइणा परिनिव्वुडे' इस तरहका पाठ कहकरके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, वाचना पूर्वक छहों कल्याणकोंका खुलासा किया है इसलिये असङ्गति निवारणेके बहाने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेसें माननेका निषेध करने सम्बन्धी विनयविजयजीने वृथाही परिश्रम करके भोलेजीवोंको कदाग्रहमें गेरनेका कारण क्यों किया होगा सो विवेकी पाठक जन स्वयं विचार लेना,

और यहांपर कोई कहेगा कि श्रीपंचाशकजीमें तथा उसीकी वृत्तिमें गर्भापहारको अलग करके च्यवन जन्मादि कल्याणक लिखे हैं तो इसपर मेरा यही कहना है कि श्रीमहावीर स्वामीके चरित्राधिकारे सर्व जगह गर्भापहार सहित छ कल्याणकोंका खुलासा लिखा होते भी श्रीपंचाशकजीके पाठको देखकरके छ कल्याणकोंका निषेध करनेवाले पूर्ण अज्ञानी अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी मालूम होते हैं क्योंकि श्रीपंचाशकजीमें तो सब क्षेत्रोंकी सबी चौवीशीयोंके बहुत तीर्थंकर महाराजोंकी सामान्य अपेक्षा सम्बन्धी पाठ होनेसे तथा उन सब तीर्थंकर महाराजोंको गर्भापहार नहीं हो सकता होनेसे उन्होंके सम्बन्धमें श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारको भी नहीं लिखा गया तो क्या श्रीमहावीरस्वामीके चरित्राधिकारे गर्भा-

पहार सहित सर्व जगह छ कल्याणकोंका पाठ विद्यमान होते भी उसीका निषेध हो सकेगा सो तो कदापि नही इस बातका विशेष निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ट ४७५ से ४८४ तक छप गया है सो पढ़नेसे सब निर्णय हो जावेगा—

और अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि सूत्रकार महाराज जो सूत्रपाठकी रचना करते हैं उसी सम्बन्धी सामान्य विशेषताका तथा उत्सर्ग अपवादका और अल्प बहुत की तथा नयोकी अपेक्षा वगैरहसबका खुलासा तो शंका समाधान पूर्वक उसीकी व्याख्यामे टीकाकार करते हैं नतु मूल सूत्रकार जैसे श्रीकल्पसूत्रमे चौदह स्वप्नाधिकारे श्रीवीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्न हस्तीको देखा ऐसा सूत्रकारने कथन किया सो उसीकी व्याख्या करते सबी टीकाकारोंने "बहुत तीर्थंकर महाराजाओंकी माताने प्रथम स्वप्न हस्ती देखा उसीसे बहुल अपेक्षा सम्बन्धी सामान्यतासे व्यवहारिकपाठको वीरप्रभुकी माता सम्बन्धी भी सूत्रकार महाराजने कहा परन्तु विशेषसे तो श्रीवीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्न सिंहको देखा था" इस तरहका खुलासापूर्वक लिखके निर्णय किया है तैसे ही यदि 'पञ्च हत्थुत्तरे' का सूत्रकार कथन करके भगवान्‌के देवानन्दा माताके उदरमें उत्पन्न होनेका और जन्म त्रिशला माताके उदरसे होनेका कह देते और गर्भापहार सम्बन्धी किसी जगह भी किसी प्रकारका कथन नहीं करते तब तो विनयविजयजीके कथन मुजब शङ्का रुपी असङ्गतिके होनेकीभ्राति लोगोको पड़नेकाकारण होजाता उसीका निवारण करनेकी टीकाकारोंको खास आवश्यकता होती सो अवश्यमेव करना पड़ता परन्तु गर्भापहार सम्बन्धी तो खास सूत्रकारनेही विस्तारसे कथन कर दिया है इस लिये इस बातमें असङ्गतिरूपी सन्देहका होनाही नहीं बन सकता तो फिर उ-

सीका निवारणके लिये सूत्रकारको 'पञ्च हत्थुत्तरे' का पाठ कथन करने सम्बन्धी विनयविजयजीका कहना कैसे ठीक होसके अपितु कदापि नहीं अर्थात् अभिनिवेशिक मिथ्यात्व करके अन्तरके अज्ञानरूपी अन्धकारकी भ्रांतिसे भोले जीवोंको उसीके भ्रममें गेरनेके लिये उपरकी बात सम्बन्धी विनयविजयजीने इतना परिश्रम किया सो सर्वथा वृथा है और छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी विनयवियजोकेलेखका प्रति उत्तरमें छ कल्याणकोंका सिद्धि सम्बन्धी उपरोक्त मेरे लेखको वांचे बाद भगवान्की आज्ञाका विराधक दीर्घ संसारीके सिवाय आज्ञाआराधक आत्मार्थी तो उनके कुयुक्तियोंकी भ्रमजालसे अवश्यमेव तत्काल दूर हो जावेगा

और मेरेको बड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि-विनयविजयजी इतने विद्वान् होकरके भी अपने कल्पित मन्तव्यका स्थापनरूप झूठे आग्रहकी मिथ्यात्व बढ़ानेवाली भ्रमजालकी मालाको अपने हृदय पर धारण करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंका कथन किया हुआ पञ्चांगीके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे युक्त श्रीवीरप्रभुका छठा कल्याणकको निषेध करनेके लिये उपर्युक्त प्रमाणोंके पाठोंको उत्थापन करते हुए उपर्युक्त महाराजोंकी आशातनासे संसारमें परिभ्रमणका कुछ भी भय नकिया और विवेकशून्यतासे गच्छकदाग्रहके अंधपरंपरासे उत्सूत्रभाषणोंका तथा कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रहकी बातोंको सुबोधिकामें लिखके उसीमें भोले जीवोंको भ्रमानेकेलिये परिश्रम करनेमें तथा बाल लीलावत् पूर्वापर विरोधि (विसंवादी) वाक्य लिखनेमें भी कुछ कम नहीं किया है सो उपरोक्त सुबोधिकाके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखको हर वर्ष श्रीपर्युषणापर्वमें धर्म ध्यानके दिनोंमें विवेकरहित गच्छकदाग्रही

अन्धपरम्परा वाले बांचकर खण्डन मण्डनकरके श्रीवीरप्रभुकी निन्दापूर्वक उत्सूत्रभाषणोंसे कुयुक्तियोंकी भ्रमजालमें भोले जीवोंको फसाकर उन्होंके सम्यक्त्व रत्नको हानी पहुचाते हुए दुर्लभबोधिका और संसार वृद्धिका कारण रूपी महान् अनर्थ करते हैं सो तो अपने अपने कर्त्तव्यानुसार उसीके विपाक भवांतरमें भोगेंगे परन्तु इस बातके मूल कारण भूत चैत्यवासी और गच्छकदाग्रही लोग पूर्वे हुए उन्होकी अन्धपरम्परासे धर्मसागरजी वगैरहोने कल्पकिरणावली वगैरहोसे निज परके आत्मघाती तथा मिथ्यात्व बढ़ाने वाला उपरकी बात सम्बन्धी खूबही परिश्रमकिया और मिथ्यात्वके सार्थवाहीयने उसीके अनुसार विनयविजयजीनेभी जो इतनाअनर्थ कियाहै उसीके विपाक तो भवांतरमें अवश्यमेव भोगेबिना कदापि नहीं छुटेंगे

अब इस जगह विनयविजयजीकी बाललीलाका नमूना पाठकवर्गको दिखाकर इनके लेखकी समीक्षा समाप्त करूंगा सो यहां उनकी बाललीलाका नमूना, देखो-श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठकी व्याख्यामें खास आपने ही "भगवान् आषाढ सुदी ६ को देवानन्दा माताके उदरमें ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए सो नीच गोत्रके विपाकसे आश्चर्यरूप है" ऐसा लिखा फिर इसीकोंही च्यवन वस्तु कहके च्यवन कल्याणक भी आपने माना और ब्राह्मण कुलमें भगवान्‌का जन्म न होनेके लिये गर्भापहारसे निजपरके कल्याणके लिये भगवान्‌को इन्द्रने उत्तम कुलमें पधराए इस तरहसे खुलासा किया॥ अब यहां पक्षपात छोड़ करके विवेक बुद्धिसे पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि-जब भगवान्‌के ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेको नीच गोत्रका विपाक तथा आश्चर्य कहके उसीको च्यवन वस्तु अर्थात् च्यवन कल्याणक माना तो फिर नीच गोत्रत्वपना

मिटानेके लिये निजपरके कल्याणार्थं इन्द्रने भगवान्को उत्तम कुलमें पधराये सो गर्भापहारको कल्याणकत्वपना निषेध करनेके लिये नीच गोत्रका विपाक तथा आश्चर्य और वस्तुका बहाना लेकरके कल्याणकत्वपनेसे निषेध करने सम्बन्धी परिश्रम करना सो गच्छममत्वरूपी अन्तर मिथ्यात्वकी बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो तत्वज्ञ सज्जन तो स्वयं विचार लेवेंगे—

और जिन च्यवन गर्भहरणादि छहोंको वस्तु ठहराकरके कल्याणकपनेका निषेध करते हैं तो फिर उन्हीं च्यवनको कल्याणकपना और गर्भापहारको नहीं यह तो प्रत्यक्षही बाललीला दिखती है और जब उन च्यवन गर्भहरणादि छहोंको वस्तु ठहरा दी तो फिर उन्हीं छ वस्तुओंके पांच कल्याणक कहना सो भी कदापि नहीं बन सकता क्योंकि च्यवन गर्भहरणादि छ वस्तु सोही छ कल्याणक है इसका निर्णय पृष्ठ ४९७ से ५०१ तक छप गया है और प्रत्यक्षही सिद्ध है इस लिये छ कह करके फिर भी नक्षत्र सामान्यताका बहानासे छ के पांच बनाना यह भी बाललीलाही प्रतित होती है और नक्षत्र सामान्यता कहकरके फिर उसीको ही अति निन्दनीक भी कहना सोतो विशेष बाललीला है और नक्षत्र सामान्यता तथा अतिनिन्दनीक कहकरके फिर उसीको ही असङ्गति निवारणका कहना सोतो अतीवही ग्रहीलत्वपनेकी बाललीलाके सिवाय और कुछ भी नहीं क्योंकि अभिनिवेशिक मिथ्यात्व युक्त बाल प्रलापवत् उपरकी बातें एक एकसे विरुद्ध पूर्वापर बाधक होनेसे तत्वग्राही विवेकीजन तो कदापि अङ्गीकार नहीं करेगा और उपरकी बातोंमें शास्त्रोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष उत्सूत्र भाषणोंके कुयुक्तियोंके विकल्पोंके लेखकी समीक्षा तो उपरमेंहीं विस्तार पूर्वक छप गई है सो पढ़नेसे सब निर्णय हो जावेगा—

और विनयविजयजी वगैरहोंने सुबोधिकादिकोंमें अधिक मास निषेध सम्बन्धी पर्युषणा विषयिककी तरह छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी भी धर्म धूर्ताईकी ठगाईसे उत्सूत्रभाषणोंसे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी कुयुक्तियोंसे भोले जीवोको अपने फन्दमें फसानेके लिये ऐसी भ्रमजाल फैलाई है कि जिसमें अल्पज्ञ सामान्य जीव फसे उसमें तो कोई आश्चर्य नहीं है परन्तु न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारण करनेवाले आत्मारामजी जैसे वर्तमानिक प्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी उन्होकी भ्रमजालमें फस गये और इन्होकाही अनुकरण करके श्रीखरतर गच्छके पूर्वाचार्यकृत शास्त्र पाठका सद्गुरुसे विवेक बुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थको समझे विना श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजको छठे कल्याणक नवीन प्ररूपणा करनेका वृथाही जूठा दूषण लगाकर निज परको संसार वृद्धिका और दुर्लभ बोधिपनेका हेतु करके भोलेजीवोंको अपने कदाग्रहमें गेरनेका "जैन सिद्धान्त समाचारी" नामक पुस्तकमें परिश्रम करनेमें कुछ कम नहीं किया है और वर्तमानमें श्रीपर्युषणा पर्वके धर्म व्यानके दिनोंमें सुबोधिका बचाकर छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी हरवर्ष आपसमेंही खण्डन मण्डनके झगड़ेको विशेषतासे आत्मारामजीनेही प्रचलित किया है और वल्लभविजयजीने भी सन् १९०९ के नवेम्बर मासकी ७ वीं तारीखके जैन पत्रके ३० वां अङ्कमें "जैन सिद्धान्त समाचारी" की पुस्तककोही आगे करके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी अपने मन्तव्यको पुष्टकिया इसलिये अब मेरेकोभी आत्मारामजी कृत जैन सिद्धान्तसमाचारीके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करनेका अवसर प्राप्त हुआ है सो करके पाठकगणको आगे दिखाता हूं—

और जैसी भवितव्यता आगे होनेवाली होवे वैसी बुद्धिभी हो जाती है उसीके अनुसार यद्यपि सुमति और नागिल श्रावकने धर्म आराधन करनेके लिये गुरुके पास दीक्षा लेनेका अभिलाष किया इतनेमें वेषधारी पासत्थोंका योग मिला तब बाईसवें भगवान्‌के कथनानुसार सुगुरुके और कुगुरुके लक्षण नागिल श्रावकने सुमति नामा श्रावकको कहे सो सुनकर वेषधारियोंके दृष्टि रागसे सुमति श्रावकने नागिल श्रावकपर अन्तर मिथ्यात्त्वके उदयसे क्रोध करके भगवान्‌के गुण जानता था तो भी बाईसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथजीकी आशातना वाले शब्द बोले और श्रीजिनाज्ञा विराधक पासत्थोंकी प्रशंसा करी। उसीसे अनेक पुद्गल परावर्तनका तथा अनन्तभव भ्रमणका और वारंवार नरक गतियोंके दुःख विटम्बनाका महान् अनीष्ट कर्म उपार्जन किया॥ तैसे ही भावी भावके अनुसार यद्यपि विनय विजयजीने भी सुबोधिकामें नामानुसार व्याख्या करनेका परिश्रम किया होगा। तथा उत्सूत्र भाषणोंसे और भगवान्‌की आशातनासे संसार वृद्धिके विपाक भी जानते होंगे तथापि अन्ध परम्पराके दुराग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीवीरप्रभुकी आशातना पूर्वक उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह करके छ कल्याणकोंका निषेध सम्बन्धी तथा पर्युषणा विषयिक अधिक मासका निषेध सम्बन्धी विनय विजयजीने जो जो शब्द लिखे हैं उन्होंसे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करी है और उन्हीं महाराजोंकी आज्ञा मुजब पञ्चाङ्गी शास्त्र प्रमाणानुसार वर्तनेवालोंको दूषित ठहराकरके श्रीजिनाज्ञा विराधक अन्धपरम्परा वालोंकी बातको पुष्ट करी है उसीसे कितने संसार भ्रमणका कर्म उपार्जन किया होगा जिसकी

तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें और उन्हीं विनयविजयजीके वाक्योको वर्तमानिक श्रीतपगच्छ वाले गच्छममत्वी दुराग्रही लोग श्रीपर्युषणा पर्वमे धर्म ध्यानके दिनोंमें बांचकर ऊपर मूजब महान् अनर्थ करके भोले जीवोको भ्रममें गेरकर बांचनेवाले अपनी आत्माको और सुननेवालोंके सम्यक्त्व भ्रष्ट पूर्वक मिथ्यात्वमें गेरनेका और दुर्लभ बोधिपनेका कारण करते हैं इसी कारणसे ही तो वास्तव्यमे गुणनिष्पन्न "दुर्लभ बोधिका" नाम सिद्ध होती है ॥ इसलिये गच्छ दुराग्रहसे आपसके वृथा खण्डन मण्डनके झगडेसे जो महान् अनर्थ होता है उसका निवारण करनेके लिये गच्छ दुराग्रहियोंपर अनुकम्पा और भावदया लाकर उन्होको संसार परिभ्रमणके अनर्थसे बचानेके लिये सुमति नागिल श्रावकका दृष्टान्त पूर्वक तथा वर्तमानिक व्यवस्था पूर्वक भवभीरू श्रीजिनाज्ञा आराधक आत्मार्थियोंके हितशिक्षाके लिये और संसार भ्रमणके प्रवाहके कार्य्यका सुधारा करने सम्बन्धी आगे लिखनेमे आवेगा।

इत्युपाध्यायविशेषणधारकोविनयविजयविरचित श्री
कल्पसूत्रसुबोधिकाव्याख्यायां षट्कल्याणकप्रति-
षेध सम्बन्धिलेखस्य मणीसागराख्यमुनि-
कृता उपर्युक्तसमीक्षासमाप्ता जाता॥

अब इस वर्त्तमानकालमें सुप्रसिद्ध श्रीआत्मारामजीने भी अन्ध परम्पराके गच्छकदाग्रहको पुष्ट करके उसीके भ्रमचक्रमें भोले जीवोंको फसानेके लिये शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंके विकल्पोंका संग्रह पूर्वक श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका उत्थापन करके ढूंढक मतके पूर्वसंस्कारानुसार संवेगी पनेमें भी "जैन

सिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तकमें श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक निषेध सम्बन्धी मिथ्यात्व फैलाया है जिसकी भी (भव्यजीवोंका संशयके अन्तरभ्रमको दूर करनेका उपकारके लिये विनय विजयजीके लेखकी समीक्षाके अनन्तर) यहां समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं-सो दृष्टिरागका पक्षपातको छोड़करके मध्यस्थ वृत्तिसे मेरी समीक्षाको बांचकर असत्यका त्याग और सत्यका ग्रहण करना चाहिये जिसमें प्रथम तो आत्मारामजीने अपनी बनाई "जैन सिद्धान्त समाचारी" के पृष्ठ ६६ की पंक्ति १७ वींसे पंक्ति २१ वीं तक ऐसे लिखा है कि (पृष्ठ ७० से लेकर पृष्ठ ९० तक विनाही प्रयोजन पाठ लिखके ग्रन्थ भारी किया है क्योंकि षट्कल्याणक ऐसा वचन तुमारे गच्छसेही प्रगट हुवा है परन्तु और किसी भी आचार्यने श्री-महावीरस्वामीजीके षट्कल्याणक ऐसा कथन नहीं किया है)

ऊपरके लेखकी समीक्षाकरके सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं, कि ऊपरके लेखको देखकर मेरेको बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आत्मारामजी सुप्रसिद्ध इतने विद्वान् और न्यायांभोनिधिकी उपाधिको धारण करनेवाले हो करके भी अपने दुराग्रहको स्थापन करनेके लिये श्रीतीर्थङ्कर गण धरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके पाठोंको बिना प्रयोजनके ठहराते महान् उत्सूत्रसे संसार वृद्धिका कुछभी विचार नहीं किया मालूम होता है क्योंकि रायबहादुर मायसिंह मेघ-राज कोठारीकी तरफसे जो "शुद्ध समाचारी प्रकाश" नामा पुस्तक प्रगट हुई थी जिसके पृष्ठ ७० से ९० तक श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणकोंको सिद्ध करने सम्बन्धी लेख छपा है उसीमें विद्यमान तीर्थङ्कर महाराज श्रीसीमन्धरस्वामीजीका कथन किया हुआ श्रीआचारांगजी सूत्रके दूसरे श्रुत स्कन्धके

भावना अध्ययनका पाठ १, तथा उसीकी वृत्तिका पाठ २, और श्रीगणधर महाराज कृत श्रीस्थानांगजी सूत्रके पञ्चम स्थानके प्रथम उद्देशेका पाठ ३, तथा उसकी वृत्तिका पाठ ४, और चौदह पूर्वधर महाराज कृत श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सूत्रके पर्युषणाकल्पनामा अष्टम अध्ययनका पाठ ५, और उसीकी चूर्णिका पाठ ६, और श्रीचन्द्रगच्छके श्रीपृथ्वीचन्द्रजीकृत श्रीकल्पसूत्रके टिप्पणका पाठ ७, श्रीवडगच्छके श्रीविनयचन्द्रजी कृत श्रीकल्पसूत्रके निरुक्तका पाठ ८, श्रीजिनप्रभसूरिजीकृत श्रीकल्पसूत्रकी सन्देहविषौषधिनामा वृत्तिका पाठ ९, और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमण्डनसूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरिका पाठ १०, और श्रीसुलसाचरित्रका पाठ ११, इन शास्त्रोंके पाठ तथा भावार्थ और गर्भापहारके अच्छेरेको कल्याणक न माननेवालोकी शङ्काका युक्तिसे समाधान पूर्वक शुद्ध समाचारीप्रकाशके पृष्ठ ७७ से ९० तक श्रीवीरप्रभुके ६ कल्याणक सिद्ध करने सम्बन्धी शास्त्र पाठ और युक्ति पूर्वक छेपा छपा है सो उपरोक्त सब शास्त्र पाठोंको आत्मारामजी बिना प्रयोजनके ठहराकर वृथाही ग्रन्थभारी करनेका लिखते हैं तो इसपर निष्पक्षपाती तत्वज्ञ पुरुषोको विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये-कि, जैसे-कितनेही अन्तर मिथ्यात्वी दीर्घ संसारी भारीकर्मे ढूंढिये तथा तेरहापन्थी लोग अपनी कल्पनावाले कदाग्रहको जमानेके लिये श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके मूल पाठोंकोभी उत्थापन करके या बिना प्रयोजनके ठहराकरके अथवा उलटा अर्थकरके उनपाठोंपर अपनी कुयुक्तियोंके संग्रहसे बालजीवोंकी श्रद्धाभ्रष्ट करके मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हैं तैसेही आत्मारामजीने भी पूर्व स्वभावानुसार उपर्युक्त श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके

कथन किये हुए श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको दिखानेवाले उपरोक्त शास्त्र पाठोंको विना प्रयोजनके ठहराकर अपने कल्पित कदाग्रहसें भोले जीवोंको गेरनेके लिये महान् अनर्थ किया॥ हा हा अति खेदः॥ श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए शास्त्रोंके पाठोंको विना प्रयोजनके ठहरानेका महान् अनर्थ करते समय आत्मारामजीके विद्वताकी विवेक बुद्धि किस प्रदेशके कोणेमें घुस गई होगी सो जरा सा भी विचार न किया और वर्तमानमें भी उन्होंके समुदायवाले तथा उन्होंके पक्षपाती जन विद्वान् कहलानेवाले होकरके भी आत्मारामजीके ऐसे अनर्थको पुष्ट करके उत्सूत्र भाषणोंसे कुयुक्तियोंके विकल्पोंको आगे करते हुए मिथ्यात्व बढ़ानेवाले कार्य्यमें पक्षपातसे आग्रह करते हैं सो भी वर्तमानिक मंडलको लज्जाका कारण है और श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए (श्री आचाराङ्गजी श्रीस्थानांगजी श्रीकल्पसूत्रादि) शास्त्रोंके पाठोंमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको प्रगटपने कथन किये हैं सो उन्हीं शास्त्रोंके पाठोंको लिखके सत्यग्रहणाभिलाषी भव्यजीवोंको शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंको दिखाना सो शास्त्रोंके पाठ आत्मारामजीके कहनेसे विना प्रयोजनके ठहर सकेंगे सो तो कदापि नहीं परन्तु श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनका उत्थापन रूपी शास्त्रोंके पाठोंकी अवज्ञासे महान् उत्सूत्र भाषणके विपाक तो अवश्यमेव अनुभवनेही पड़ेंगे इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और "किसीभी आचार्यने श्रीमहावीरस्वामीके षट् कल्याणक ऐसाकथन नहींकियाहै" यह लेख भी आत्मारामजीका अपने विषेणको लज्जानेवाला तथा विद्वत्ताकी हँसी करानेे

वाला प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि जब श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों ने और सबी गच्छोंके पूर्वाचार्यों ने पचांगीके अनेक शास्त्रोंमें श्रीमहावीरस्वामीके षट्कल्याणक ऐसा प्रगटपने कथन किया है तो फिर इनका लिखना सत्य कैसे होसकेगा सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले निष्पक्षपाती सत्यग्राही विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोके कथनानुसार हमारे गच्छके पूर्वाचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने भी श्रीमहावीरस्वामीके षट्कल्याणक कथन किये इसमें कोई दूषण नहीं है तथापि आत्मारामजीने ढूंढक मतके पूर्व स्वभावानुसार शास्त्रकारोके तात्पर्यार्थको गुरुगम्यसे समझे बिना मिथ्यात्वके उदयसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर छ कल्याणक नवीन प्ररूपणाका मिथ्या दूषण लगाके विद्वताके आडम्बरसे भोले जीवोको अपने फन्दमें फसानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ट ६६ की पंक्ति २१ से पृष्ठ ६७ की २२ वीं पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि—

(खरतरगच्छमें परममान्य ग्रन्थ गणधर सार्द्धशतककी टीकामें ॥ यथा ॥ अभयदेव सूरय स्वर्गंगता॰ प्रसन्न चन्द्राचार्येणापि प्रस्तावाऽभावात् गुरोरादेशोनकृत केवल श्रीदेवभद्राचार्याणामग्रे भणित सुगुरूपदेशत प्रस्तावे युष्माभि सफली कार्य । इतश्च पत्तनादात्मना तृतीय॰ सिद्धान्तविधिना जिनवल्लभगणिश्चित्रकूटे विहृत - तत्र चामुण्डा प्रतिबोधिता साधरण श्राद्धस्य परिग्रह प्रमाण प्रदत्त श्रीमहावीरस्य गर्भापहाराऽभिध षष्ट कल्याणक प्रकटित क्रमेण साधारण श्रावकेण श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीरदेव गृहद्वयकारित ॥ भावर्थ—श्री अभयदेवसूरि महाराज स्वर्गकु प्राप्त हुए और प्रसन्नचन्द्र

आचार्य महाराज भी गुरुका आदेश न कर सके केवल श्रीदेवभद्र आचार्य महाराजको गुरुका आदेश कहा कि यह सुगुरु महाराजका उपदेश होनेसे अवसर आवे तब तुमने सफल करणा इतश्च पतन नगरसे दो साधु और तीसरे आप श्रीजिनवल्लभगणि सिद्धान्त विधि करके चित्रकूटमें विहार करते भये तिस चित्रकूट विषे चामुण्डाको प्रतिबोधकीनी और साधारण नामका श्रावकको परिग्रहका परिमाण कराया और श्रीमहावीरस्वामीका गर्भहरण नाम छठा कल्याणक प्रगट किया और क्रम करके साधारण श्रावकने श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीरस्वामीजीके दो मन्दिर कराये। यह उपरका पाठार्थ गणधर सार्द्ध शतककी लघु टीकाका हैं और जिसको शङ्का होवेसो अजमेरमें सौभाग्यमलजी ढढाके भण्डारमें प्राचीन पुस्तक है उसको देख लेवे। अब विचार कीजिए कि जब चित्रकूटमें श्रीमहावीरस्वामीजीका छठा कल्याणक प्रगट किया तो फिर शास्त्रके पाठ लिखके दिखाना सो ग्रन्थको भारभूत है या नहीं)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके सत्य ग्रहणाभिलाषी सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं कि, हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें आत्मारामजीने श्रीगणधर सार्द्ध शतककी लघु वृत्तिके पाठका मतलब समझे बिनाही अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजको चित्रकूटमें श्रीमहावीरस्वामीजीके गर्भापहारके छठे कल्याणकको नवीन प्रगट करनेका दूषण लगाकर श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए श्रीआचाराङ्गादि शास्त्रोंके पाठोंको (श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध करने सम्बन्धी लिखे उन्होंको) ग्रन्थके भारभूत याने सर्वथा वृथा ठहराकरके गच्छके पक्षपातके दूराग्रहसे भोले जीवोंको अपनी कल्पनाके भ्रममें गेरनेसे संसार

वद्धिका हेतुभूत मिथ्यात्व बढानेवाला वृथा ही परिश्रम क्यों किया होगा क्योंकि देखो जैसे किसी जगहपर जैन धर्मका प्रचार नहीं होवे उसी जगह जैनी साधुको अनेक तरहके कष्ट उठा करके भी जैन धर्मका प्रचार करना चाहिये सो भगवान् की आज्ञानुसार होनेसे निजपरके आत्म कल्याणका कारण है नतु आज्ञा प्रतिकूल ॥ तथा ॥ किसी नगरमें जैन समुदायमें सुगुरुके अभावसे अज्ञानताके कारण कालांतरे शास्त्रानुसार बातोका लुप्तभाव होकर शास्त्र विरुद्ध बातोंका अन्धपरम्परासे प्रवर्तन होगया हो तो वहां भी जाकर अनेक तरहकी तकलीफ उठाकरके भी शास्त्र विरुद्ध बातोंका प्रतिषेध पूर्वक शास्त्रानुसारकी लुप्त बातोंको प्रगट करना सो भी जिनाज्ञा मुजब होनेसे आत्म निर्मलताका तथा भव्य जीवोंके उपकारका कारण है-

और शिथिलाचारी द्रव्यलिंगि इहलोकस्वार्थी साध्वाभास गच्छममत्वी दुराग्रही उत्सूत्रभायकोंने सुसाधुओंकी निन्दा पूर्वक भगवान्‌की आज्ञाविरुद्ध कितनी ही बातोंमें अपनी कल्पनावाले मन्तव्य मुजब भोले जीवोंको अपने फन्दमें फँसाकर कितनीही सत्य बातोंका लुप्तभाव कर दिया होवे वहा कोई हीमतवान् आत्मार्थी परउपकारी शुद्ध मुनि महाराज जाकर उपरकी बातोका निवारण पूर्वक भगवान्‌की आज्ञा मुजब शास्त्रानुसार सत्य बातोंको प्रगट करे जिसको विवेकशून्य अन्तरमिथ्यात्वी दीर्घससारी झूठेपक्षके हठग्राही पूर्णअज्ञानीके सिवाय, विवेकी तत्वज्ञ आत्मार्थी सत्यग्राही तो नवीन बात प्रगट करनेके बहाने भोले जीवोको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकरके सत्य बातकी श्रद्धारहित कदापि नहीं करेगा ॥ तैसे ही चित्रकूट (चीतोड़) में साध्वाभास द्रव्यलिंगी गच्छकदाग्रही चैत्यवासियोंने शास्त्र प्रमाण शून्य अपने अनु-

कूल कितनीही कल्पित बातोंमें दृष्टिरागी भोले जीवोंको भ्रमाकरके अपने फन्देमें फसालिये तथा शास्त्रानुसार कितनीही सत्यबातोंका लुप्तभाव करदिया और नियतवासी परिग्रहधारी बाग बगीचे चैत्यके ममत्वी होकरके निन्दा ईर्षासे शुद्ध साधुके द्वेषी बनकर अपना अधिकार जमाये बैठे थे तब वहां श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराज पधारे सो चैत्यवासियोंके दृष्टिरागी श्रावकोंने ठहरनेंको जगा तक भी न दी तब चामुण्डा देवीके मन्दिरमें महाराज जाकर ठहरे और शास्त्रानुसार शुद्ध व्यवहार पूर्वक धर्मध्यान तपश्चर्यादि करके समय व्यतीत करने लगे सो देखकर देवी भी महाराजकी भक्त होगई तब महाराजने उपदेश देकरके जीव हिंसाका त्याग पूर्वक जैन धर्मानुरागीकरी और सर्व शास्त्रोंमें ज्ञात सूर्यकी तरह प्रसिद्धिको प्राप्त होनेवाले श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके पास सत्यग्रहणाभिलाषी अल्प संसारी आत्मार्थी जो जो भव्यजीव आने लगे उन्होंके आगे महाराज भी शास्त्रानुसार उपदेश पूर्वक चैत्यवासियोंकी कल्पित बातोंके धमकोच्छेदन करके श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातोंको प्रगट कहने लगे तथा चैत्यवासियोंके दृष्टिरागका कदाग्रहको छोड़ा करके शुद्ध व्यवहारमें लाये और वहां अविधिमार्गका निषेध पूर्वक विधिमार्गको प्रगट करा जिसमें श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहार नामा छठा कल्याणक भी लुप्तभाव को प्राप्त हो गया था जिसको भी प्रगट किया सो तो शास्त्रानुसार होनेसे विवेकशून्य या गच्छकदाग्रहियोंके सिवाय और तो कोई भी नवीन प्रकट करणा कदापि नहीं कह सकते क्योंकि देखो जैसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके ही परम पूज्य गुरुजी महाराज श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजने श्रीनवाङ्ग शास्त्रोंकी

स्तुतियें बनाई और श्रीस्थम्भनक पार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाको प्रगट करी उसीको श्रीखरतरगच्छादि वाले श्रीअभय देव सूरिजी महाराजके चरित्रमें इतिहासिक वार्ता सम्बन्धी जगह जगहपर बहुत शास्त्रोंमें लिखते आये हैं सो उन महाराज की प्रशंसाकी बात है नतु निन्दाकी। तैसेही इन्ही महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजने चीतोड़में अविधिमार्गका निषेध पूर्वक विधिमार्गके प्रगट करनेमें छठे कल्याणकको भी प्रगट किया सो श्रीखरतर गच्छवालोंने श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके चरित्रमें इतिहासिक वार्ता सम्बन्धी लिखा सो तो उन महाराजका कर्तव्य शास्त्रानुसार भव्य जीवोंको विधि मार्गका दिखानेवाला होनेसे उन महाराजकी प्रशंसाका कारण है नतु नवीन प्रगट करनेके बहाने निन्दाका कारण॥

तथा औरभीदेखो खास आत्मारामजीही अपना बनाया 'जैन तत्वादर्श' के बारहवें परिच्छेदमें गुर्वावली अधिकारे पूर्वाचार्यों के चरित्रोंमें उन महाराजोंकी प्रशसा सम्बन्धी श्रीसिद्ध सेन दिवाकरसूरिजी महाराजके चरित्रमें उन महाराजने उज्जेणी नगरीमें श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाको प्रगट करी ऐसा लिखा है जिसको श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजी महाराजकी प्रतिमाके द्वेषी तथा श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजी महाराजके निन्दक दू ढिये और तेरहापन्थी लोग भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसानेके लिये जिनमूर्तिका नवीन प्रगट करना कहे तो उनको पूर्ण अज्ञानीके सिवाय विवेकी तत्वज्ञ तो कदापि नवीन प्रगट करना नहीं कहेंगे किन्तु लुप्त बातका प्रगट होना तो अवश्यही कहेंगे तैसेही श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजने भी चीतोड़में विधिमार्गकी विच्छेद (लुप्त)बातोंके प्रगट करनेमें छठे कल्याणकको भी प्रगट किया जिसको उन महा-

राजके द्वेषी तथा श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारके निन्दक भारीकर्मी पूर्णअज्ञानी विवेकशून्य गच्छकदाग्रहीके सिवाय आत्मार्थी विवेकी तत्वज्ञ तो नवीन प्रगट करनेके बहाने भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें कदापि नहीं गेरेंगे और इसका विशेष निर्णय धर्मसागरजीने धर्म धूर्त्ताईकी ठगाईसे श्रीगणधरसार्द्ध शतककी बृहद्वृत्तिके अधूरे पाठसे भोले जीवोंको भ्रममें गेरे हैं जिसकी समीक्षा आगे होगी वहां लिखनेमें आवेगा—

अब देखिये आत्मारामजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् होकरके भी खास अपने बनाये जैनतत्वादर्शमें प्रभावक चरित्रादि शास्त्रानुसार श्रीसिद्धसेन दिवाकरसूरिजीने उज्जेणी नगरीमें श्रीएवंती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रगट करी। ऐसा खुलासा लिखते हैं उसी तरहसे ही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने भी चीतोड़में छठे कल्याणकको प्रगट किया सो तो शास्त्रानुसार की कालयोग्यसे दबीहुई लुप्त बातको प्रगट करनेका प्रत्यक्षही अर्थ है नतु शास्त्रप्रमाण विना अपनी मति कल्पनासे, सो-इस बातको आत्मारामजी तो क्या परन्तु हरेक विवेकी विद्वान्जन तो स्वयं ही जान सकते हैं तथापि आत्मारामजीने भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेके लिये दबीहुई लुप्तभावकी प्राचीन बातको प्रगट करनेके अर्थको बदलकरके अपनी मति कल्पनासे नवीन प्रकट करने रूपी उत्सूत्र प्ररूपणाका मतलब बालजीवोंको दिखाया सो अपने विशेषणको लज्जानेवाली अज्ञानताकी या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारी कही जावे या नहीं इसको विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे :—

और खरतर गच्छमें गणधर सार्द्ध शतककी टीका परमभान्य होनेका आत्मारामजीने लिखा सो भी मायाचारीका ही कारण है क्योंकि खरतर गच्छवालोंके गणधर सार्द्ध शतककी

टीका परममान्य तो क्या परन्तु पञ्चांगीके सब शास्त्र प्रकरणादि परममान्य है नतु आप लोगोकीतरह एक मान्य दूसरा अमान्य॥

और 'प्रसन्नचन्द्राचार्य भी गुरुका आदेश न कर सके, इससे गुरुआज्ञा विराधक नहीं समझना किन्तु श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज स्वर्ग जाते समय श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीको कहगये थे कि अवसर आवे जब अच्छे लग्नको देखकर श्रीजिनवल्लभगणिको मेरे पाटपर स्थापनकरना सो अवसर श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीको न मिलसका तब श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यजीने श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके कथनको श्रीदेवभद्राचार्यजीको कहा सो उन्होंने अवसर आनेसे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पाटपर श्रीजिन-वल्लभगणिजीको स्थापन करके श्रीजिनवल्लभ सूरिजी नाम रक्खा इसलिये पूर्वापरके सम्बन्ध रहित अधूरा पाठ लिखके अधूरी बातसे भोले जीवोको भ्रममें गेरना आत्मारामजीको उचित नही था, खैर—

और श्रीगणधर सार्द्धशतकको लघुवृत्तिके पाठमें किसीको सन्देह हो तो अजमेरमें सौभाग्यमलजी ढढाके भण्डारमें प्राचीन पुस्तक है जिसको देख लेनेकी आत्मारामजीने भलामण करी॥ इसपर भी मेरेको बड़ाही आश्चर्य उत्पन्न हुआ कि— आत्मारामजीने जैन सिद्धान्त समाचारीमें अपना कल्पित मन्तव्यको स्थापन करनेके लिये २५।३० शास्त्रोके पाठोको लिखे उसीमे तो किसी भी जगहपर अमुक शास्त्र पाठको अमुक जगहसे देख लेने सम्बन्धी भलामण न करी क्योंकि उन शास्त्रकार महाराजोके विरुद्धार्थमें और शास्त्रोके पूर्वापर सम्बन्धवाले पाठोको छोड़करके शास्त्रोके पाठोकी चोरीसे वीचमेंके अधूरे अधूरे पाठोंको लिखके उत्सूत्र भाषणोसे भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेका परिश्रम किया इसलिये उन शास्त्रोंके

तो पाठोंको देख लेनेकी भलामण करते इनको लज्जा आई और श्रीगणधर सार्द्धशतककी लघु टीकाके पाठको देख लेनेकी भलामण करके अपनी साहूकारी प्रगट करना चाहा परन्तु इससे तो अपनी विद्वत्ताकी विशेष हांसी करानेका कारण हुआ क्योंकि अजमेरमें उसी पुस्तकको देखनेके लिये इतनी दूर कौन जावे उसीका प्राचीन पुस्तक मेरे पास यहां ही मौजूद है उसीमें छठा कल्याणक प्रगट करने सम्बन्धी अक्षर देखके आप-लोगोंको भ्रम पड़ गया परन्तु सद्गुरुसे उसीका मतलब समझे बिना सन्देह करना उचित नहीं है क्योंकि देखो "प्रभावक चरित्र" में भी श्रीवृद्धवादिजीके शिष्य श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजीके चरित्रमें तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके चरित्रमें श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको तथा श्रीस्थम्भनपार्श्व-नाथजीकी प्रतिमाको प्रगट करने सम्बन्धी खुलासा अक्षर लिखे हैं सो तो छपाहुआ श्रीप्रभावक चरित्र प्रसिद्ध है तथा उपरकी बात अनेक शास्त्रोंमें प्रगट भी है और आत्मा-रामजीने भी सिद्धसेन दिवाकरजी महाराजके चरित्रमें श्रीऐवं-तीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रकट करनेका खुलासापूर्वक लिखा है।

प्रश्नः—अजी श्रीऐवंतीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको तो अन्य मतियोंने लुप्त करी थी तथा श्रीस्थम्भनपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा भी कालयोग्यसे लुप्तभावको प्राप्त होगई थी इसलिये श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरिजीको तथा श्रीअभयदेवसूरिजीको प्रगट करनेका अवसर मिला तब उन महाराजोंने प्रगट करी परन्तु श्रीमहावीर स्वामीका छठा कल्याणक पूर्वं कहां था तथा कब लुप्तभावको प्राप्त हुआ सो श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको प्रगट करनेका अवसर प्राप्त हुआ सो बताओ।

उत्तर —भो देवानुप्रिय। तेरेको गुरु गम्यसे या अनुभवसे श्रीजैनशास्त्रोंका गम्भीराशय समझमें नहीं आया उसीसे ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ है इसलिये अब तेरा सन्देह दूर करनेके लिये इस अवसरपर तो मेरेको इतना ही कहना है। कि जैसे श्रीऐवन्ती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमा पूर्वे थी जब अन्य मतियोंनें लुप्तभावको प्राप्त करी तथा श्रीस्थम्भनापार्श्वनाथ जीकी प्रतिमा भी पहिले थी जब कालयोग्यसे लुप्त भावको प्राप्त हुई तब उन महाराजोंनें अवसर पाय करके प्रगट करी तैसेही श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी (श्रीऋषभदेव स्वामी आदि तीर्थंकर महाराजोका तथा महाविदेहक्षेत्रमें विद्यमान भगवान् श्रीसीमन्धरस्वामीका और श्रीवर्द्धमान स्वामीके गणधर तथा पूर्वधरादि महाराजोका कथन किया हुआ) अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने था तथापि चैत्यवासियोंने अपने साधुपनेका व्यवहार छोडकर दृष्टिराग गच्छ ममत्व तथा परिग्रहादिके लोभमें पड़गये और शास्त्रानुसारके शुद्ध व्यवहारकी कितनीही बातोंका लुप्तभाव करते हुए अपनी कल्पना मुजब अविधिमार्गकी कितनीही बातोंको जिस समय प्रवर्तमानकरी उसी समय श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी लुप्तभावको प्राप्त हो गया तब चीतोड़ नगरमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीने अविधिमार्गकी कल्पित बातोंका निषेध पूर्वक शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंको प्रगट करनेमें श्रीमहावीरस्वामीका छठा कल्याणक भी प्रगट किया और जैसे श्री ऐवन्तीपार्श्वनाथजीकी मूर्त्तिको ब्राह्मणलोगोंने लुप्तकरी जिसका तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरजी महाराजने प्रगटकरी जिसके वर्षोंका नियमित समय तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय दूसरे कोई कहनेको समर्थ नही है तैसेही

श्रीमहावीरस्वामीके छठे कल्याणकका कालदोषसे द्रव्यलिंगी चैत्यवासियोंसे लुप्त हुआ जिसका तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने प्रगट किया जिसके वर्षों का नियमित समयको तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय दूसरा कोई कहनेको समर्थ नहीं है और जैसे श्रीसिद्धसेनदिवाकर सूरिजी महाराजसे तथा श्री अभयदेवसूरिजी महाराजसे भी विशेष गीतार्थ समर्थ पूर्वाचार्य पूर्वे हो गये परन्तु जिस समय जिसके योग्यसे जो बात बननेवाली होती है सो बात उसी समय उनकेही योग्यसे बनती है नतु दूसरेके योग्यसे दूसरे समयमें सो यह बात प्रसिद्ध है इसीकेही अनुसार श्रीएवन्ती पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके तथा श्रीस्थम्भन पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके उन्हीं महाराजोंकी भक्तिपूर्वक स्तवनासे प्रगट होकर शासन प्रभावना और भव्यजीवोंको उपकार होनेका कारण होनेवाला था सोही हुआ॥ तैसेही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसे भी विशेष गीतार्थ समर्थ पुरुष पूर्वे हो गये परन्तु विशेष रूपसे चैत्यवासियोंका अविधि मार्ग और दृष्टिरागके पक्षपातकी भ्रमजालको तोड़कर सिद्धान्तानुसार विधिमार्गका प्रकाश श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसेही होनेवालाथा इसलिए इन महाराजने उसीसमय चैत्यवासियोंके अनेक उपद्रवोंको भी सहन करके-विधिचैत्य १, विधिसे उसीका पूजन २, यत्नापूर्वक विधिसे उसीकी संभाल ३, चैत्यवास त्यागरूपोपदेश ४, निशिचैत्यप्रतिष्टा निषेध ५, तथा निशि स्नात्र पूजनादि निषेध ६, सूतिकागृहे मुनि भिक्षा निषेध ७, निर्वद्य ४२ दोषरहित मुनि गोचरीका व्हवहार ८, षष्ठ कल्याणकाराधन व्यवहार ९, अप्रतिबद्ध मुनि विहार १०, द्रव्यसे गुरु अङ्ग पूजन निषेध ११, चैत्य निर्माल्य भक्षण निषेध १२, निजद्रव्य तथा

चैत्यद्रव्य परिग्रह ममत्व परिहार १३, ज्ञानद्रव्य भक्षण निषेध १४, गृहस्थी गृहे भोजन करण निषेध १५, इत्यादि साधु श्रावक चैत्यादि सम्बन्धी क्रिया अनुष्ठानोंमें शास्त्र विरुद्ध अविधि मार्गकी बातोंका निषेधरूपी लुप्तभाव और शास्त्रानुसार विधिमार्गके लुप्तभावकी बातोंको प्रगट करने रूपी प्रकाशभाव करके बहुत भव्यजीवोंका श्रीजिनाज्ञाके आराधन पूर्वक आत्मसाधनके उपकारका कारण किया तथा करगये इसलिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजी जैसे पूर्व कोई भी गीतार्थ समर्थ पूर्वाचार्य नहीं हुए सो चीतोड़ने जाकरके षष्ठ कल्याणकादि उपरकी बातोंको प्रगट नहीं करसके जिससे इन महाराजको उपरकी बातें प्रगट करनी पड़ी ऐसी कुतर्क करना उपरके कारणसे सर्वथा वृथा हैं क्योंकि जब चीतोड़में तो क्या परन्तु उसी देशमेंही प्राय करके सबी जगहपर भोलेजीवोंके विधिमार्गसे श्रीजिनाज्ञा आराधनकी शुद्ध श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नके धनको हरण करके अपने दृष्टिरागके फन्दमें फँसाकर अविधि मार्गरूपी मिथ्यात्वमें गेरनेवाले वेषविटम्बक चैत्य वासी जन व्याप्त हो गये थे तो फिर ऐसे अवसरमें शुद्ध क्रिया पात्र परमोपकारी शास्त्रतत्वज्ञ और अविधिरूपी अन्धकारको नाश करनेमें सूर्य समान प्रकाश करनेवाले तथा वेषधारियोंके पाषण्डको तोड़नेमें समर्थ अनेक तरहके उपद्रवोंको सहन करनेवाले श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके सिवाय दूसरा कौन वहां जाकरके भव्यजीवोंके उपकार निमित्तशास्त्रानुसार विधि मार्गकी बातोंको प्रगट करानेके लिये इतना परिश्रम कर सकता था जिसको तो तत्वग्राही विवेकी पाठक गणभी स्वय विचार सकते हैं ;—

तथा और भी एक वर्तमानिक प्रत्यक्ष प्रमाण भी यहां पाठ-

कत्रगंको दिखाता हूं कि-देखो-अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनती निषेध करनेका तथा श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेका प्रत्यक्ष कुयुक्तियोंसे अन्यायकारक और उत्सूत्र प्ररूपणाके कदाग्रहको निवारण करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनानुसार पंचांगीके प्रमाणों मुजब और सुयुक्तियों सहित अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेके तथा श्री वीरप्रभुके छठे कल्याणकको सिद्ध करके दिखानेके लिये श्रीजिनाज्ञाराधक आत्मार्थी परोपकारी और दीक्षा पर्य्यायमें स्थविर अनेक गीतार्थ समर्थ पुरुष पहिले हो गये तथा वर्तमानमें भी होगें परंतु "श्रीपर्युषणा निर्णय" नामाग्रन्थमें उपरकी बातोंका विस्तारसे शंका समाधान पूर्वक निर्णय होनेका ६।७ वर्षके नवदीक्षित बालक तथा अल्प बुद्धिवाले मेरेसेही योग्य था सो हुआ और भव्यजीवोंके उपकारार्थ प्रगट करनेका भी अवसर आया तो क्या मेरे जैसे तथा मेरेसे विशेष विद्वान् पूर्वे कोई नहीं हुए तथा वर्तमानमें कोई नहीं सो मेरेको उपरका कार्य करना पड़ा सो तो कदापि नहीं क्योंकि पंच समवायके योग्यसे जो कार्य जिससे होनेवाला होता है सो कार्य उसीसे होगा नतु दूसरेसे ॥ बस इसीकेही अनुसार चीतोड़में चैत्यवासियोंके कदाग्रहको हटाकरके पूर्वोक्त लुप्त बातोंको श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसे ही प्रगट होनेका योग्य था सो हुआ इसलिये दूसरे पूर्वाचार्य षष्ठ कल्याणकादि बातोंको वहां उस समय प्रगट न करसके तो फिर श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने कैसे किया ऐसा सन्देह करनाही उचित नहीं है यदि ऐसा सन्देह हो गया हो तो उपरके लेखको पढ़कर निकाल देना चाहिये इस बातको विशेषतासे सत्यग्रहणाभिलाषी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे—

और श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक भव्यजीवोंको दिखानेके लिये शुद्ध सामाचारी प्रकाश नामा पुस्तकमें श्रीआचाराङ्गादि शास्त्रोंके पाठोको प० प्र० यतिजी श्रीरायचन्दजीने लिखे जिसको श्रीआत्मारामजी ग्रन्थके भार भूत याने सर्वथा वृथा ठहराते हैं सो तो भगवानूकी वाणीरूपी शास्त्रोकी अवज्ञा करके उत्सूत्रभाषणसे अपने और दृष्टिरागी जूठे पक्ष ग्राही जनोको संसार परिभ्रमणका और ज्ञानावर्णिय कर्म उपार्जन करनेका निमित्त भूत गच्छकदाग्रहको स्थापन करनेके लिये वृथाही इतना परिश्रम क्यों किया होगा जिसको तो उपरमेंही पृष्ठ ५५८।५५९।५६० के लेखको पढनेवाले पाठकवर्ग स्वय विचार लेवेंगे—

और आगे फिरभी आत्मारामजीने भोलेजीवोंको भ्रमानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ६७ की पङ्क्ति २३ वींसे पृष्ठ ६८ की चौथी पङ्क्तितक ऐसे लिखा है कि (पृष्ट ७० से लेके पृष्ठ ७३ तक आचाराङ्ग स्थानाङ्ग दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णिके जो पाठ लिखे हैं, उसमें कल्याणक शब्दका गन्ध भी नहीं है क्योंकि प्रथम आचारांगमें पच हत्थुत्तरे होत्था ऐसा पाठ है और टीकाकारने निवृत्तिस्तुस्वातौ निर्वाणं स्वाति नक्षत्रमें ऐसा कहा है और दशाश्रुत स्कन्धको चूर्णिमें छणहं वत्थुणं कालो वाघरिओ अर्थात् छ वस्तुओंका काल कथन किया ऐसा पाठ है तो फिर तुमने जोरा जोरी छ कल्याणक कैसे बना लिये)

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हू कि-हे सज्जन पुरुषो जो श्रीआत्मारामजी श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी भवभीरु सत्यग्रहण करनेवाले भव्य जीवोंके उपकारी होते तो गच्छ कदाग्रहसे श्रीआचारांगादि शास्त्रोंमें कल्याणक शब्दका गन्ध भी नहीं है इत्यादि प्रत्यक्ष

माया मिथ्या और उत्सूत्र भाषणरूप उपरका लेख लिखकरके भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये मिथ्यात्वका कारण कदापि नहीं करते क्योंकि देखो शुद्ध समाचारी प्रकाशमें श्रीमहावीर-स्वामीके षष्ठ कल्याणकाधिकारे पृष्ठ ७० से ७३ तक श्रीआचारांगादि शास्त्रोंके पाठ लिखे सो उन पाठोंसे भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणकोंरहित ठहरानेका परिश्रम आत्मारामजीने किया सो सर्वथा वृथा है क्योंकि श्रीआचारांगजीमें श्रीमहावीर स्वामीके चरित्रका वर्णन किया है जिसमें च्यवनसे लेकर मोक्ष गमन पर्यंतके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक वर्णन किया है उसीमें च्यवनादिकोंको कल्याणकत्वपना तो अनादिसे स्वयं सिद्ध है कारणकि-अनादि कालसे श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराज श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहते आये हैं तथा वर्तमानमें भी कहते हैं सो जैनमें प्रसिद्ध है तथापि श्रीआत्मा रामजीने श्रीआचारांगजी सूत्रमें श्रीवीरप्रभुके सम्पूर्ण चरित्रको ही कल्यणकों रहित ठहरा दिया। हा अति खेद। कितनी बड़ी आश्चर्यकी बात है कि न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करके भी प्रत्यक्ष मायाचारी पूर्वक अन्याय करते हुए अपने गच्छ कदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके आग्रहमें फँसकर श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंका प्रचलित कल्याणकके अर्थको जड़ मूलसे उठा करके श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी कथन करी हुई बातका उत्थापन करनेसे संसार वृद्धिका किंचित्मात्र भी हृदयमें विचार न किया॥ खैर॥

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि-जैसे किसी शास्त्रमें "गौचरीके ४२ दोष रहित भिक्षावृत्ति करके निअंतिचार पंच महाव्रतोंका पालन पूर्वक कर्मोंका क्षय करके

मोक्षको प्राप्त हुआ" ऐसा मतलबका पाठ आवे वहां यद्यपि साधु मुनिका नामवाला शब्द कथन नहीं किया गया तो भी पाच महाव्रतोसे साधु तो स्वय सिद्ध होही चुका तथापि कोई उपरमें साधु शब्दका तो गन्ध भी नहीं है ऐसा कह करके साधुका निषेध करे तो उसीको विवेकशून्य हठवादी अज्ञानी समझना चाहिये॥ तैसेही श्रीआचारागजीमें श्रीवीर-प्रभु चरम तीर्थंकर भगवान्‌के च्यवन जन्मादिकोंके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक चरित्रका वर्णन करनेमें आया है वहा च्यवनादिकोको कल्याणकत्वपना तो स्वय सिद्ध हो चुका और गर्भापहारसे गर्भ सक्रमणको तो आश्चर्यके कारणसे दूसरे च्यवनकी प्राप्ति होनेसे उसीको भी कल्याणकत्वपना तो स्वय सिद्ध है तथापि आत्मारामजीने श्रीवीरप्रभुके मोक्ष गमन पर्यत सब चरित्रको ही कल्याणकों रहित ठहराया सो तो अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवों को भ्रमाकरके शास्त्रानुसारकी सत्य बातपरसे श्रद्धा भ्रष्ट करने रूप मिथ्यात्व फैलानेके सिवाय और कुछ भी सार मालूम नहीं होता है इसको विशेषतासे तत्त्वज्ञजन स्वय विचार लेवेंगे

तथा और भी सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठकगण को यहां प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूं कि देखो श्रीकल्पसूत्रमें श्रीपार्श्व-नाथजी तथा श्रीनेमिनाथजी और श्रीआदिनाथजी भगवान्‌के चरित्र वर्णन करनेमें आये हैं वहा उन महाराजोके च्यवनादि-कोमे मोक्ष पर्यतके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा पूर्वक वर्णन किया है परन्तु वहा किसी जगहभी कल्याणक शब्दका तो कथन सूत्रकारने नहीं किया है तो भी अनादि व्यव-हारकी प्रसिद्ध बात मुजब उन्होंके च्यवनादिकोको कल्याणक-पना प्रगटपने आपलोग सब कोई कहते हैं तैसेही इसीही

श्रीकल्पसूत्रमें और श्रीआचारांगजी सूत्रमें श्रीमहावीरप्रभुके भी च्यवनादिसे मोक्ष पर्यंतका विस्तारसे चरित्र वर्णन किया है उसीको कल्याणक कहनेके बदले उलटे विशेषतासे निषेध करते हैं इससे तो शासन नायक श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि कल्याणकोंसे आपलोगोंके पूर्णतया द्वेष मालूम होता है अन्यथा २२वें २३ वें और प्रथम भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहनेका और २४ वें भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणकपना न कहके निषेध करनेका ऐसा प्रत्यक्ष अन्याय अपनी विद्वत्ताकी चतुराईको लज्जानेवाला कदापि नहीं होता, इस बातको तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेना—

और श्रीस्थानांजी सूत्रमें चौदह तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांचके नाम और नक्षत्रोंके नामोंकी खुलासा पूर्वक वर्णनके साथ सूत्रकार श्रीगणधर महाराजने व्याख्या करी है उसीमें कल्याणक शब्द न देखकर १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंको माननेमें न्यायांभोनिधिजीको तथा उन्होंके पक्षवालोंको भ्रांति पड़ गई इसलिये "उसीमें कल्याणक शब्दका गंध भी नहीं है" इत्यादि शब्द लिखके श्रीस्थानांगजीमें चौदह ही तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांचों पांचोंको कल्याणकों रहित ठहराये सो भी पूर्ण अज्ञानता या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वताकाही कारण मालूम होता है क्योंकि—उपर लिखे न्यायानुसार तीर्थंकर भगवानोंके च्यवनादि पांचोंकों कल्याणकपना तो अनादिसे स्वयं सिद्ध है तथा भगवान्के च्यवनादिकोंका नाम मात्र ही कथनसे कल्याणकका अर्थ तो जैनमें प्रगटपने है इसलिये कल्याणक शब्द लिखनेकोही कोई जरूरत भी नहीं है

और श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणक कहनेका तो प्राय करके सबकोई विवेकी जैनी जानतेही हैं तथापि न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करनेवाले आत्मारामजीने श्रीतीर्थंकर भगवान् वीरप्रभुके च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेसे निषेध करनेके लिये श्रीस्थानागजीसूत्रके मूल पाठमें श्रीगणधर महाराजके कथन किये हुए चौदह तीर्थंकर महाराजोंके सत्तर (७०) कल्याणकोंको जड मूलसे उडा करके अपने गच्छ ममत्वकी कल्पनाको स्थापन करनेके लिये ऐसा महान् अनर्थ किया परन्तु उत्सूत्रभाषणसे संसार वृद्धिका कारण भूल गये सो बडेही खेदकी बात है कि-इस कलियुगमें श्रीआत्मारामजी इतनेबडे प्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी विद्वताके अभिमानसे दृष्टिरागी भोलेजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथन किये हुए (श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेके) अर्थका भङ्ग करके सर्वथा निषेध करनेका इतना अनर्थ कारक परिश्रम करके भी शुद्ध प्ररूपक उत्कृष्ट क्रिया करनेवाले आज्ञा आराधक कहलाते हुए कुछ लज्जा भी नहीं करी सो तो अन्तर मिथ्यात्वका कारणही मालूम होता है इस बातको विशेषतासे निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे

और इतने पर भी श्रीस्थानागजीमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंको कल्याणक शब्दसे सूत्रकारने न लिखा देख करके च्यवनादिकोंको कल्याणक न माननेवाले विवेकशून्य हठवादियोंके कल्पित कदाग्रहको विशेषतासे दूर करनेके लिये इस अवसर पर पाठकगणको यहां प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिखाता हूं कि-देखो इसीही श्रीस्थानागजी सूत्रके तीसरे स्थानके मूल पाठमें तथा उसीकी वृत्तिमें श्रीतीर्थंकर भगवान्‌के

जन्म दीक्षा और ज्ञानोत्पत्ति इन तीनों बातोंके होनेसे लोकमें उद्योत होनेका तथा देवताओंके आगमनका लिखा है, परन्तु यहां सूत्रकारने और टीकाकारने भी कल्याणक शब्दका तो कथन ही नहीं किया तो क्या न्यायांभोनिधिजी यहां भी तीर्थंकर भगवान्के जन्मादिकोंको कल्याणक नहीं मानेंगे सोतो कदापि नहीं, यदि मानते होंगे तब तो बड़े ही आश्चर्य सहित महान् खेदकी बात है कि, गच्छ कदाग्रहके झगड़ेमें पड़कर उत्सूत्र भाषणसे संसार वृद्धिके भयको भूल करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये एकही सूत्रके तीसरे स्थानके पाठसे तीर्थंकर भगवान्के जन्मादिकोंको कल्याणक मानते हुए भी इसीही सूत्रके पंचम स्थानके मूल पाठसे १४ तीर्थंकर महाराजोंके चयवन जन्म दीक्षादिकोंको कल्याणक न मान्य करके विशेषतासे निषेध करनेका ऐसा प्रत्यक्ष अन्याय आत्मारामजीको अपने न्यायांभोनिधिके विशेषणको लज्जानेका कारण करना कदापि उचित नहीं था सो भी पाठकगण विचार लेना—

औरभी इसीही तरहसे श्रीजीवाभिगमजी सूत्रके मूल पाठमें तथा उसीकी वृत्तिमें नन्दीश्वरद्वीपाधिकारे सूत्रकारने तथा वृत्तिकारने श्रीतीर्थंकर भगवान्के जन्म दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण होनेसे सुर असुर देवोंका बहुत समुदाय मिलकर नन्दीश्वरद्वीपके शाश्वत चैत्योंमें भगवान्की प्रतिमाजीके आगे अठाईउत्सव करनेका लिखा है परन्तु वहां भी कल्याणक शब्द नहीं लिखा तो भी अनादि व्यवहारसे भगवान्के जन्मादिकोंका कल्याणक ही अर्थ किया जाता है और श्रीआवश्यकजी सूत्रकी निर्युक्तिमें तथा उसीकी चूर्णिमें और उसीकी वृहद्वृत्तिमें तथा लघुवृत्तिमें श्रीचौबीसही तीर्थंकर

महाराजोंके दीक्षा और ज्ञान उत्पत्तिके मास पक्ष तिथि नक्षत्रादिकोंकी खुलासाके साथ व्याख्या करी है वहां भी सबी जगह कल्याणक शब्द नहीं लिखा है और श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रमे भी कितनेही पर्वों में (विभागोंमें) बहुत तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंके नामों पूर्वक उन्होंके मास पक्ष तिथि नक्षत्रोंका खुलासा लिखा है परन्तु वहां सबी तीर्थंकर महाराजोंके चरित्रोंमें सबी जगह पर च्यवन जन्मादिकोंमें कल्याणक शब्द नही लिखा है परन्तु अनादिका प्रसिद्ध व्यवहारानुसार उन च्यवनादिकोंको कल्याणक अर्थ पूर्वक कथन किये जाते हैं तथा औरभी मौन एकादशीके गुनणेके जापकी नामावलीमें और श्रीतीर्थंकर महाराजके ५२।५२ बोलोंके यन्त्रोंमें तथा पांच कल्याणकोंकी टीपमें च्यवनादिकोंके नाम लिखे हैं वहां कल्याणक शब्दका नाम लिखे बिना भी उन्होंको कल्याणक कहनेका तो सब कोई प्रगटपने मान्य करते हैं तैसेही जो भगवान्‌की आज्ञाके आराधक आत्मार्थी विवेकी जन होंगे सो तो श्रीस्थानांगजीमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांचको कल्याणकपनेमें मान्य करेंगे परन्तु अभिनिवेशिकमिथ्यात्वी दीर्घसंसारी होंगे सो न मानेगें और कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको भ्रममें गेरेंगें तो उन्होंकेही भारी कर्मों का दोष है नतु शास्त्रकारोंका इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंके मास पक्ष तिथि नक्षत्र तथा माता पिताके नाम और नगरीके नामकी खुलासा पूर्वक व्याख्या करके टीकाकारने च्यवनादि पांच पांच स्थान कहे अर्थात् च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंको स्थान शब्दकी

संज्ञाके नामसे लिखे जिसको देखकर गुरुगम्य शून्यतासे न्यायांभोनिधिजीको भ्रांति पड़गई कि, टीकाकारने च्यवनादि पांच पांच स्थान कहे परन्तु पांच पांच कल्याणक नहीं कहे उसीसे च्यवनादि पांच पांच कल्याणक नहीं किन्तु कोई अन्य अर्थ वाची पांच पांच स्थान होंगे बस-इसी भ्रमसे तीर्थंकर महाराजके च्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंसे चौदह तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणकोंका निषेध करनेका कुछभी भय न रखकर पांच पांच स्थान कहनेका आग्रह किया सो भी अन्य मतियोंके पण्डितोंसे व्याकरणादि पढ़कर विद्वताके अभिमानरूपी अजीर्णताके कारणसे गुरुगम्य विना श्रीजैन शास्त्रोंका अतीवगहनाशय न्यायांभोनिधिजीके समझमें नहींआया मालूम होता है क्योंकि चौदह तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादि पांच पांच स्थान कहे हैं सो ही पांच पांच कल्याणक समझने चाहिये क्योंकि देखो जैसे किसी शास्त्रमें "जब इस जीवको उपरमें जानेके लिये सीढीके १४ पगथीयेरूपी १४ स्थान प्राप्त होवेंगे तब महलमें जाना होगा" इस तरह का अधिकार किसी प्रसङ्गमें आजावे तो वहां मोक्षरूपी महलमें जानेके लिये सीडीके १४ पंगथीयरूपी १४ स्थान सोही १४ गुण स्थान गुणोंकी श्रेणी प्राप्त होनेसे अनन्त और अक्षय सुख मिल सकता है इस मतलबका भावार्थवाला अर्थ करना चाहिये परन्तु वहां अन्य अर्थ वाची स्थान शब्दका अर्थ कदापि नहीं हो सकेगा तैसेही यहां भी श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें १४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवनादिकोंको पांच पांच स्थान कहे सोतो निज परके कल्याण कारक मोक्ष हेतु गुणोंकी श्रेणीरूप गुणोंके स्थान प्रगटपने कल्याणक अर्थकी सूचना कर रहे हैं इसलिये यहां टीकाकार कल्याणक शब्दका

पर्यायवाची एकार्थ सूचक स्थान शब्द लिखा है ऐसा समझना चाहिये अन्यथा स्थान कहके कल्याणकोका निषेध करनेसे तो चौदह तीर्थंकर महाराजोके ७० कल्याणकोका निषेध होनेसे श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनरूप उत्सूत्र भाषणसे मिथ्यात्वके दूषणकी प्राप्ति होवेगी इसको विशेषतासे तो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे और स्थान शब्द कल्याणकके अर्थवाला है जिसका दृष्टान्तके साथ खुलासावाला लेख पहिले भी विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५०१ से ५०२ तक छप गया है उसीको पढनेसे भी पाठकवर्गको सब निःसन्देह हो जावेंगा ;—

अब श्रीजिनाज्ञा आराधक सत्यग्रहणाभिलाषी सज्जन पुरुषोंसे इस अवसरपर मेरा यही कहना है कि-श्रीस्थानांगजी सूत्र तथा उसीकी वृत्ति सम्बन्धी उपरोक्त लेखके न्यायानुसार श्रीपद्मप्रभुजी आदि १४ तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणक सिद्ध हो गये जिसमें श्रीपार्श्वनाथजी पर्यंत १३ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्म दीक्षा ज्ञान और मोक्ष इन पाच पाच कल्याणकोंके हिसाबसे (श्रीस्थानांगजी सूत्रके मूल पाठसे तथा उसीकी टीकाके पाठसे) ६५ कल्याणक हुए और चौदहवें श्रीमहावीरप्रभुके पाच कल्याणकोंमेंसे तो प्रथम च्यवन तथा गर्भहरणसे गर्भसक्रमणरूपी दूसरा च्यवन और तीसरा जन्म चौथा दीक्षा पाचवा केवलज्ञानोत्पत्ति यह पाच कल्याणक गिननेसे चौदह तीर्थंकर महाराजोंके सत्तर (७०) कल्याणक होते हैं इसमेंसे श्रीजिनाज्ञा आराधक आत्मार्थी भवभीरु जो जैनी होगा सो तो एकही कल्याणक निषेध नहीं कर सकेगा परन्तु आज्ञाविराधक दीर्घससारी जैनभास तो ७० ही कल्याणकोंको निषेध करके सूत्र पाठके अर्थका भङ्गकर देवे

तो उसको कौन रोक सकता है और श्रीस्थानांगजीके पंचवें स्थानमें पांच पांच बातोंका कथन होनेसे सूत्रकारने श्रीशासननायकके केवलज्ञान पर्यंत पांचही कल्याणकोंका कथन किया और छठा मोक्ष कल्याणकका कथन नहीं करसके परन्तु टीकाकारनेतो विशेषता पूर्वक कार्तिक अमावस्याको स्वाति नक्षत्रमें भगवान्‌के मोक्ष गमनका छठा कल्याणकको प्रगटपने कथन कर दिया है सो दीपमालिका दीपोत्सवमालाके नामसे सब जैनमें प्रसिद्ध है इस लिये शासन नायकके छ कल्याणक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्ति युक्त होनेसे इनके निषेध करने वालोंको शास्त्र प्रमाण उत्थापक अन्तर मिथ्यात्वी न बनना चाहिये इस बातको भी विशेषतासे तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और श्रीआचारांगजी सूत्रके मूल पाठमें तथा श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठमें तो श्रीमहावीरस्वामीके पांच कल्याणक हस्तोतरा नक्षत्रमें और छठा मोक्षकल्याणक स्वाति नक्षत्रमें प्रगटपने कहा है उसीका उपरमें निर्णय हो गया है जिसको आत्मार्थी आज्ञा आराधक होवेंगे सो तो मान्य करेंगे परन्तु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी इहलोक स्वार्थी पक्के कदर कदाग्रही जन नहीं मानेंगे और भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये कुयुक्तियों करके निज परके दुर्लभ बोधिपनेका कारण करते हुए मानुष्य जन्मको बिगाड़ेंगे तो फिर भवांतरमें मानुष्य जन्ममें जिनाज्ञाकी प्राप्ति विना संसारका पार होना अतीव कठिन है—

और श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्रकी चूर्णिमें श्रीमहावीरस्वामीके चरित्रको मांगलिकके लिये कथन करते भगवान्‌के च्यवनादि छहो कल्याणकोंको छ वस्तु कही सो वस्तु शब्दको देखकर न्यायांभोनिधिजीको यहां भी भ्रम पड़गया कि-श्रीवीरप्रभुके

च्यवनादि छहोंको वस्तु कही परन्तु कल्याणक नहीं कहे बस इसी भ्रमसे श्रीमहावीरस्वामीके छहों कल्याणकोंको निषेध करके छ वस्तु स्थापन करनेका आग्रह अन्ध परम्परासे कर लिया सो भी पूर्ण अज्ञानताकाही कारण मालूम होता है क्योंकि देखो जैसे किसी शास्त्रमें कोई भी पदार्थको वस्तु शब्दसे कथन करें तो उसीके विशेषणोंको भी वस्तु शब्दकी संज्ञासे कथन करनेमें कोई हरजा नहीं हो सकता तैसेही यह संसार भी षट्द्रव्योंरूप पदार्थों की शाश्वती वस्तुओंसे चलता है उसीमें जीवको भी वस्तुकी संज्ञासे कहा तब उसीके प्रथम निजस्थान निगोदको तथा अनुक्रमे मानुष्य जन्मको और यावत मोक्ष निवासको भी वस्तु संज्ञासे कह सकते हैं तो अब यहां विवेकी तत्वज्ञोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि-जीव द्रव्यात्मक वस्तुने कालान्तरे शुभ क्रियाके योग्यसे तीर्थंकरपना उपार्जन करके देवलोक प्राप्त किया सो उसी जीवात्मक वस्तुके तीर्थंकरपनमें आना सो विशेषके, च्यवनादि गुणोंकी श्रेणियोंके विशेषणोंको वस्तु कहनेमें क्या हरजा हुआ अर्थात् कुछ भी नहीं सो अब यहां इस बातपर पाठक गणसे मेरा यही कहना है कि जीव वस्तुके तीर्थंकरपनेमे होना सो विशेषके, च्यवनादिक विशेषणोंको वस्तु कहनेमें आवे सो ही श्रीतीर्थंकर भगवान्के च्यवनादिकोंको कल्याणक समझने चाहिये इसलिये च्यवनादिकोंको वस्तु कहो चाहें कल्याणक कहो सो इस बातको विवेकी तत्वज्ञोंको तो दोनो शब्द एकार्थ सूचक पर्यायवाचीपने करके समान अर्थवाले हैं और इसका विशेष निर्णय पहिले भी विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ट ४९७ से ५०१ तक छप

गया है जिसको पढ़नेवाले निस्पक्षपाती सज्जन तो दोनों शब्द एकार्थवाले स्वयं समझ लेवेंगे :—

और इसीके अनुसार उपरोक्त लेख मुजबही श्री दशाश्रुत स्कंध सूत्रकी चूर्णीमें श्रीमहावीरस्वामीके च्यवनादि छ वस्तुओंका काल कथन किया अर्थात् च्यवन, गर्भहरण, जन्म, दीक्षा, ज्ञान, और मोक्ष, इन छ वस्तुओंके मास पक्षादि कालका कथन पूर्वक भगवान्का सम्पूर्ण चरित्रको कथन करनेका चूर्णी कारने कहा सो च्यवनादि छह कल्याणकोंका अन्तर्गत अर्थ वाला वस्तुशब्द लिखनेका समझना चाहिये नतु कल्याणकोंके निषेधवाला वस्तु शब्द इसबातको उपरोक्त लेखके न्यायानुसार निष्पक्षपाती विवेकी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीआचारांगजी सूत्रमें 'पंच हत्थुत्तरे हुत्था साइणा परिनिव्वुडे' इसी तरहका पाठ कहकर इन्हीं छहों कल्याणकोंका खुलासा खास सूत्रकारनेही कर दिया है तथा टीकाकारने भी च्यवन गर्भहरण जन्मादि सबका खुलासा लिख दिया है तथापि (आचारांगमें 'पंच हत्थुत्तरे होत्था' ऐसा पाठ है) इन सअक्षरोंसे सूत्रका अधूरा पाठ न्यायांभोनिधिजीने भोले जीवोंको दिखाकर अपने भ्रममें गेरनेका परिश्रम किया परन्तु श्री कल्पसूत्र मुजब ही खुलासा पाठ श्रीआचारांगजीमें भी होनेसे जो विवेकी आत्मार्थी जन होंगे सो तो इनकी मायाजालमें कदापि नहीं फसेंगे तथा और भी देखो 'पंच हत्थुत्तरे, इन अक्षरोंसे पांच कल्याणक तो हस्तोत्तरा नक्षत्र होनेका लिखा तथा टीकाकारके पाठसे निर्वाण स्वाति नक्षत्र में होनेका लिखा सो तो भगवान्का मोक्ष कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें दीवालीके नामसे प्रसिद्ध है इससे न्यायांभोनिधिजीके लेख मुजबही छ कल्याणक सिद्ध होते हैं तथापि उन्होंका

निषेध करनेका आग्रह किया सो तो प्रत्यक्ष ही मायाचारीकी धर्म ठगाईके सिवाय और कुछ भी सार मालूम नहीं होता है.

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि श्री खरतर गच्छ वालोंने तो शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक मान्य किये हैं इसीलिये जोरा जोरी छ कल्याणक बना लेने सम्बन्धी न्यायांभोनिधिजीका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या है परन्तु 'चोरदंडे कोटवालको' इस कहावत अनुसार विपरीत न्याय करके न्यायांभोनिधिजी छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये 'वस्तु' 'स्थान' शब्दका साहरा लेकर उसका तात्पर्य्य समझे विना ही श्रीआचारांगजी तथा श्रीस्थानागजीका मूलपाठ टीका और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी चूर्णी सहित पाठोंका शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें अपनी मति कल्पना मुजब अर्थ करके छ कल्याणकोंका निषेध करते हुए जोरा जोरीके साथ सूत्र पाठका अर्थ भङ्ग करके १४ तीर्थंकर महाराजोंके ७० कल्याणक निषेध करनेका कितना बड़ाभारी महान् अनर्थ करके भी अपनी कल्पनाके कदाग्रहमें अज्ञ जीवोंको फंसाकर अपनी बात जमाना चाहा परन्तु उत्सूत्र भाषणके महान् अनर्थसे संसार वृद्धिका भय न किया-खैर, अब जो श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी विवेकी जन होंगे सो तो उपरोक्त लेखके तथा इस ग्रन्थके अवलोकनसे इनके भ्रमजालमें कदापि नही पड़ेंगे और इनके समुदायवालोंको तथा इनके पक्षधारियोंको भी अपना हठवाद छोड़कर सत्य बातको ग्रहण पूर्वक भव्य जीवोंको भगवान्‌की आज्ञानुसार सत्य बातका शुद्ध उपदेश करके निज परके आत्म हितमें प्रवर्तमान होना चाहिये जिसमें संसार निर्वृत्ति है परन्तु गुरु और गच्छके पक्षपातसे अन्ध परम्पराके

कदाग्रहको पुष्ट करनेमें तो संसार वृद्धिके सिवाय और कुछ सार नहीं है ॥ मेरेको तो भव्य जीवोंके उपकारार्थ तथा आप लोगोंकी धर्मबन्धुकी प्रीतिसे उत्सूत्र प्ररूपणाके कदाग्रहका निषेध पूर्वक भगवान्‌की आज्ञानुसार सत्य बातका दर्शाव और हितशिक्षा लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना या न करना आपलोगोंकी इच्छाकी बात है।

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ट ६८ से ७० की पंक्ति १६ वीं तक श्रीपंचाशकजी तथा उसके वृत्तिका पाठ शब्दार्थ सहित लिखकर श्रीमहावीरस्वामीके पांच कल्याणकोंका स्थापनपूर्वक छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये परिश्रम किया सो भी अज्ञानतासे उत्सूत्र भाषण करके पूर्वापर संबंध रहित अधूरे पाठसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें वृथाही भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये अपने विशेषणको लजानेका कारण किया है क्योंकि वहां तो बहुत तीर्थंकर महाराजों संबंधी सामान्य पाठ है इसलिये उस पाठसे श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंमें प्रगटपने विशेष करके जो छ कल्याणकोंका कथन किया है सो निषेध कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि देखो जैसे श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रके दशवें पर्वमें श्रीवीरप्रभुके चरित्रमें चौदह स्वप्नाधिकारे प्रथम स्वप्नमें सिंहका वर्णन देखकर और श्रीगणधर महाराजकृत श्रीकल्पसूत्रमें श्रीवीरप्रभुके चरित्रमें चौदह स्वप्नाधिकारे प्रथम स्वप्नमें हस्तीका वर्णन देखकर उसुलके उसीमें सामान्य विशेषताकी अपेक्षाको समझे बिना, प्रथम स्वप्नमें हस्तीका स्थापन करके सिंहका निषेध करे तो उत्सूत्रभाषणका दोष लगे तैसेही श्रीपंचाशकजीके पाठसे पांचका स्थापन करके श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने छ कहे हैं जिन्होंको

न्यायांभोनिधिजीने निषेध किये सो भी उत्सूत्र भाषण रूप है इसका विशेष खुलासाके साथ निर्णयका लेख तो पहिले ही न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें पृष्ठ ४७५ से ४८३ तक तथा विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें ५७२ पृष्ठसे ५९६ पृष्ठतक इस ग्रन्थमें छप गया है उसके पढनेसे पाठकवर्ग स्वयं समझ सकेगे,

और फिर भी न्यायांभोनिधिजीने जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ११ की पङ्क्ति १७ से पृष्ठ १२ की पंक्ति ९ तक मायाचारी पूर्वक प्रत्यक्ष मिथ्या और अज्ञ जीवोंको भ्रमचक्रमें गेरनेके लिये ऐसे लिखा है कि,—

[हे मित्र! पच हत्थुत्तरे होत्था। साइणा परिणिव्वुए। यह छी वस्तु वांचके आपको भ्रांति हुइ है, परन्तु ऐसा ही भ्रांतिवाला ऋषभदेव स्वामीजीके विषयमेंभी पाठ है, तो फिर ऋषभदेव स्वामीजीके छी कल्याणक न माने उसका क्या कारण है? हम जानते है, कि वो पाठ आपके देखनेमें नहीं आया होगा इस हेतुमें एक श्रीवर्द्धमानस्वामीजीका भ्रातिवाला पाठ देखके आग्रहके वस हूए होगे, परन्तु अब आपकी भ्रांति और आग्रह दोनोंही दूर होनेके वास्ते पाठ दिखाते है, तथाच जम्बुद्वीप प्रज्ञप्त्या। यथा—

"उसभेणं अरहा कोसलीए पंच उत्तरासाढे अभीइ छठे होत्था। तंजहा। उत्तरा साढाहिं चुए चइत्ता गब्भंवक्कंते।१। उत्तरासाढाहिं जाए।२। उत्तरासाढाहिं रायाभिसेअं पत्ते।३। उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारिअं पव्वइए।४ उत्तरासाढाहिं अणन्ते जाव समुप्पण्णे॥५॥ अभीइणा परिणिव्वुडे।६। व्याख्या॥ उसभेण मित्यादि ऋषभोऽर्हन् पंचसु च्यवन१ जन्म २ राज्याभिषेक ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ लक्षणेषु वस्तुषु उत्तराषाढा नक्षत्रं चन्द्रेण मुज्यमानं

यस्य स तथा अभिजिन्नक्षत्रं षष्ठे निर्वाण लक्षणे वस्तुनियस्य यद्वा अभिजिति नक्षत्रे षष्टं निर्वाणलक्षणं वस्तुयस्य स तथा उक्तमेवार्थं भावयति तद्यथा उत्तराषाढाभियुते चंद्रे गेतिशेषः सूत्रे बहु वचनं प्राकृत शैलया एवमग्रेपि च्युतः सर्वार्थ सिद्ध नाम्नो महाविमानान्निर्गतः च्युत्वा गर्भेव्युत्क्रांत मरुदेवायाः कुक्षाववतीर्णवानित्यर्थः १ जातो गर्भा वासान्निःक्रांतः २ राज्याभिषेकं प्राप्तं ३ मुंडो भूत्वा आगारं मुक्त्वा अनगारितां साधुतां प्राप्तः इत्यर्थः पंचमी चात्रक्यव्लोपजन्या ४ अनंतरं यावत् केवलज्ञानं समुत्पन्नं ५ यावत् पद संग्रहः पूर्ववत् अभिजितयुते चंद्रे परिनिर्वृतः सिद्धिंगतः ६ ॥'

भावार्थः-ऋषदेवस्वामीके च्यवन १ जन्म, २ राज्याभिषेक, ३ दीक्षा, ४ ज्ञान, ५ लक्षण पंच वस्तु विषे उत्तराषाढा नक्षत्र हुआ; और अभिजित् नक्षत्र विषे छठा निर्वाणवस्तु हुवा, यही छी वस्तु न्यारे न्यारे दिखाते है, प्रथम सर्वार्थ सिद्धनामा महावीमानसें च्यवकरके मरुदेवीमाताके गर्भमें आये १ फिर जन्म हुवा, २ फिर राज्याभिषेक हुवा, ३ फिर गृहवास छोडके साधु हुए, ४ फिर केवल ज्ञान हुवा, ५ और अभिजित् नक्षत्र विषे चंद्र आयेहूए भगवान् सिद्ध हुए. ६ यह श्रीजंबुद्वीप प्रज्ञप्तिका मूलपाठ और टीकाका पाठ दिखायाहै, हे सुज्ञजनों ? विचारिये ! कि-जैसें श्रीमहावीरस्वामीजीके पाठ विषे छ वस्तु कथन करी है तैसें ही श्रीऋषभदेवस्वामीके पाठ विषेभी छ वस्तु कथन करी है तोभी तुमने श्रीमहावीरस्वामीजीके तो छीकल्याणक ठहरा लिये और ऋषभदेवस्वामीजीके न ठहराये, इस हेतुसें हमजानते हैं कि- यह ऋषभदेवजी महाराज विषयक पाठ न जाननेसें श्री महावीरस्वामीजीके पाठमें तुमकों छी कल्याणककी भ्रांति हुइ फिर भ्रांति होनेसें आग्रहकरलिया ।]

अब उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं जिसमें प्रथम तो मेरा यहा इतना ही कहना है कि-श्री-आत्मारामजीने अपने न्यायाम्भोनिधिके विशेषणको लजाने का भय न रखकर श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्तिमें टीकाकारने सब तरहकी खुलासाके साथ व्याख्या करी थी जिसके आगे पीछेके सम्बन्धवाले पूर्वापरके पाठको छोड़कर प्रत्यक्ष मायाचारी पूर्वक उत्सूत्र भाषण रूप टीकाके अधूरे पाठसे वृत्तिकारके विरुद्धार्थमें भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेका कारण किया है इस लिये पहिले वृत्तिका सम्पूर्ण पाठ यहां दिखाना उचित समझ करके श्रीमुर्शिदाबाद अजीमगञ्ज निवासी राय बहादुर धनपति सिंहके आगम संग्रहमें श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति सहित छपकर प्रसिद्ध हुई है उसमेंका पाठ यहा दिखाता हूं तथाहि श्रीहीरविजयसूरि पट्टधर श्रीविजयसेनसूरि शिष्य श्रीशांतिचन्द्रगणी विरचित श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ तथा च तत्पाठ —

अथ जन्म कल्याणकादि नक्षत्राणि आह। उसभेण मित्यादि। ऋषभो—अर्हन् पञ्चसु च्यवन जन्म राज्याभिषेक दीक्षा ज्ञान लक्षणेषु वस्तुषु उतरापाढानक्षत्र चन्द्रेण भुज्यमान यस्य स तथा अभिजिन्नक्षत्र षष्ठं निर्वाण लक्षणे वस्तुनि यस्य यद्वा अभिजित नक्षत्रे षष्ठं निवाण लक्षण वस्तु यस्यस तथा उक्तमेवार्थं भावयति तद्यथा उत्तराषाढाभियुंक्ते चन्द्रेतिशेष सूत्रे बहु वचन प्राकृत शैल्या एवमग्रेऽपि च्युत सर्वार्थ सिद्धनाम्नो महाविमानान्निर्गत इत्यर्थं, च्युत्वा गर्भे व्युत्क्रांत मरुदेवाया. कुक्षाववतीर्णं वानित्यर्थः १ जातोगर्भवासान्निष्क्रांत २ राज्याभिषेक प्राप्त ३ मुण्डोभूत्वा आगार मुक्ता अनगारितां साधुतां प्रव्रजित: प्राप्त इत्यर्थं पञ्चमी चात्रक्यब्लोपजन्या ४ अनंतर यावत केवलं

ज्ञानं समुत्पन्नं ५ यावत्पद संग्रहः पूर्ववत् अभिजित्युक्ते चंद्रे परिनिर्वतः सिद्धिंगतः॥ ननु अस्मादेव विभाग सूत्रवलादादि देवस्य षट् कल्याणकं समापद्य मानं दुर्निवारमिति चेन्न तदेव हि कल्याणकं यत्रासनप्रकंप प्रयुक्तावधयः—सकल सुरासुरेन्द्रा जितमिति विधित्सवोयुगपत् ससंभ्रमा उपतिष्ठंते नह्ययं षष्ठ कल्याणकत्वेन भवता निरूप्यमाणो राज्याभिषेकस्ता-दृश स्तेन वीरस्य गर्भापहार इव नायं कल्याणकं अनंतरोक्त लक्षण योगात् न च तर्हि निरर्थकसस्य कल्याणकाधिकारे पठनमिति वाच्यं। प्रथम तीर्थेश राज्याभिषकस्यजितमिति शक्रेण क्रियमाणस्य देवकार्यत्व लक्षणसाधर्म्येण समान नक्षत्र जाततया प्रसंगेन तत्पठनस्यापि सार्थकत्वात् तेन समान नक्षत्र जातत्वे सत्यपि कल्याणकत्वाभावे न नियत वक्तव्यतया, क्वचित् राज्याभिषेकस्याकथनेपि न दोषः॥ अतएव दशाश्रुत स्कंधाष्टमाध्ययने—पर्युषणाकल्पे श्रीभद्रबाहु स्वामिपादाः "तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोस लिए चउ उत्तरासाढे अभीइ'पञ्चमेहोत्था" इति पंच कल्याणक नक्षत्र प्रतिपादक सूत्रं बबंधिरे, नतु राज्याभिषेक नक्षत्राभि-धायकमपीति, न च प्रस्तुत व्याख्यानस्यानागमिकत्वं भाव-नीयं आचारांग भावनाध्ययने श्रीवीरकल्याणक सूत्रस्यैवमेव व्याख्यात त्वात्।

देखिये उपरके पाठमें न्यायांभोनिधिजीके ही पूज्य वृत्ति-कारने श्रीआदिनाथजीके च्यवन जन्मादि च्यार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्रमें तथा पांचवां मोक्ष कल्याणक अभिजित नक्षत्रमें होनेका खुलासा कथन किया है और प्रथम तीर्थंकरका राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें होनेके कारण प्रसङ्गसे कल्याणका-धिकारे उसका पठन सूत्रकारने कर दिया परन्तु राज्याभिषेक

कल्याणक नहीं हो सकता है इसलिये राज्याभिषेक बिना पांच ही कल्याणकोंका पाठ श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रके अष्टम अध्ययन रूप श्रीकल्पसूत्रमें श्रीभद्रबाहुस्वामीने कथन किया था सो दिखाया और श्रीआचारांगजी सूत्रके पाठसे श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणको सम्बन्धी इसारा करके श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारके छठे कल्याणककी तरह राज्याभिषेक छठा कल्याणक नहीं हो सकता है इसका भी खुलासा लिख दिया है इसलिये श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकका सहारा लेना सो भी निष्केवल हठवादसे सर्वथा अनुचित है।

और टीकाकारने इतना खुलासाके साथ व्याख्या करी होते भी शास्त्रकारके विरुद्धार्थमें पूर्वापरका पाठ छोड़कर अधूरे पाठसे न्यायांभोनिधिजीने अपनी कल्पनाका कदाग्रहमें भोले जीवोको गेरनेके लिये जानबूझ कर प्रत्यक्षपने ऐसी मायाचारी करके वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथ स्वामीके भी पाचों ही कल्याणकोंको उठा दिये सो तो अन्तर मिथ्यात्वके सिवाय ऐसा उत्सूत्र भाषण कदापि नहीं हो सकता, इस बातको विशेष करके तत्वज्ञजन स्वय विचार लेंगे।

और अब सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठकगणसे मेरा येही कहना है कि न्यायाभोनिधिजीका ऐसा प्रत्यक्ष दिखाता हुआ इतना बड़ाभारी अन्यायपर मेरेको तो क्या—परन्तु हरेक श्रीजिनाज्ञा आराधनाभिलाषी सत्यग्राही तत्वार्थी निष्पक्षपाती विवेकी पुरुषोको महान् खेद उत्पन्न हुए विना कदापि नहीं रहेगा क्योंकि देखो खास अपने ही परम पूज्य श्रीहीर विजय सूरिजीकृत श्रीजबूद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्ति तथा उपरोक्त पाठ वगैरह अनेक व्याख्याओंमें प्रगटपने लिखा है कि प्रथम

तीर्थेशका राज्याभिषेक इन्द्रने किया सो उसी नक्षत्रमें होनेके कारण श्रीआदिनाथजीके च्यवन जन्मादि कल्याणकोंके साथ उसीकोभी सूत्रकारने लिख दिया है परन्तु राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता है इस तरहका खुलासा श्रीखरतर गच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके सबी टीकाकारोंने पांचो व्याख्याओंमें लिखा है तिसपर भी श्रीआत्मारामजी न्यायके समुद्र, शुद्ध प्ररूपक कहलाते हुए भी श्रीमहावीरस्वामीके छटे कल्याणकके द्वेषसे उसीका निषेध करनेके लिये वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके भी च्यवन जन्मादि पांचों कल्याणकोंको निषेध करनेका प्रत्यक्ष ही इतना बड़ा भारी उत्सूत्र भाषण रूप लिखते संसार वृद्धिका कुछ भी भय न किया॥ हा अतीव खेद! देखिये ढढकमतका अपना पूर्वका स्वभाव न जानेकेकारण इतनेबड़े प्रसिद्धविद्वान् तथा न्यायांभोनिधि और श्रीमद्विजयानन्दसूरिका नाम धारक हो करके भी निजपरके आत्म कल्याण निमित्त शुद्ध प्ररूपणा करनेके बदले ऐसा अनर्थ कारक उत्सूत्र भाषण करके अपनी आत्माके कल्याणमें विघ्नरूप और संसार वृद्धिके हेतु भूत हो गये, अपना आत्म कल्याण तो न होने दिया परन्तु दूसरे भद्र जीवोंके भी आत्म कल्याणमें विघ्नरूप होकर आडम्बरसे बिचारे भोले जीवोंको अपनी भ्रमाजलमें फंसानेके लिये उद्यम करनेमें कुछ कम न किया खैर ;—देखो यह बात तो प्रसिद्धही है कि-एक बातका उत्थापन करनेसे उसी संबन्धी बहुत शास्त्रोंके पाठके विपरीत अर्थ करने पड़ते हैं तथा उसीकी पुष्टि करनेके लिये अनेक बातें उत्थापन करके अनेक जगह अनेक शास्त्रोंके पाठोंको भी उत्थापन करके वा उन्होंके विपरीत अर्थ करके अनेक तरहकी कुयुक्तियों पूर्वक उत्सूत्र भाषणोंसे महान् अनर्थ करते हुए निजपरके दुर्लभबोधि पनेका कारण

ढूंढिये तेरहपन्थियोंकी तरह करना पड़ता है, अर्थात्—जैसे ढूंढिये और तेरहपन्थी लोगोंने श्रीजिनमूर्त्तिके दर्शन पूजा तथा भक्तिके कारण कार्य भावसे अनन्त लाभ होनेके मतलबको समझे बिना उसका निषेध किया तब अपना कल्पित कदाग्रह जमानेके लिये उसके साथ अनेक बातें उत्थापन करनी पड़ी तथा अनेक शास्त्रोंके अर्थ भी अपनी कल्पना मुजब विपरीत करने पड़े और पंचांगीके हजारों शास्त्रोंको जड़ मूलसे अमान्य ठहरा करके श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और एकावतारी युग प्रधान प्रभावक पुरुषोंकी बड़ी अवज्ञा पूर्वक निन्दा करनेका बडा भारी महान् अनर्थ करते हुए मिथ्यात्व बढ़ानेवाली अनेक तरहकी कुयुक्तियोंके विकल्प करके भोले जीवोंको अपने भ्रमचक्रमें गेरनेका उद्यम करके निजपरके मनुष्य जन्मको वृथा गमाकर विशेषतासे संसार भ्रमण और दुर्लभबोधिका कारण किया तथा करते हैं, तैसे ही-श्री महावीरस्वामीके छठे कल्याणकको मान्य करनेके कारण कार्यको तथा उसके आराधनकी तपश्चर्या और भावनासे अनन्त लाभके फलका मतलबको समझे बिना उसका निषेध करनेके लिये—मूलसूत्रादि पचांगीके अनेक शास्त्रोंके (श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों सम्बन्धी) पाठोंके अर्थ बदलाकर अनेक तरहके उत्सूत्र भाषणों पूर्वक अनेक तरहकी कुयुक्तियों करते हुए उसकी पुष्टि करनेके लिये वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके भी च्यवन जन्म दीक्षादि कल्याणकोंको निषेध करदिये परन्तु उत्सूत्र भाषणके विपाकका भय न किया सो बड़ेही शोककी बात है कि न्यायाभोनिधिजीने विवेक बुद्धिसे विचार किये बिना ही अपनी अन्धपरंपराकी कल्पित बात जमानेका गच्छ कदाग्रहके झगड़ेमें पड़कर ऐसा अनर्थ करके निजपरके संसार वृद्धिके

सिवाय और क्या सार निकाला होगा जिसको तो विशेषतासे तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और (पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुए, यही छ वस्तु वांचके आपको भ्रांति हुई है) इत्यादि लिखकर श्रीमहावीर स्वामीके चरित्र सम्बन्धी उपरोक्त श्रीकल्पसूत्रके पाठके अर्थमें सर्वथा कल्याणकोंका अभाव पूर्वक छ वस्तु ठहराकर, छ कल्याणकोंकी भ्रांति होनेका तथा उपरका भ्रांति वाला पाठ देखकर आग्रहके वस होनेका न्यायांभोनिधिजीने ठहराया अब इस लेखपर मेरा इतना ही कहना है कि-श्रीमहावीर स्वामीके चरित्रकी आदिमें ही कल्याणकाधिकारे छ कल्याणकों सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंमें उपरके पाठ मूजब ही पाठ है तथा उपरके पाठकी ही जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक खास सूत्रकारोंनेही मूल सूत्रोंके पाठोंमें प्रगटपने व्याख्या करी है तथा उपरोक्त पाठोंकी व्याख्याओंमें टीकाकारोंने भी खुलासासे छ कल्याणक लिखे हैं तथा 'वस्तु' 'स्थान' शब्द भी कल्याणक अर्थके पर्याय वाचीपने करके एकार्थ वाले हैं और गर्भापहारको दूसरे च्यवन कल्याणककी प्राप्ति होनेसे त्रिशला माताने चौदह स्वप्न आकाशसे उतरते और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखे तथा नव महिने और ७॥ दिनमें तुम्हारे कुलमें वृषभ समान, राजराज्येश्वर पूज्य, त्रिजगतपति कुलदीपक पुत्र होगा इत्यादि स्वप्न पाठकोंके कथनका पाठ मूल सूत्रमें और उसकी अनेक टीकाओंमें विस्तार पूर्वक वर्णनके साथ प्रसिद्ध है इसलिये श्री महावीरस्वामीके छ कल्याणक शास्त्रानुसार तथा युक्ति युक्त सिद्ध होनेसे इन्होंको मान्य करनेमें हमको तो क्या परन्तु किसी भी विवेकी सत्यग्राही आत्मार्थी पुरुषको किसी तरहकी भ्रांति ही नहीं हो सकती

तथा छ कल्याणकोंकी व्याख्या सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका 'पंच हत्युत्तरे हुत्था साइणा परिनिव्वुए' यह जघन्यपाठ सत्य होने· पर भी उसको भ्रांतिवाला कहना कदापि नहीं बन सकता है और शास्त्रानुसार छ कल्याणकोंकी सत्य बातको प्रमाण करनेमें किसी तरहका आग्रह भी नहीं कहा जा सकता, तथापि न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारक श्रीआत्मारामजीने छ कल्याणकों सम्बन्धी उपरोक्त पाठको भ्रांतिवाला ठहराया तथा छ वस्तु कहके वस्तुके बहाने छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये श्रीआचारांगजी तथा श्रीस्थानांगजी और श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंके पाठोंका कल्याणक अर्थको बदलाया और भ्रांतिवाला पाठ देखकर आग्रहके वस हुए होगे इत्यादि प्रत्यक्ष मायावृत्तिसे मिथ्या लिखा सो निष्केवल बीचारे भोले जीवोंको भ्रमानेके लिये वृथा ही गच्छकदाग्रहमें फंसकर अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे उत्सूत्र प्ररूपणा करके निजपरके संसार वृद्धिका कारण किया है सो तो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं,—

और (ऐसाही भ्रांतिवाला ऋषभदेव स्वामीके विषयमें भी पाठ है तो फिर ऋषभदेवस्वामीजीके छी कल्याणक न माने उसका क्या कारण है हम जानते हैं कि-वो पाठ आपके देखनेमें नहीं आया होगा) इस उपरके लेखमें न्यायाभोनिधिजीने श्रीऋषभदेवजी सम्बन्धी श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके पाठको भ्रातिवाला ठहराया इसपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि-जैसे पीलीयेके रोगी आदमीको सपेद वस्तुमें भी पीलेपनकी भ्रांति होती है उसीसे बाल जीवोंको भी अपनी अज्ञानताकी भ्रांतिमें गेरनेका उद्यम करता है तैसे ही आप भी अपने पूर्व भवके पापोदयसे गच्छ ममत्वकी द्रव्य परम्परा करके उत्सूत्र प्ररूपनापूर्वक कुविकल्पोके स्थापनका हठवाद

रूपी पीलियेके रोगमें ग्रस्त चित्तवाले हो करके पूर्वापरकी विचार शून्यतासे विचारे भद्र जीवोंको अपने जैसे भ्रममें गेरनेके लिये वृथा ही परिश्रम करके अपनी हांसी कराई है क्योंकि राज्याभिषेक सम्बन्धी श्रीजम्बूद्वीप पन्नत्तिके पाठमें हमको तो क्या परन्तु कोई भी विवेकी आत्मार्थी तत्वज्ञ आज्ञा आराधक को किसी तरहकी भ्रांति नहीं पड़ सकती है क्योंकि वहां तो यदि उसी नक्षत्रमें वंश स्थापना, कला प्रवर्त्तना, विवाहादिका होना, वगैरह कार्य भी होते तो प्रथम कार्यंकी प्रवर्त्तनाके हेतु तथा प्रथम तीर्थंकरकी इन्द्रकृत भक्तिके कार्य रूप वस्तुओंकी यादगिरिके लिये उस प्रसङ्गमें सूत्रकार ९।१० नक्षत्र भी गिना देते परन्तु सबी कल्याणकपनेमें नहीं गिने जा सकते और राज्याभिषेकादिउपरके कार्यों की कल्याणकपना नहीं होनेसे उसकी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक उन्होंके तिथि पक्ष मासादिकोंकी व्याख्या भी सूत्रकारने नहीं करी और श्रीकल्पसूत्रादिमें विशेष रूपसे राज्याभिषेक विना पांच कल्याणकोंकी व्याख्यावाला पाठ मौजूद है और श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके उपरोक्त पाठकी व्याख्याओंमें न्यायांभोनिधिजीके ही परम पूज्य श्रीहीरविजय सूरिजीकृत वृत्तिमें तथा उपरमें ही छापा हुआ पाठ वगैरहोंमें खुलासा व्याख्यान करके किसी तरह की न्यायांभोनिधि नामधारक वगैरह किसीको भ्रांति पड़नेके कारणकोही जड़मूलसे नष्ट कर दिया है तथापि न्यायांभोनिधिकी उपाधि धारण करनेवाले श्रीमद्विजयानन्द सूरिजी बनकर आत्मारामजीने जान बूझ कर विना भ्रांतिवाले पाठको शास्त्रकारोंके विरुद्ध होकरके तथा आगे पीछेके पाठको चौरकी तरह छुपाकर बाल जीवोंके आगे

भ्रांतिवाला पाठ ठहरानेका उद्यम किया है सो यह कलयुगी पाखण्डियोंकी मायाजालका कुछ भी पार है, हा ! हा ! अतीव खेद !!! ऐसे विद्वान् इतना अनर्थ करते कुछ भी लज्जा नहीं करते और भद्र जीवोंके आगे जगत पूज्य जैसी बाह्य वृत्ति करके आडम्बर दिखाकर न्यायके समुद्र शुद्ध प्ररूपक, गीतार्थ, महात्मा बनते हैं जिन्होंकी आत्माका कैसे सुधार होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने-परन्तु उन्होंकी मायाजालमें फंसने वाले भोले जीवोंको मेरी यही सूचना है, कि हे जिनाज्ञाइच्छक आत्मार्थी भव्यजीवों तुम्हारी आत्माका कल्याण करना चाहते हो तो गुरु तथा गच्छके पक्षपातको और दृष्टि रागके फन्दको छोड़कर मध्यस्थ वृत्तिसे इस ग्रन्थका अवलोकन पूर्वक विवेकी सज्जनोंकी सङ्गतीसे या विवेकता पूर्वक तत्वकी तरफ दृष्टि करके असत्यका त्याग पूर्वक सत्यको ग्रहण करके अपनी आत्माके कल्याणके कार्यमें उद्यम करों, आगे इच्छा आपकी मेरेको तो लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना या न करना यह तो आपकी खुशी की बात है,—

और (श्रीऋषभदेवजीके छ कल्याणक न माने उसका क्या कारण है) न्यायाम्भोनिधिजीके इस लेखपर तो मेरेको इतना ही कहना है कि-श्रीकल्पसूत्रमें श्रीऋषभदेवजीके विशेष रूपसे पांच कल्याणकोंका खुलासापूर्वक पाठ मौजूद है तथा राज्याभिषेकको कल्याणकपना प्राप्त नहीं है जिसके लिये पहिले विनयविजयजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ट ४८९ से ४९७ तक खुलासा छप गया है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणकपनमें नहीं कहा जाता परन्तु राज्याभिषेकका पाठ आपके देखनेमें नही आया होगा, यह अक्षर लिखना न्यायाम्भोनिधिजीके अपना दूसरा महाव्रत भङ्ग करनेवाले प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि

शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तकके लेखकको उपरोक्त पाठकी अच्छी तरहसे मालूम थी तथा हमको भी उसकी अनेक व्याख्याओंके पाठों सहित कारण कार्य भाव पूर्वक सूत्रकारके तथा व्याख्याकारोंके अभिप्राय सहित अच्छी तरहसे मालूम है तब ही तो आपके मायाजालवाला कदाग्रहके भ्रमको निवारण करनेके लिये राज्याभिषेक सम्बन्धी इतना लिखा है तथा आगे लिखते हैं अन्यथा कैसे लिखते सो तो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे,—

और (हे सुज्ञ जनो विचारिये कि–जैसे श्रीमहावीरस्वामीजीके पाठ विषे छ वस्तु कथन करी तैसे ही श्रीऋषभदेवस्वामीके पाठ विषे भी छ वस्तु कथन करी हैं) इत्यादि लिखके न्यायांभोनिधिजीने वस्तुके बहाने श्रीमहावीरस्वामीके तथा श्रीऋषभदेवजीके भी च्यवनादिकोंको कल्याणकपने रहित ठहरानेका परिश्रम किया सो भी गच्छ कदाग्रहमें फँस कर अज्ञानतासे विवेक शून्यतापूर्वक अथवा मायाचारीसे उत्सूत्र प्ररूपना करके संसार वृद्धिका और अपनी विद्वताको लज्जानेका वृथाही कारण किया है क्योंकि यद्यपि वस्तु शब्द कल्याणक अर्थका सूचक पर्यायवाचीपने करके एकार्थवाला है जिसके सम्बन्धमें हमने पूर्वमें लिखा है परन्तु वस्तु शब्द सर्व अर्थोमें तथा सर्व लिङ्गोंमें और लोकालोकके सर्व पदार्थोंका सूचक है सो भी पहिले हम लिख आये है और शास्त्रके पाठका अर्थ तो शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय पूर्वक, कारण कार्य भाव सम्बन्ध सहित, प्रसङ्ग मुजब, आत्मार्थी परोपकारी टीकाकारोंके लिखे मुजब करनेमें आता है इसलिये वस्तुके बहाने श्रीऋषभदेवजीके और श्रीमहावीरस्वामीके च्यवनादि सबी कल्याणकोंका निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि देखो न्यायां-

भोनिधिजीके पूर्वज पूज्यने (श्रीजम्बुद्वीप प्रज्ञप्तिकी वृत्तिका पाठ उपरमें ही छपा है उसीमें) श्रीआदिनाथजीके च्यवनादिकोको वस्तु कही तथा उन्हीं च्यवनादिकोंको ही कल्याणक भी कहे और कल्याणकाधिकारमें ही राज्याभिषेक रूप वस्तु को कल्याणक रहित ठहराकर श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक खुलासे लिख दिये इससे भी प्रगटपने सिद्ध होता है, कि-तीर्थंकर महाराजके च्यवनादिकोंको वस्तु कहो अथवा कल्याणक कहो दोनोका मतलब एक ही है परन्तु वस्तु शब्द पदार्थ मात्रके अर्थवाला होनेसे राज्याभिषेकको कल्याणक न कहके प्रथम तीर्थकरका राज्याभिषेक उसी नक्षत्रमें इन्द्रने करके भरत क्षेत्रमें राज्यनीतिका व्यवहार प्रवर्तमान करनेका कारण किया उससे राज्याभिषेकके कार्यको वस्तु कह दिया तथा राज्याभिषेक विना पांच कल्याणक खुलासे दिखा दिये, तथा राज्याभिषेकको कल्याणकपना नहीं कहा जा सकता जिसके लिये भी पहिले लिखनेमें आ गया है .और श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको तो कारण कार्य भाव पूर्वक तथा शास्त्रोके प्रमाण मुजब और युक्तियोके अनुसार प्रगटपने कल्याणकपना सिद्ध होता है जिसका विस्तार तो इस ग्रन्थमें अच्छी तरहसे हो गया है इसलिये राज्याभिषेकको कल्याणक ठहराने सम्बन्धी तथा वस्तुके बहाने श्रीआदिनाथजीके पांचों कल्याणकोका और श्रीवीरप्रभुके गर्भापहार सहित छ कल्याणकोंका निषेध करनेका लिखा है सो सब वृथाही गच्छ कदाग्रहके अन्ध परम्पराका हठवादकी अज्ञानतासे या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे भोले जीवोको भ्रमानेवाला और निजपरके ससारका कारण रूप उत्सूत्र भाषण है सो तो उपरोक्त लेखसे विवेकी तत्वज्ञ जन स्वय विचार लेवेंगे—

और राज्याभिषेकका पाठ तो मास पक्षादिककी व्याख्या रहित सिर्फ नाम मात्र ही एक जगह पर श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रमें है तथा उसकी व्याख्याओंमें कल्याणक पनेका अभाव खुलासे लिख दिया है परन्तु श्रीमहावीरस्वामीके गर्भापहारका पाठ तो मास पक्षादि सहित खुलासाके साथ सूत्र चूर्णि वृत्ति चरित्र प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने बहुत जगहपर मौजूद है और उसको कल्याणकपना खुलासा पूर्वक लिखा हुआ है इसलिये गच्छ कदाग्रहके वृथा हठवाद से गर्भापहारके पाठकी तरह उसीके सदूश राज्याभिषेकका पाठको ठहराकर गर्भापहारका निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकका दूष्टान्त लिखना भी न्यायांभोनिधिजीको अन्याय कारक होनेसे सर्वथा अनुचित है इस बातको भी विवेकी जन स्वयं विचार सकेंगे :—

अब पाठक वर्गसे मेरा यहां इतना ही कहना है कि न्यायांभोनिधिजीने दूसरोंकी भ्रांति और आग्रह दोनो ही दूर करने सम्बन्धी प्रत्यक्ष मिथ्या और माया वत्ति युक्त लिख करके श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रके पाठको तथा उसकी वृत्तिके अधूरे पाठको दिखानेका परिश्रम करते हुए बालजीवोंके आगे अपनी बात जमाना चाहा परन्तु अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे खास आप पीलियेके रोगीवत् निजमें ही भ्रांतिमें फँस गये और वृत्तिकारके विरुद्धार्थमें वृथा ही झूठा आग्रह करके दृष्टि रागियोंको मिथ्यात्वमें गेरनेका कारण किया और राज्याभिषेकके तथा गर्भापहारके मतलबको निष्पक्षपात हो करके विवेक बुद्धि पूर्वक गुरुगम्यतासे समझे बिना वस्तु वस्तु पुकारके गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्यणकके निषेध करनेके लिये बिना ही प्रयोजन राज्याभिषेकका सहारा लिया और गच्छ

कुदाग्रहसे अपनी विद्वताकी हाँसी होनेका जरा भी भय न किया खैर। परन्तु अभी भी गच्छ कदाग्रहका मिथ्या हठवादकी कल्पित बातोंके स्थापनका आग्रहरूपी पीलियेके रोगका निवारण करनेमें अमृत समान औषधरूपी इस ग्रन्थके लेखको पढ़नेसे जो (न्यायांभोनिधिजीके परलोकजानेपर) इन्होंके समुदाय वालोंको गुरु गच्छका अन्ध परंपराके हठवादरूपी उक्त रोगका (महान् पुण्योदयका योग्य होवे तो) निवारण हो जावे और श्रीजिनाज्ञाका आराधन करनेके अभिलाषवाले अल्पकर्मी होवेंगे तब तो अपना मिथ्या हठवादको मायावृत्तिसे स्थापन करनेके लिये निज परके संसार वृद्धि करने वाले मिथ्यात्वको सेवन न करते हुए सरल होकरके इस ग्रन्थकी सत्य बातको ग्रहण करनेमें कदापि विलंब नही करेंगे।

और श्रीशान्तिचन्द्रगणिजी कृत श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृत्तिका पाठ जो ऊपरमें छपा है उसके पाठमें श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक लिखे हैं जिसको मान्य करनेमें न्यायांभोनिधिजीके समुदाय वाले इनकार करेंगे तो भी उन्होंका प्रत्यक्ष अन्याय होगा क्योंकि देखो खास न्यायांभोनिधिजी आप तो बाल जीवोंको अपनी कल्पनाका झूठा कदाग्रहमें गेरनेके लिये इसी ही पाठके पूर्वापरका सम्बन्धको तोड़कर बीचमें से अधूरे पाठको मायाचारीसे वृत्तिकारके विरुद्धार्थमें लिखके उपरोक्त पाठको मान्य करते है और हमने वृत्तिकारके अभिप्राय सहित सम्पूर्ण पाठ लिखके आत्मार्थी सत्याभिलाषी भव्यजीवोंको सत्य बात दिखानेको लिखा जिसको न मान्य करनेका झगड़ा उठाया जावे यह तो प्रत्यक्ष ही अन्तर मिथ्यात्वके अन्यायके सिवाय और क्या होगा। जिसको तो तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

और पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणों मुजब तथा युक्तियोंके अनुसार श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक प्रत्यक्ष पने सिद्ध है इसलिये श्रीशान्तिचन्द्रगणिजीने छ कल्याणक लिखे सो किसीकी संगतसे भूल करी ऐसा भी कहना अनेक शास्त्रोंके पाठोंका उत्थापनरूपी उत्सूत्र होता है इसलिये इन वृत्तिकारने छ कल्याणक लिखे जिसमें लिखनेवालेको किसी तरहका कोई दोष नहीं लग सकता है क्योंकि देखो खास वृत्तिकारने निजमें ही "न च प्रस्तुत व्याख्यानस्यानागमसिकत्वं भावनियं आचारांग भावनाध्ययने श्रीवीर कल्याणक सूत्रस्यैवमेव व्याख्यात स्वात्" इन अक्षरोंको लिख करके अपनी व्याख्या आगमानुसार सिद्ध कर दी और श्रीआचारांगजी सूत्रके भावना अध्ययन अर्थात् चूलिका अध्ययनके मूलसूत्रका पाठके प्रमाणसे श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणक दिखाये हैं तथा श्रीकल्प सूत्रके पाठसे राज्याभिषेक बिना श्रीऋषभदेवजीके पांच कल्याणकोंका पाठ पूर्वक खुलासा करदिया इसलिये इन वृत्तिकारकी उपर्युक्त व्याख्या सम्बन्धी किसी तरहका आक्षेप कोई गच्छममत्वी करेगा तो विवेकी विद्वानोंसे वृथा ही हास्य का पात्र बनेगा इसको भी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे।

तथा और भी पाठकगणको विशेष निःसन्देह होनेके लिये न्यायांभोनिधिजीके परम पूज्य व धर्मसागरजीका अनुकरण करनेवाले सुप्रसिद्ध श्रीहीरविजयसूरिजी कृत श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तिका पाठ यहां दिखाता हूं यथा,—

अथ श्री ऋषभस्य पंच कल्याणकानि राज्याभिषेक श्चेति षट् वस्तूनि यस्मिन्नक्षत्रे जातानि तानिदर्शयति॥ उसभेणसि-त्यादि॥ ऋषभो णमित्यलङ्कारे, पंचेति पंचसु च्यवन, जन्म,

राज्याभिषेक, दीक्षा, केवलज्ञान, लक्षणेषु। उत्तराषाढा यस्य स पञ्चोत्तराषाढ, अभिजिति, अभिजिन्नाम्नि नक्षत्रे षष्ठं वस्तु निर्वाण कल्याणकलक्षणं यस्यसोऽभिजित्षष्ट', होत्यति अभवत्, अथोक्त मेवार्थं ॥ तद्यथेत्यादिना व्यक्ति कुर्वन्नाह ॥ तजहेति, उत्तराषाढाभि रुत्तराषाढानक्षत्रेण चन्द्र योगे सति च्युतो देव भवात् सर्व्वार्थं सिद्धि विमानात् ॥ च्युत्वा च गर्भेव्युत्क्रांत उत्पन्न, एवं जातो योनिवर्त्मना निर्गतः ॥ रायाभिषेअन्ति ॥ राज्याभिषेक प्रथम तीर्थंकृद्राज्याभिषेकोऽस्माकं जीत मिति विकल्पवताशक्रेण क्रियमाणं प्राप्तऽभिषेको राजा सजात इत्यर्थं ॥ मुण्डेति ॥ मुण्डो भूत्वा आगारादन गारितां साधुतां प्रव्रजितो यातू नामनेकार्थत्वात् साधुत्व स्वीकृतवानि त्यर्थं ॥ तथा अणतेति ॥ अनन्तंयावत्समुत्पन्नं यावत् करणात्॥ अणुत्तरेनिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर नाण-दंसणे समुप्पणेति, प्रागुक्तार्थं विज्ञेयं ॥ अभिणति ॥ अभिजिन्नक्षत्रेण चन्द्र योगेसति परिणामत्त्वेन निर्वृत सकल कर्मांशैर्विमुक्त इत्यर्थं ॥ ननु श्रीऋषभ राज्याभिषेकस्य शक्र जीतत्वेन श्रीमहावीर गर्भसंहरणस्येव षष्ठं कल्याणकत्वमेवास्त्विवतिचेत् नैव उभयोरपि कल्याणकत्वाभावेन दृष्टात दार्ष्टांतिक त्वयोगात् नहि रूपमिव रसोपिश्रोत्रेंद्रिय ग्राह्यो भवत्यिति भवत विहायान्यकोपिवक्तं वाचालो दृष्ट श्रुतोवेति ॥

देखिये ऊपरके पाठमें प्रथम तीर्थङ्करका राज्याभिषेक इन्द्रने उसी नक्षत्रमें किया सो प्रसङ्गसे उसीका भी नक्षत्र गिनाकर राज्याभिषेकके कार्य्यको वस्तु कहा और,(श्रीऋषभदेवजीके) च्यवनादि पाँचों कल्याणकोंका भी खुलासे कथन किया तथापि न्यायांभो निधिजीने वस्तुके बहाने च्यवनादिकोंको कल्याणकपनेसे रहित ठहरानेका परिश्रम किया सो अंतरमें मिथ्यात्वके या

पूर्ण अज्ञानताके सिवाय और क्या होगा इसकोभी विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेंगे।

और ऊपरके पाठमें चयवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणक कहे इससे भी वस्तु शब्द कल्याणक अर्थ वाला प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है परन्तु वस्तु शब्द अनेकार्थ वाला होनेसे वस्तु शब्दका अर्थ शास्त्रकारोंके अभिप्राय मुजब संबंध पूर्वक करना चाहिये तथापि वस्तु शब्दसे कल्याणक अर्थका निषेध करनेके लिये जो एकांत हठवाद करते हैं जिन्होंको तत्वज्ञान बिनाके अज्ञानी समझने चाहिये।

और श्रीऋषभदेवजीका राज्याभिषेकको इन्द्र कृत्य की तरह श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारकोभी इन्द्रकृत जानकर कल्याणक माननेसंबंधी श्रीहीरविजय सूरिजीने लिखा सो तो श्रीवीरप्रभुके गर्भापहारको छठे कल्याणकपनेमें मान्य करने संबंधी शास्त्रकार महाराजोंके तात्पर्यको इन महाराजके समझमें नहीं आया मालूम होता है क्योंकि जो कल्याणकत्वपनेके गुण बिनाही इन्द्रकृत्य समझकर कल्याणक माना जाता होवे तो वंशस्थापना विवाहकरना वगैरह इन्द्रकृत अनेक कार्योंको कल्याणक कहते कहते १०-१५ कल्याणक बनाने पड़ेंगे परंतु ऐसा कदापि नहीं हो सकता इसलिये राज्याभिषेकमें चयवन जन्मादिक कल्याणकत्वपनेके गुण लक्षण न होनेसे राज्याभिषेकको तो कल्याणक नहीं कह सकते परंतु श्रीमहावीर स्वामीके गर्भापहारमें तो प्रत्यक्षपने प्रथम चयवन कल्याणककी तरह दूसरे चयवन कल्याणकपनेके सब गुण लक्षण विद्यमान हैं इसलिये श्रीवीर प्रभुके दो चयवन कल्याणकोंसे छ कल्याणक होते हैं उसीसे गुण निष्पन्न होनेसे शासन नायकके छ कल्याणक कहते हैं नत निष्केवल इन्द्रकृत्य समझकरके अतएव इन्द्रकृत्य सम-

भकर छठे कल्याणकको मानने संबंधी इन महाराजका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या है सो इसको विशेषतासे तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे ।

और राज्याभिषेकको कल्याणकत्वपनेका निषेध करनेके साथ गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको भी कल्याणकत्वपनेसे निषेध किया सोतो पूर्वपक्षका उत्तर देनेमें निजमेही श्रीजिनाज्ञाका लोप करने लगे जिसका कारण तो उत्सूत्र प्ररूपक धर्मसागरजीकी धर्मधूर्ताईकी वक्रताके सङ्गतका गुण प्राप्त हुआ मालूम होता है क्योंकि देखो श्रीतीर्थंकरगणधरादि महाराजोंके कथन मुजब पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रानुसार गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणक सहित छ' कल्याणकोंकी प्रत्यक्षपने स्वयंसिद्धि होते भी तथा श्रीतपगच्छके भी पूर्वाचार्यों ने खुलासापूर्वक छ कल्याणकोंका कथन किया हुआ होतेभी धर्मसागरजीने अपने अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे छठे कल्याणकके तात्पर्यार्थको समझे बिना ही उत्सूत्रभाषणोंपूर्वक कुयुक्तियोंके भ्रमचक्रमें बाल जीवोंको गेरनेके लिये राज्याभिषेकके कथनका मतलब समझे बिना निष्प्रयोजन राज्याभिषेकके पाठका सहारा लेकरके श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेका उद्यम किया उसी धर्मसागरजीकी तथा इसीके बनाये उत्सूत्र भाषणोंके ग्रन्थवाले तथा कुयुक्तियोंका निधि और पूर्वाचार्योंकी झूठी निन्दावाले अनुचित शब्दों करके युक्त निजपरके संसार भ्रमणका और दुर्लभ बोधिपनेका कारणरूप कदाग्रही ग्रन्थोंकी सङ्गतसे श्रीहीरविजयसूरिजीसे भी निज आत्माका और पञ्चागीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंका विवेक बुद्धिसे विचार किये बिना ही श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके कथनके विरुद्ध होकरके

पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणोंको और पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों के वचनोंका उत्थापनरूप उत्सूत्रके फँद याने ओझाको धारण करके श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याणकके निषेध करनेके लिये वृथा ही गच्छके पक्षपातसे बिना विचारे लिखा। हा! अति खेद! ऐसे सुप्रसिद्ध प्रभावक कहलानेवाले होकरके भी उत्सूत्रसे अलग न रहे—खैर! अब आत्मकल्याणाभिलाषी निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंसे मेरा यहां इतना ही कहना है कि—राज्याभिषेककी तरह गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करना सर्वथा वृथा है सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे,—

शङ्का—अजी जिसके पूर्वज श्रीहीरविजयसूरिजीने तो श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध किया और उनके सन्तानीय अपने पूर्वजके विरुद्ध होकरके छठे कल्याणकको सिद्ध किया सो कैसे माना जावे।

समाधान—भो देवानु प्रिय? तेरेको श्रीजैन शास्त्रोंके तात्पर्यार्थकी गुरुगम्यसे या अनुभवसे मालूम न हुई इसलिये ऐसी शङ्का उत्पन्न हुई परन्तु अब हम तेरे और अन्य भव्य जीवोंके उपकारार्थ शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष प्रमाण सहित तेरी शङ्काका समाधान करते हैं सो देखो श्रीजिनेश्वर-भगवान्‌की आज्ञाके आराधक जो आत्मार्थी भवभीरु पुरुष होते हैं सो तो भगवान्‌की आज्ञा विरुद्ध अपने गुरु और गच्छकदाग्रहकी कल्पित बातका पक्षपात न रखते हुए उसका त्याग करके भव्य जीवोंके उपकारके लिये शास्त्रानुसारकी सत्य बातको प्रकाशित करते हैं जैसे कि—जमालीकी कल्पित बातको उनके आत्मार्थी शिष्योंने त्याग करी और श्रीवीर प्रभुके कथनानुसार सत्य बातको ग्रहण करके भव्य जीवोंमें

प्रकाश करी सो बात तो शास्त्रमें प्रसिद्ध ही है परन्तु यहां फिर भी अबी थोड़े समयका श्रीतप गच्छके पूर्वाचार्य तथा श्रीहीरविजयसूरिजी और इन महाराजके सन्तानीयों सम्बन्धी श्रीतपगच्छका ही प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूं सो देखो कि श्रीतीर्थंङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अनेक शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणों मुजब श्रीतपगच्छ नायक सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तथा श्रीकुलमण्डन-सूरिजी और रत्नशेखरसूरिजी वगैरह महाराजोंने अपने बनाये शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये पीछे इरियावही का प्रतिक्रमण करना कहा है तिसपर भी उत्सूत्रप्ररूपक धर्मसागरजीने तत्त्वतरङ्गिणि, प्रवचनपरीक्षा, इरियावहीषट्त्रिंशिकादि, अपने कदाग्रही ग्रन्थोंमें उन महाराजोंके कथनका उलटा अर्थ करके अनेक शास्त्रोंके (प्रथम करेमिभते सम्बन्धी) प्रमाणोंका उत्थापन पूर्वक शास्त्र प्रमाणशून्य कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे श्रीमहानिशीथ, दशवैकालिकादि, शास्त्रोंके पाठोंको मायाचारीसे अधूरे अधूरे लिखके फिर उसका भी अपनी कल्पना मुजब झूठा अर्थ करके सामायिकमें प्रथम इरियावही बडे जोरशोरसे लिखी और अनेक शास्त्रोंके प्रमाणपूर्वक प्रथम करेमिभते लिखने वालोंपर तथा उसबातको मान्य करने वालोंपर अनेक तरहके आक्षेप वाले अति कटुक वचन लिखे उसीमुजब ही श्रीहीरविजयसूरिजी तथा श्रीविजयसेनसूरिजी वगैरहोंने तो उत्सूत्रसे जिनाज्ञा भङ्गका भय न करके प्रथम करेमिभतेका निषेध पूर्वक प्रथम इरियावही स्थापित करते रहे परन्तु इन्होंके सन्तानीय उपाध्यायजी श्रीमानविजयजीने तथा सुप्रसिद्धविद्वान् न्याय-विशारद श्रीमद्यशोविजयजीने तो अपने गुरु तथा गच्छके

कदाग्रहके पक्षपातकी कल्पित बातको प्रमाण न करके अनेक शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही श्रीधर्मसंग्रह की वृत्तिमें खुलासा पूर्वक लिखी है सो आज्ञा आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको तो शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंतकी सत्य बात प्रमाण होती है नतु शास्त्रप्रमाणशून्य गुरु गच्छ कदाग्रहकी कल्पनारूपी प्रथम इरियावही; तैसेही आत्मार्थी पुरुषोंको तो श्रीहीरविजयसूरिजीने उत्सूत्रसे श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध किया जिसको न मान्यकर श्रीशान्तिचन्द्रगणिजीने शास्त्रानुसार छठे कल्याणकको लिखा उसको मान्यकरना चाहिये इसमें ही भगवान्की आज्ञाका आराधन करना है नतु मिथ्या हठवादमें इस बातको तो विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे।

और अब सत्यग्रहणाभिलाषी आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा इतना ही कहना है कि श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये राज्याभिषेकके पाठको आगे करनेवालोंकी कल्पना मुजब तो वीरप्रभुके छठे कल्याणककी (जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक मास पक्ष तिथिका खुलासा और दूसरे च्यवन कल्याणक सूचक चौदहस्वप्न त्रिशला माताने आकाशसे उतरते अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखने वगैरहके कथनकी) तरह श्रीऋषभदेव प्रभुके राज्याभिषेकके पाठकी भी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक मास पक्ष तिथिका खुलासा और जन्म दीक्षादि कल्याणकोंके सूचक चिन्होंका कथन करनेका सूत्रकार गणधर भगवान् भूल गये होंगे अथवा राज्याभिषेककी तरह गर्भापहार सम्बन्धी चौदह स्वप्नादिकके भी मासपक्ष तिथी वगैरह दूसरे च्यवन कल्याणकके सूचक चिन्होंको न लिखते तबतो श्रीवीर प्रभुके छठे कल्याणकके

निषेध करने वालोंकी बात बन जाती परन्तु राज्याभिषेकके मास पक्षादि सम्बन्धी कुछ भी खुलासा न करते हुए गर्भापहार सम्बन्धी तो प्रथम च्यवनवत् सबी बातोंमें दूसरे च्यवनकी व्याख्या सूत्रकारोंने अनेक जगहोंपर करके दिखाई हैं तिसपर भी अन्तर मिथ्यात्वसे वृथाही कल्पित कुयुक्तियों करके भव्य जीवोंको संसार भ्रमणका रास्ता दिखानेवाले उत्सूत्रभाषी वाक्य मार्गोंसे दूर रहकरके सत्य बातका ग्रहण पूर्वक अपनी आत्म-कल्याणके कार्यमें उद्यम करना चाहिये।

देखिये राज्याभिषेक और गर्भापहार सबधी शास्त्रकारोंने अलग, अलग, सम्बन्ध पूर्वक अच्छी तरहसे खुलासा कर दिया है तथापि शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें हो करके कुयुक्तियोंसे खडनमडनका वृथा झगड़ा करके आपसमें विरोध भाव करनेमें ही अपनी विद्वत्ताकी बहादुरी समझते हुए निज परके आत्म कल्याणमें विघ्नरूप उत्सूत्री बनते कुछ शर्म भी नहीं आती—हा हा अतीव खेद.। मुण्ड मुडाकर कुयुक्तियोंसे अपनी बात जमानेमें ही धर्म माननेवालोंको बहुत लाचारी पूर्वक विनती करता हूं कि ससार भ्रमणके हेतुभूत ऐसे निष्प्रयोजनीय कदाग्रहको छोड़कर अपनी आत्मसाधनके लिये मिथ्याभिमानको त्याग करके सत्य बातको ग्रहण करो और दुसरोंको कराओ इसमें ही अपना मनुष्य जन्म जैन-धर्मकी प्राप्ति और साधुपना तथा उपदेशफ्रादेना सफलहोवे गेंगे तो धर्म्मबन्धुओंकी प्रीतिसे शास्त्रानुसार सत्यबात दिखायदी अब आगे मान्यकरना या नहीं करना आपकी इच्छाकी बात है। परन्तु कदाग्रह न छुटेगा तो उसके विपाक तो भवांतरमें तयार ही समझना।

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीनें अपने विशेषणको लज्जनीयरूप करके श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन छठा कल्याणककी प्ररूपणा करनेका वृथाही कल्पित दूषण लगानेके लिये श्रीगणधरसार्द्धशतककी बड़ीटीकाके पाठका शब्दार्थको और भावार्थको समझे विना या मायाचारीसे विद्वानोंके आगे हास्यपात्र होनेरूप और बालजीवोंको अपनी अंधपरंपराकी मायाजालके भ्रमका मिथ्यात्वमें फंसानेके लिये जैनसिद्धांतसमाचारी नामक पुस्तक (परं वास्तवमें उत्सूत्रभाषणोंकी और कुयुक्तियोंकी अंधखाड़ रूपी पुस्तक)के पृष्ठ ७२ की पंक्ति ८ वीसे पृष्ठ ७३के अंततक जो लेख अपनी बात जमानेके लिये लिखा है उसको यहां दिखाकर पीछे इसकी समीक्षा आगे करता हूं, सो लेख नीचे मुजब है ।

[आपके वडोंने षट् कल्याणककी परूपणा किनी सोही आद्यमें गणधर सार्द्ध शतकका पाठ हमने लिख दिखाया है, फिर भी आपकों दृढ़ करणेके वास्ते गणधरसार्द्धशतककी वृहत् वृत्तिका पाठ लिखदिखाते हैं । यथा-मूलं ;—

'असहायेणाऽविविहि । पसाहिओ जो न सेस सूरीहिं । लोअण पहेवि वच्चइ । पुणण जिण मय गणूणं ॥ १२२ ॥ व्याख्या । ततोयेन भगवता असहायेनापि एकाकिनापि परकीय सहाय निरपेक्ष अपिविस्मये अतीवाश्चर्य मेतत् विधिरागमोक्तः षष्ठकल्याणक रूपश्चेत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितश्च प्रकारः प्रकर्षेणोद्गसित्यमेव भवति योऽत्रार्थे ऽसहिष्णुः सवावदीतिवति स्कंधास्फालन पूर्वकं साधितः सकल प्रत्यक्ष प्रकाशितः ॥ यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानां मित्यर्थः । लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजतियाति । उच्यते पुनर्जिन मतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति'।

भावार्थ—तिसपिछैं, जिस जिनवल्लभसूरिजीने, सहायविना, एकाकी, दूसरेकी सहायमें निरपेक्ष अत्यंत आश्चर्य यह विधि आगमोक्त, छठा कल्याणक रूप, ऐसें औरभी विषय पहिले जो दिखाये सो अतिशय करके यह छठा कल्याणक हो है, जो इस बातमें सहन न कर सकता होवे सो अतिशय करके कथन करो? ऐसे कथनके साथ अपने स्कंधोको आस्फालन पूर्वक छठा कल्याणक कथन किया है अर्थात् अपनी भुजासें सभा ठोकके छठे कल्याणककी परूपणाकरी सर्वलोकोके प्रत्यक्ष कथन किया, और जो यह छठा कल्याणक नही जाने है सिद्धांतके रहस्य ऐसें जितने होगये आचार्य उनोंके कर्ण प्रथमें तो दूर रहो परंतु लोचन मार्गमें भी नही आया है, ऐसा छठा कल्याणक कहा है भगवत्के वचन जाननेवाले श्री जिन वल्लभ सूरिजीने, अब इस गणधर सार्द्ध शतकके पाठसे आपही विचारीये ? कि जब आपके बड़े श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पूर्वाचार्योंकों सिद्धांतके रहस्य न जानने वाले ठहराके और विद्यमान आचार्योंसें निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धांतका झूठा नाम लेके लोकोको भरममें गेरते हो? और पृष्ट ८८ पंक्ति ७ में तपगछीय एक श्रीकुलमंडन सूरिजीका जो उदाहरण दिया है सोतो तुमारे बड़ोंकाही अनुकरण किया है, ॥ पूर्वपक्ष ॥ श्रीकुलमंडन सूरिजीने अनुकरणही कियाहै यह कैसें हम जान लेवे? उत्तर हेमित्र! इतना तो विचार करणा चाहिये कि-जब पहिले श्री जिनवल्लभसूरिजीने सभी आचार्योंसें निरपेक्ष होके नवीनही छठा कल्याणक दिखाया तो फिर काहेकों तर्क करते हो? और हे मित्र! जब इस छठे

कल्याणककी जडता सिद्ध कर दिखाइ तो फिर आपका जितना प्रयास है सो तो स्वतः ही व्यर्थ है,]

उपरके लेखकी समीक्षा करके सत्यग्रहणाभिलाषी मध्यस्थ आत्मार्थी तत्वज्ञ सज्जन पुरुषोंको दिखाता हूं सो पाठक गणको निष्पक्षपाती होकर इन लोगोंकी विद्वत्ताकी चातुराईका नमूना पूर्वक मैंरी लिखी समीक्षाको अच्छी तरहसे विचार करके अंधपरंपराके मिथ्याभ्रमकी कल्पित बातको त्यागके शास्त्रानुसार सत्य बातको ग्रहण करनी चाहिये सो न्यायांभोनिधिजीको उपरोक्त टीकाके पाठका अभिप्राय तो क्या परन्तु शब्दार्थ भी समझमें नहीं आया मालूम होता है उसीसे टीकाकारके विरुद्धार्थमें होकर श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजको झूठादूषण लगाके उपरकी टीकाके पाठपर अपनी कल्पनामुजब प्रत्यक्ष मिथ्या लिख करके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका कारण करके वृथाही संसार वृद्धिका कारण किया है जिसमें प्रथम तो (आपके वडोंने षट् कल्याणककी परूपणा किनी सोही आद्यमें गणधरसार्द्ध शतकका पाठ हमने लिख दिखाया है फिर भी आपको दृढ करनेके वास्ते गणधरसार्द्धशतककी वृहत् वृत्तिका पाठ दिखाते है) यह लेख ही बाल लीलाकी तरह अज्ञानताका सूचन करानेवाला मिथ्याहै क्योंकि हमारे वडे श्रीजिनवल्लभसूरिजीने श्रीसिद्धसेनदीवाकरजी तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजकी तरह श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की कथन करी हुई शास्त्र प्रमाण पूर्वककी लुप्त हुई षट्कल्याणककी सत्य बातको प्रगट करी है जिसको आप लोग विवेक शून्यतासे समझे बिना नवीन प्ररूपणाकरनेका दोष लगाते हो सो सब वृथा है इसका पूर्वमें इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५६०

से ५९३ तक खुलासापूर्वक निर्णय छप गया है उसको बांचनेसे आपका सब भ्रम मिट जावेगा।

और फिर भी हमको दृढ करनेके वास्ते गणधर सार्द्ध-शतककी बृहद्वृत्तिका पाठ आपने लिख दिखाया है सो हमतो हमारे पूर्वजोंके कथन करे हुए उक्त ग्रंथके पाठोंके तात्पर्यार्थको समझकर शास्त्र प्रमाणानुसार प्रत्यक्षपने आगमोंमें कथन करी हुई छ कल्याणकोंकी सत्य बात पर सदा दृढ है उससे उपरोक्त पाठोंमें तथा छ कल्याणकोंके माननेमें किसी तरहका सन्देह नहीं है परन्तु आप लोगोंने उपरोक्त पाठोंका तात्पर्यार्थको समझे बिना अन्धपरम्पराके मिथ्या कदाग्रहका हठवादरूपी तिमिरकी भमलाइमें पड़कर भद्रजीवोंको भी अपनी मायाजालमें फसानेके लिये उपरोक्त टीकाके पाठोंको शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें होकर कल्पित अर्थ लिखकर उत्सूत्र प्ररूपणाका पथचलाते हुए प्रत्यक्ष विपरीततासें दृष्टिरागी बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेसे वृथा ही निज परके आत्म-कल्याणमें विघ्नका कारण किया है।

और उपरोक्त पाठके पूर्वापरके सम्बन्धवाले सब पाठोंको छोड़कर बिना सम्बन्धकी १ गाथा लिखकर अधूरे प्रसंगसे उलटे अर्थको करके अपनी विद्वत्ताकी चातुराई बाल जीवोंमें चलानीथी सो चला दी किन्तु जब उपरोक्त पाठके पूर्वापरकी गाथाओं सहित सम्बन्धपूर्वक शास्त्रकारोंके अभिप्रायको देखा जावे तब तो न्यायांभो-निधिजीके विवेक शून्यताको अज्ञानताके सब परदे खुल जावे क्योंकि वहां तो उस देशमें चीतोड़में तथा चीतोड़के आसपासमें सब जगहोंपर प्राय करके पञ्चमहाव्रतोंका उच्चारण करनेवाले सूरिपदधर भो चैत्यवासी होकर बैठे थे

सो वे लोग निज स्वार्थ सिद्धिके लिये अज्ञानतासे उत्सूत्रप्ररूपणा करते हुए चैत्यमें रहना तथा रात्रिको स्नात्र महोत्सव, प्रतिष्ठादि करना और रात्रिको साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओंको मन्दिरमें आना वगैरह अनेक बातें शास्त्रमर्यादा विरुद्ध अपनी कल्पित कुयुक्तियोंके सहारोंसे प्रवर्तमान करते थे और ४२ दोष वर्जित मुनिको गौचरी करना तथा सर्वथा परिग्रह रहित रहना और अधिक मास तथा श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकादिको मानना वगैरह शास्त्रोंमें कथन करी हुई सत्यबातोंको उत्थापन करके श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध प्ररूपणासे भद्रजीवोंके दिलमें अनेक तरहके संदेह उत्पन्न होवे वैसी कुयुक्तियों करके उन्होंको अपने भ्रमचक्रमें फंसाते हुए मिथ्यात्वकी वृद्धिकरते थे, तब वहां विशेष लाभका कारण जानकर उसदेशमें श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने विहार किया सो वहां परिश्रमके साथ श्रीकालिकाचार्यजीकी तरह मरणांत उपसर्गका भी भय न करके उन चैत्यवासियोंके अनेक तरहके उपद्रवोंको भी सहन करते हुए अपनी हीमत बहादुरीसे चैत्यवासियोंके मन कल्पनाकी अविधिमार्गकी बातोंके कदाग्रहरूपी मिथ्यात्वका नाश करके शास्त्रानुसार विधिमार्गकी सत्य बातोंको प्रगट करनेमें भव्य जीवोंका उपकाररूपी अन्तर करुणाकी प्रबलतासे किसीकी साह्यता बिना परन्तु श्रीदेव गुरुके (श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के तथा पूर्वाचार्योंके) कथन किये हुए शास्त्रोंके प्रमाणोंके आधारसे चैत्यमें रहना वगैरह शास्त्रविरुद्ध उपरोक्त बातोंका निषेध करने पूर्वक चैत्यकी विधिकी और श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकादि शास्त्रानुसार श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्य बातोंको भव्यजीवोंको हेय, ज्ञेय, उपादेयका, परिज्ञान होनेके लिये प्रकाशित करी

और वहां चीतोड़ नगरमें जब श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चौमासा किया उस समय भी चैत्यवासियोंकी रात्रिस्नात्रादि अविधिकी बातोंका निवारण करके चैत्यमें यत्नापूर्वक दिनमें स्नात्र करने तथा चैत्यकी ८४ आशातना निवारण करनी और विधिसे प्रवेश करना तथा छठे कल्याणकका मानना इत्यादि शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंको विशेषतासे प्रकाशित करी और चैत्यवासियोंकी कल्पित अविधिकी बातोंकी सब पोल खोलने लगे तब तो वे चैत्यवासीलोग इन महाराजपर बहुत वैरागी हुए और विरुद्धताका कथन करने लगे याने इस पञ्चमकालमें चैत्यमें रहना उचित है तथा चैत्यादिककी सभालके लिये द्रव्य भी रखना चाहिये और आश्चर्यरूपछोंमेंसे छठे कल्याणकको नही मानना इत्यादि बातोंको शास्त्रप्रमाण बिना ही कुयुक्तियों करके कथन करने लगे तब भी इन महाराजने तो निजमेंही अपनी विद्वत्ताकी हिम्मतसे चैत्यवासीयोंकी कल्पित बातोंका निषेध करके शास्त्रोके दृढ़ प्रमाणों पूर्वक चैत्य वास निषेध, पट् कल्याणक स्थापन वगैरह बातोको सब लोगोंके सामने विस्तारसे प्रकाशित करी और बोलने लगे कि देखो यह आश्चर्यकी बात है कि श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के मन्दिरकी चौराशी आशातना निवारण करके उपयोग सहित यत्नासे चैत्य वन्दनादि कार्य विशेषतासे मर्यादा युक्त चैत्यमें जानेकी और कार्य उपरांत वहा ठहरनेकी मनाई वगैरह बातोंकी भाष्य चूर्ण्यादि शास्त्रोंमें प्रगटपने विधि कथन करी हुई है तिसपर भी ये चैत्यवासीलोग उसका विचार छोड़कर सर्वथा प्रकारसे चैत्यमें निवास करने वगैरह प्रत्यक्ष अविधि करके अनुचित कार्य करते है तथा श्रीकल्प सूत्रादि मूल शास्त्रोंमें

प्रगट अक्षरों करके श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका कथन किया हुआ होनेपर भी ये चैत्यवासी लोग उसको नहीं मानते है इससे विशेष आश्चर्य दूसरा कौनसा होगा सो विधिमार्गमें चौराशी आशातनाका वर्जन किया जिसकोतो (चैत्यमें रहकर) करना और जो आगमोंमें छ कल्याणक कथन किये उसको न मानना सो प्रत्यक्ष उत्सूत्रप्ररूपणा है इत्यादि कहा और शास्त्र विरुद्ध होकर अपने कल्पित-मंतव्यको कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे (बालजीवोंको विभ्रमवाले करके) स्थापन करते थे उन्होंको इन महाराजने शास्त्र प्रमाणोंका दर्शाव पूर्वक चैत्यवासियोंके कल्पित मन्तव्यको झूठा ठहराकर शास्त्रानुसार उपरोक्त बातोंको सिद्ध करके दिखाई और विशेषतासे भव्य जीवोंकी शास्त्र प्रमाणानुसार सत्य बातोंपर दृढ़ता होनेके लिये तथा हठवादी कदाग्रही चैत्यवासियोंकी उत्सूत्र प्ररूपणाको हटानेके लिये फिर भी बड़े जोरके साथ कथन किया कि चैत्यवास निषेध परन्तु उसकी विधिसे भक्ति करने संबंधी तथा षट् कल्याणक संबंधी जो यह सत्य बात मैं कहता हूं इसी तरहसे है इससें अन्यथा नहीं है सो यह उपरोक्त बात किसीको पसन्द नहीं आवे अपने दिलमें नहीं रुचती होवे तो जिसकी ताकत होवेसो मेरे सामने आकर विशेषतासे अतिशयकरके अपना मंतव्यको कथकन करो, नहीं तो उनका बकवाद (कथन) वृथा मिथ्या माना जावेगा इस तरहसे शास्त्र प्रमाणोंका दर्शाव पूर्वक अपनी विद्वत्ताकी बहादुरीसे भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बातमें विशेष दृढ़ता होनेके लिये और शिथिलाचारी द्रव्यलिंगी साधुनाम धराने वाले उत्सूत्रभाषी चैत्यवासियोंके कल्पित कदाग्रहके पाखण्डका मिथ्यात्वको हटानेके लिये बहादूरीसे अपने

स्कधोंका आस्फालन पूर्वक उपरोक्त वातोंको सबके सामने शास्त्रोंके प्रमाणोसे सिद्ध करके कथन किया परन्तु जैसे-सिहकी गर्जारवके सामने सियालियोके टोलेमेंसे कोईभी सामने नही जा सकते, तैसेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके कथनके सामने जाकर उन चैत्यवासियोंमेंसे कोईभी अपना मन्तव्य कथन करनेको समर्थ नहीं होसका। तब फिरभी इन महाराजने कहा कि "यो न शेष सूरीणामित्यादि" याने शुद्ध प्ररूपक सयमी साधु आदिकोसे शेष (बाकी)के वर्तमानमें जो ये कितनेक चैत्यवासी लोग विद्वान् आचार्य कहलाते हैं परन्तु शास्त्रोके तात्पर्यार्थके रहस्यको नही जान सकते हैं उन अज्ञानी चैत्यवासियोके क्या उपरोक्त वातो सम्बन्धि शास्त्रोके प्रमाणोके प्रत्यक्ष अक्षरोको भी देखनेमें नही आये और सुननेमें भी नहीं आये होगें सो अनत भव भ्रमण करानेवाली अविधि करते हुए भगवान्की आशातनाके हेतु भूत रात्रि स्नात्र, प्रतिष्ठा, नदीमहोत्सव, बलीदेना, और श्रावक श्राविकादिकोका रात्रिको मन्दिरमें आना वगैरह कार्य कराकर चैत्यमें रहतेहुए उत्सूत्रप्ररूपणासे अपने सम्यक्त्वका तथा सयमका नाश करते हैं। और श्रीआचाराङ्गजी सूत्र तथा श्रीकल्पसूत्र और श्रीस्थानांगजी सूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें ६ कल्याणक कहे हैं उन्होको न मानकर उन शास्त्रपाठोंके उत्थापक बनते हैं, इसप्रकारसे वेषधारियोंके कल्पित मार्गको हटानेके लिये इन महाराजने बडी बहादुरी प्रगटकरी और शास्त्रानुसार शुद्ध उपदेशसे बहुत भव्यजीवोका उद्धार किया, याने—वेषधारियोंकी कल्पित भ्रमकी अधपरपरासे भद्रजीवोको छुडाये और श्रीजिनाज्ञामें प्रवर्तमान किये इस तरहसे इन महाराजने द्रव्यलिगी चैत्यवासियोके उपद्रवोंका भय न किया और सब भ्रष्टा-

चार्यियोंके सासने शास्त्रानुसार उपरोक्त सत्य बातोंका प्रकाश करने रूपवड़ा आश्चर्यकारी कार्य करके वहुत उपकार किया, इसलिये ग्रन्थकारने (श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजने श्रीगणधरसार्द्धशतक नामा ग्रन्थमें) श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजकी ६२ गाथाओंमें अनेक तरहकी स्तुति करते श्रीवीरप्रभुके मोक्ष जानेसे लेकर जैनशासनकी व्यवस्था दिखाते हुए इह लोकस्वार्थी चैत्यवासियोंके और आत्मार्थियोंके भेद भावका दर्शाव पूर्वक उन चैत्यवासियोंके संबंधमें 'असहायण" इत्यादि उपरोक्त १२२ वीं गाथा कथन करी है।

अब इस जगह पर श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी निष्पक्षपाती पाठकगणसे मेरा इतनाही कहना है कि द्रव्यलिंगी उत्सूत्र प्ररूपणा करनेवाले चैत्यवासियोंकों उपरोक्त ग्रन्थ कारने वन्दन पूजन आलाप संलाप करना तो क्या परन्तु उन्होंका अल्पकाल थोड़ी देर दर्शन मात्र भी मिथ्यात्वकी प्राप्ति करने वाला कहा और "जे जिण वयणु त्तिन्नु वयणं भासंति जेउ मन्नंति ॥ सम्मदिट्ठीणं तं दंसणंपि संसार वुड्ढी करंति" ॥ १२० ॥ यह श्रीविशेषावश्यककी उपरोक्त प्रसंगमें एक गाथा दिखाकर जो श्रीजिनेस्वर भगवान्‌के वचनके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करता होवे उसका और उसको मान्य करने वालोंका दर्शनमात्रभी आत्मार्थी सम्यक्त्वी जीवोंको त्यागना चाहिये नही तो संसार वढ़ानेवाला होता है— और उन्होंकी निज स्वार्थी कल्पित कुयुक्तियोंकी सहारेवाली (आज्ञाविरुद्ध) अविधिकी बातोंका निषेध करके मिथ्यात्व हटानेके लिये तथा भव्यजीवोंके उद्धारके वास्ते विधिमार्गकी आज्ञानुसार शास्त्रोंके प्रमाण पूर्वक सत्य बातोंको प्रगट करने सम्बन्धी इन महाराजने

बहुत कष्ट सहन करके अपनी हिम्मत बहादुरी और शास्त्रोक्त बातोकी सत्यता दिखानेके लिये उपरोक्त बातो संबधी अपने स्कंधोका आस्फालन (खम्भा ठोक)कर कथन किया जिसपर विवेक शून्यताकी अन्धपरम्परासे वर्तमानकालमे अन्तरमिथ्यात्वसे बड़ाभारीविभ्रम पड गया है, किश्रीजिनवल्लभसूरिजीने खम्भा ठोंक कर जबराईसे उत्सूत्ररूप छठे कल्याणकको प्रगट किया परन्तु इतना नहीं विचारते है, कि शास्त्रानुसार सत्य बातको प्रकाशित करके मिथ्या हठवादी कदाग्रहियोंको हटानेके लिये अपनी विद्वत्ताकी बहादुरी दिखाई है नतु शास्त्रविरुद्ध उत्सूत्र-प्ररूपणाका वृथा हठवादकी जबराई, क्योंकि देखो आजकाल वर्तमानमें भी यह बातें तो प्रगटपने देखनेमें आती है; कि कितनेही आदमी किसी तरहकी अपनी सत्य बातको शास्त्रप्रमाणो सहित दिखाते हुए वादानुवाद करके युक्तिपूर्वक सिद्ध करनेके लिये और दूसरे प्रतिवादीकी मिथ्या बातको निषेध करनेके वास्ते—कोई तो छाती ठोककर अपना कथन करते हैं॥ कोई डङ्केकी चोट पूर्वक अपना कथन करते हैं॥ कोई उद्घोषणा करवाते हुए कथन करते हैं॥ कोई भृकूटी चढाकर बड़ी तेजीसे कथन करते हैं॥ कोई बड़ी बडी आवाज करके लम्बे लम्बेसे पुकारते हुए कथन करते हैं॥ कोई झालर, घण्टा बजाते हुए कथन करते हैं॥ तथा कितने ही भाषण करनेवाले कूद कूदकर उछल उछल करके कथन करते हैं॥ और कोई कोई तो चौकी टेबल ठोकते हुए कथन करते हैं॥ और कोई पुस्तकपर हाथ पिछाड़ते हुए कथन करते हैं॥ इत्यादि अनेक प्रकारसे कथन करते हैं सो तो अपनी सत्यता तथा विद्वत्ताकी हिम्मत बहादुरी और अपनी अपनी स्वभाविक प्रकृति शरीरकी चेष्टाका कारण है परन्तु उसको हठवाद

मिथ्या आग्रहकी जवराई नहीं कहसकते हैं इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीनेभी शास्त्रप्रमाणों सहित अपने कथनकी सत्यताके कारणसे तथा अपनी विद्वत्ताकी हिम्मत बहादुरी और निज प्रकृति शरीर स्वभावकी चेष्टासे चैत्यवासियोंकी उत्सूत्र प्ररूपणाका कल्पित मार्गको हटा करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातको प्रगट करनेके लिये खम्भा ठोकके कथन किया सो तो चैत्यवास रात्रिस्नात्रादि अविधिकी बातोंका निवारण करनेके लिये और प्रभातसे दिनमें विधिपूर्वक यत्नासे स्नात्र महोत्सवादि करना और चैत्य वंदनादिके लिये जाना वगैरह शास्त्रानुसार विधिमार्गकी बातोंको प्रकाशित करनेके लिये खूब ही अच्छी तरहसे सबके सामने कथन किया परन्तु झूठे आदमी सत्यवादीके सामने नहीं आ सकते हैं उसी तरह कोई भी उन चैत्यवासियोंमेंसे महाराजके सामने आकर चैत्यमें रहने वगैरह अपनी बातोंको स्थापन करनेके लिये कथन नहीं करसका उसीसे बहुत भव्यजीवोंको चैत्यवासियोंके मायाफन्दसे छुटनेका कारण होकर श्रीजिनाज्ञामें प्रवर्तमान होनेसे बड़ा लाभका कार्य (इन महाराजका कथन) होगया जिसमें अनन्त लाभके कारणका उपकार सम्बन्धी विचारको तो भूलगये और चैत्यवासियोंकी अविधिमें पड़कर भगवान्‌की आज्ञा भङ्ग तथा मन्दिरजीमें विराजमान श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की प्रतिमाजीकी आशातना करके और शिथिलाचारी उत्सूत्रप्ररूपक चैत्यवासियोंको शुद्ध उपदेश देनेवाले संयमी गुरु मानने वगैरह कारणोंसे संसारवृद्धि सम्यक्त्वका नाश दुर्लभ बोधिकी प्राप्ति भद्रजीवोंको होवे वैसे वर्तावके मिथ्यात्वको इन महाराजने हटाया और श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रप्रमाण मुजब विधिमार्गकी सत्य बातोंको प्रकाशित करी जिसके पूर्वापरके सब पाठको

लिखना तो दूर रहा परन्तु विशेष मायाचारी करके चैत्यवासियों सम्बधी विषयको छुपा करके "खम्भा ठोकके छठे कल्याणककी प्ररूपणा करी" इसतरहसे लिखकर अपने हठवादसे नवीन छठे कल्याणककी उत्सूत्रप्ररूपणा करनेका बालजीवोंको दिखाया सो निष्केवल अन्तरके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे निजपरके आत्मकल्याणमें विघ्नरूप सम्यक्त्वको नष्ट करनेवाला वृथा ही गाढ मिथ्यात्वका भ्रम भद्रजीवोंके दिलमें गेरकर ससार भ्रमणका कारण किया है क्योंकि— "प्रकर्षेणोद् मित्थमेव भवति योऽत्रार्थेऽसहिष्णु सवावदीत्विति-स्कधास्फालन पूर्वक साधित सकल प्रत्यक्ष प्रकाशित ।" इन अक्षरोंका "अतिशय करके यह छठा कल्याणक ही है जो इस बातने सहन न कर सकता होवे सो अतिशय करके कथन करो ऐसे कथनके साथ अपने स्कन्धोंको आस्फालन-पूर्वक छठा कल्याणक कथन किया है अर्थात् अपनी भुजासे खम्भा ठोंकके छठे कल्याणककी प्ररूपणा करी सर्व लोकोंके समक्ष कथन किया ।" यह भावार्थ न्यायाम्भोनिधिजीने लिखके नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेका ठहराया सो तो अपनी विद्वत्ताकी चातुराईकी मायावृत्तिसे वृथा ही लजाया है क्योंकि उपरोक्त अक्षरोंका यह भावार्थ नहीं बन सकता किन्तु चैत्यवास निषेधादि विषय हमने ऊपरमें लिखे हैं वैसा होता है इसलिये केवल छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेके लिये खम्भे ठोंकके कथन नहीं किया किन्तु चैत्यवास निवारणादि पूर्वमें विषय दिखाये हैं उन्ही सबोंका कथन करके शिथिलाचारी जैनीसाधुकावेष धारण करनेवालोंकी कल्पित अविधि और उत्सूत्र प्ररूपणा हटानेके लिये खम्भा ठोकने पूर्वक उपरोक्त

विधिमार्गकी सत्य बातोंको शास्त्र प्रमाणानुसार सिद्ध करके सबके सामने प्रकाशित करनेका समझना चाहिये।

और "यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानामित्यर्थः लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति उच्यते पुनर्जिन मतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति" इन अक्षरोंका भावर्थमें भी "जो यह छठा कल्याणक नहीं जाने हैं सिद्धांतके रहस्य ऐसे जितने हो गये आचार्य उन्होंके कर्णपथमें तो दूर रहो परन्तु लोचन पथमें भी नहीं आया है ऐसा छठा कल्याणक कहा है भगवतके वचन जानने वाले श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने" इसतरहका मतलब लिख करके न्यायांभोनिधिजीने अपनी मायाचारीकी विद्वत्ता भद्रजीवोंको दिखाकर अन्ध-परम्पराकी भ्रमखाड़में बालजीवोंको गेरने थे सो गेरे और इहलोक स्वार्थसे अपनी पूजा मानतामें दृष्टिरागियोंको फसानेके थे सो फंसालिये परन्तु शास्त्र कारके विरुद्धार्थमें लिखकर पूर्वाचार्योंकी आशातना करके इन महाराजको वृथाही मिथ्या दूषण लगाकर मिथ्यात्व बढ़ाते हुए निजपरके संसार वृद्धिका कारण करते कुछ भी लज्जा नहीं आई क्योंकि न्यायांभोनिधिजीके ऊपर लिखे मुजब छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेमें सब पूर्वाचार्योंको अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी उपरोक्त पाठका भावार्थ नहीं बनता है, किन्तु भव्यजीवोंके धर्मरूपी धन (सम्यगदृष्टिपने) को तस्करकीतरह हरण करनेवाले, अज्ञानरूपी अन्धकारमें पड़कर मोह प्रमादरूपी निन्द्रामें सोनेवाले, अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करतेहुये कल्पित आलम्बनोंको मायाचारीसे बालजीवोंको दिखाकर श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके उत्सूत्रप्ररूपणासे अविधिरूपी उन्मार्गका प्रचार करके उसमें गड्डरीह प्रवाही विवेकशून्य

दृष्टिरागियोंको अपने स्वार्थके लिये अन्धपरम्परामें फंसाने-वाले आचार्य वगैरह पदधरोंकी रात्रिस्नात्र प्रतिष्ठा तथा श्राविकाओंका मन्दिरजीमें रात्रिको आना और छठे कल्याणकको न मानने वगैरह बातोंके लिये चैत्यवासियों सम्बन्धी शास्त्र-कारने कहा है सो हमने ऊपरमें ही उसका भावार्थ लिख दिया है इसलिये उपरोक्त वाक्य शुद्ध प्ररूपक आत्मार्थी पूर्वाचार्यों के लिये नहीं है क्योंकि चौदह पूर्वधर श्रुत केवली श्रीभद्रबाहुस्वा-मीजी, तथा श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्यजी, श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी, श्रीअभयदेव सूरिजी, श्रीशी-लाङ्गाचार्यजी, श्रीतिलकाचार्यजी वगैरह पूर्वाचार्य महाराज तो श्रीकल्पसूत्र तथा श्रीस्थानागजी सूत्र और श्री आचाराङ्गजीसूत्रादि शास्त्रानुसार छ कल्याणक माननेवाले तथा चैत्यकी ८४ आशातना वर्जन पूर्वक विधिसे व्यवहार करनेवाले थे और पूर्वाचार्यों के बनाये अनेक शास्त्रोंमें ८४ आशातनाका वर्जन पूर्वक दिवसमें स्नात्र उच्छवादि करतेहुये विधिसे वर्ताव करनेका तथा छठे कल्याणकको मानने वगैरहका अधिकार बहुत जगहोंपर आता है और चैत्य-वासीलोग श्रीमन्दिरजीकी आशातना वर्जन सम्बधी तथा छठे कल्याणक सम्बन्धी शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद होनेपर भी उस मुजब न वर्तते हुए चैत्यमें रहना वगैरह विरुद्धाचरण करते थे इसलिये उन चैत्यवासियो सम्बन्धी "यो न शेष-सूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्याना" इत्यादि वाक्य टीकाकार महाराजनेकहे हैं नतु शुद्ध संयमी शास्त्रोक्त सत्य उपदेशक पूर्वाचार्यों सम्बधी जिसका विशेष खुलासा ऊपरमें लिखा गया है इसलिये उपरोक्त वाक्यका भावार्थमें न्यायांभोनिधिजीने

'जितने हो गये आचार्य' ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जानने वाले अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठा आक्षेपकिया सो दीर्घ संसारी पनेका कारण है॥ और श्रीजिनवल्लभसूरिजीने तो जितने होगये उतने सब पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी नहीं ठहराये परन्तु न्यायांभोनिधिजीने अपने लिखे भावार्थमें टीकाकारके विरुद्धार्थ में अपनी कल्पना मुजब अर्थ करके निजमें आपही ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्यों की बड़ीभारी आशातना करके अन्तर मिथ्यात्वके उदयसे संसार भ्रमण दुर्लभ बोधिके हेतूरूप महान् अनर्थ करदिया और इन महाराजको झूठा दूषण लगाकर उपहास-पूर्वक लिखके भोलेजीवोंको शास्त्रानुसार छ कल्याणकको सत्य बातपरसे श्रद्धा भ्रष्ट करनेका कारण किया जिसके विपाक तो भवान्तरमें भोगे विना छुटने बहुत कठिन है।

और "प्रकर्षेणेद मित्थमेव भवति" इत्यादि—इस पंक्तिमें तथा "यो न शेषसूरीणां" इत्यादि—इस पंक्तिमें छठे कल्याणकका नाम नहीं है तिसपर भी इन दोनों पंक्तियोंके भावार्थ में "अतिशय करके यह छठा कल्याणक ही है" और "जो यह छठा कल्याणक नहीं जाने हैं सिद्धांतके रहस्य ऐसे जितने होगये आचार्य" इस तरहका लिखकर भावार्थ में वारंवार छठे कल्याणकको लिखा सो यदि "विधिरागमोक्तः षष्ट कल्याणक रूपश्चेत्यादि विषयः पूर्वंप्रदर्शितश्च प्रकारः" इस पंक्तिको देखकर लिखा होवे तो भी मायाचारीका कारण है क्योंकि इस पंक्तिसे तो आगमोक्त षष्ट कल्याणक ठहरता है तथा "इत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितः च प्रकारः"

इन अक्षरोंसे जो पहिले चैत्यवास निषेध वगैरह विषय अतिशय विशेष करके दिखाये गये हैं उनमें ८४ आशातनाओंका निवारणादि चैत्य (मन्दिर) की विधि वगैरह बातो सम्बन्धी पूर्वमें लिखा गया है वो पूर्वोक्त बातोके विषयोके सम्बन्धको उन सब बातोको यहा ग्रहण करनेके लियेही तो उपरोक्त वाक्य टीका कारने खुलासा पूर्वक लिखे हैं सो उन सब बातोके विषयो सम्बन्धी "प्रकर्षेणेद नित्यमेव भवति योऽत्रार्थेऽसहिष्णु सवावदीत्विति" तथा "यो न शेष सूरीणा" इत्यादि यह दोनो पंक्ति लिखकर "अतिशय करके उपरोक्त चैत्यवास निवारणादि सम्बन्धी जो कथन किया है सो वैसेही है इसमें अन्यथा नही होसकता यह बात किसीको पसन्द नही होतो सामने आकर कथन करो" सो इस तरह चैत्यवास निवारणादि सम्बन्धी "स्कधास्फालनपूर्वक साधित सकल प्रत्यक्ष प्रकाशित" तथा "यो न शेष सूरीणामज्ञात सिद्धान्त रहस्यनां लोचन पथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति' यह वाक्य कहे हैं सो तो निष्पक्षपाती विवेकी तत्व दृष्टिवाले अल्पज्ञ भी पूर्वापर सम्बन्ध सहित अर्थ करने वाले अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, तिसपर भी न्यायाम्भोनिधिजी होकरके भी चैत्यवास निवारणादिकके सम्बन्धको टीकाकारके अभिप्रायको और पूर्वापरके पाठकी विषयको उपयोग शून्यतासे जाने बिना अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीसे जान बूझ करके चैत्यवासके विषयको छुपा कर 'प्रकर्षेणेद नित्यमेव भवति' इसके अर्थमें 'अतिशय करके यह छठा कल्याणकही है, तथा 'योनशेषसूरीणा' के अर्थमे "जो यह छठा कल्याणक नही जाने है सिद्धातके रहस्य ऐसे जितने हो गये आचार्य उनोके कर्णपथमें तो दूररहो परन्तु लोचनपथमे

भी नहीं आया है ऐसा छठा कल्याणक कहा है" इस तरह भावार्थमें वारम्वार छठे कल्याणकको लिखके दृष्टिरागी विवेक शून्य अन्धपरंपरा मुजब चलने वाले गच्छ कदाग्रही अज्ञानी जीवोंके आगे मनमाना भावार्थ लिख दिया परन्तु इस प्रकारकी मायाचारी करके अभिनिवेशिकसे महान् अनर्थके विपाकोंको भूल गये होंगे अन्यथा चैत्यवासादि निषेधके विषयको छोड़कर आगमोक्त छ कल्याणककी सत्यबातको नवीन प्ररूपणारूप असत्य ठहरानेका ऐसा महान् अनर्थ कारी प्रयत्न कदापि न करते और खंभे ठोक कर छठे कल्याणकी प्ररूपणा करते सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहराने सम्बन्धी श्रीजिनवल्लभसूरिजी के लिये न्यायांभोनिधिजीने लिखा सो व्यर्थ ही अज्ञानतासे महान् अनर्थ करके उन्मार्गके दोषाधिकारी बनगये परन्तु खम्भा र छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेमें सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहरानेका लिखा सो सिद्ध नहीं होसका और मायाचारीके सब भेद खुल गये तथा 'प्रकर्षेणेदमित्थ मेवभवति' इत्यादि दोनों पंक्तियोंके भावार्थमें चैत्यवासी अज्ञानी उत्सूत्रप्ररूपक द्रव्य लिंगियों सम्बन्धी सब पूर्वापरका विषय सम्बन्धके सबी भेद भी खुल गये और—आगमोक्त छठा कल्याणक ठहरगया इसको विशेषतासे तो तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'यो न शेष सूरीणां' इसके अर्थमें 'जितने होगये' ऐसे लिखकर सबपूर्वाचार्यों का ग्रहण किया सोभी अज्ञानताका कारण है क्योंकि 'शेष,कहनेसे तो सिद्धान्तके रहस्यको जाननेवाले तत्वज्ञानी आज्ञाआराधक शुद्ध प्ररूपणा करने वाले आत्मार्थी आचार्यों से बाकीके इसलोक स्वार्थी चैत्यवासी आचार्य नाम धारकोंका ग्रहण होता है परन्तु सब पूर्वाचार्यों का ग्रहण तो

कदापि नहीं हो सकता और खास न्यायांभोनिधिजीके भावार्थमें लिखे मुजब "नहीं जानते हैं सिद्धान्तके रहस्य एसे जितने हो गये आचार्य" इन अक्षरोंसे भी विवेक बुद्धिको स्थिर करके विचारा जावे तो सिद्धान्तके रहस्यको जानने वाले एसे जितने पूर्वाचार्य हो गये है वो सब तो कदापि ग्रहण नही होसकते हैं तिसपर भी सब पूर्वाचार्योंका ग्रहण किया सोतो मम जननी वध्या समान ठहरता है क्योंकि जब ऊपरके अक्षरोंसे भी अज्ञानी ग्रहण हुए तो जितने ज्ञानी पूर्वाचार्य होगये सोतो ग्रहण करना बनही नही सकता और 'शेष' शब्द तो कथन करने वालेके वर्त्तमान समयका अर्थ वाला है इसलिये 'जितने होगये, ऐसा लिखकर सब पूर्वाचार्योंका अर्थ ग्रहण करके भूतकाल ठहराया सो तो प्रत्यक्ष विरुद्धता है।

और "अशेष" शब्द सपूर्ण सब पूर्वाचार्योंके अर्थ वाला है तथा 'शेष' शब्द उन पूर्वाचार्योसे बाकीके थोड़ेसे नाम धारक आचार्योंके अर्थ वाला है सो तो अल्पज्ञ भी समज सकता है तिस पर भी न्यायाभोनिधिजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी 'शेष' शब्दके अर्थमें "अज्ञात सिद्धांत रहस्याना" इस प्रकार उन चैत्य वासियोका विशेषण टीकाकारने खुलासा लिखा होने पर भी बड़ा अनर्थ करके महान् उत्तम परम पूज्य सब पूर्वाचार्योका तथा शुद्ध प्ररूपक तत्वज्ञ क्रियापात्र उस समयके वर्त्तमानिक विद्यमान सब आचार्योंका ग्रहण कर लिया और इस प्रकारके बड़े अनर्थकोही विवेक शून्यतासे पूर्वापरका विचार किये बिना इस समय वर्त्तमान कालमें उनके गच्छवाले अपनी विद्वताके

लंबे लंबे विशेषण धारण करने वाले हो करके भी अन्धपरंपरासे चलाये जाते हैं और तत्व दृष्टिसे सत्यासत्यका निर्णय नहीं करते हैं सो भी बड़ी शर्मकी बात है।

और आगे फिर भी लिखा है कि (अब इस गणधरसार्द्ध शतकके पाठसे आपही विचारिये कि जब आपके बड़े श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पूर्वाचार्यों को सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराके और विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धान्तका झूठा नाम लेके लोगोंको भरममें गेरते हो) ऊपरके इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि जब उपरोक्त पाठमें प्रगटपने "आगमोक्तः षष्ठ कल्याणकः" याने मूल आगमोंमें छठे कल्याणकका कथन किया हुआ है ऐसे अक्षर खुलासाके साथ सूर्य्यकी तरह प्रकाश कर रहे हैं तिसपर भी उसको न समझकर विपरीत रीतिसे निषेध करनेवालोंको आगम सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी कहे जावें तो इसमें कौनसी बुरी बात हुई सो तो आप भी इस बातमें इनकार नहीं कर सकते, तथा "योनशेषसूरीणां" यह वाक्य तो उपरोक्त चैत्यवासियोंकी–अज्ञानता, अविधि, उत्सूत्र प्ररूपणा करने तथा शास्त्रोक्त बातको न मानने सम्बंधी है इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी सम्बन्धी आक्षेप रूप ऊपरका आपका लिखना अज्ञानताका सूचक व्यर्थ है। और आगमोक्त बातको भव्यजीवोंके आगे गांव गांव नगर नगर प्रति रोजीना प्रकाशित करना सो तो श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधर पूर्वाचार्य और सब साधुओंका खास कर्तव्यरूप कार्य है इसके अनुसार इन महाराजने भी चैत्यवासियोंके अन्धपरम्पराके कदाग्रहको हटानेके लिये अपनी हिम्मत बहादुरी विद्वत्ताकी सामर्थतासे

चैत्यावास निषेध पूर्वक चैत्यकी शास्त्रोक्त विधिका तथा आगमोंमें कहा हुआ छठा कल्याणकका कथन किया सो तो उपरोक्त पाठमें प्रगट अक्षरहै तिसको तो द्रव्य लोचन वाला भी अच्छीतरहसे देख सकताहै परन्तु इतने बड़े विद्वान् न्यायाम्भोनिधिजी बन करके भी अपने कल्पित कदाग्रहके हठको स्थापनेके आग्रहमें पड़ करके दृष्टिरागियोंसे पूजा मान्यता करानेके लिये आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्य बातको उड़ाकर वृथा द्वेष बुद्धिसे उन्मत्तकी तरह "पूर्वाचार्योंको सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराकर विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया" इसतरहके अक्षर लिखके छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका लिखते कुछ शर्म भी न आई। हा! अतीव खेद? अपनी पूजा मानता तथा विद्वत्ता और गच्छ कदाग्रहके हठवादको जमानेके लिये कितना बड़ाभारी अनर्थ कर दिया और ऐसे महान् अनर्थसे अपने और अपनी अंधपरंपराकी मायाजालमें फँसनेवाले दृष्टिरागी भद्रजीवोंके संसारभ्रमण दुर्लभ बोधिपनेके दीर्घकर्मोंका कुछभी विचार नही किया यही तो विशेषरूपसे बाह्य आडम्बरियोंकी पाखण्डपूजारूप गड्डरीह प्रवाही कलयुगकी महिमाके सिवाय और क्या होगा सो इसको आत्मार्थी श्रीजिनाज्ञाराधनाभिलाषी निष्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञ सज्जन स्वय विचार लेना।

और "विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर यह छठा कल्याणक कथन किया" इसपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि श्रीजिनवल्लभसूरिजीमहाराजके समयमें चीतोड़नगरमें द्रव्यलिङ्गको धारणकरनेवाले उत्सूत्रभाषी और कल्पित आलंबनोंसे अविधि रूप उन्मार्गमें भक्तोंसमेत आप चलनेवाले चैत्यवासी आचार्य थे

सो उन्होंसे विरुद्ध होकर अंधपरंपराकी मायाजालके कदाग्रहको हटानेके लिये इन महाराजने चैत्यवासियोंकी श्रीजिनाज्ञा विरुद्धकल्पित बातोंका निषेध करके शास्त्रानुसार आज्ञामुजब विधिमार्गकी सत्यबातोंको भव्यजीवोंके उपकारके लिये प्रगटकरी उसको आपलोगोंने अच्छा नहीं समझकर विद्यमान चैत्यवासियोंके आचार्योंसे निरपेक्ष याने विरुद्ध होनेका लिखा इससे तो यही सिद्धहोता है कि उन चैत्यवासियोंकी उत्सूत्ररूप कल्पित बातोंको आप अच्छी समझते हैं तबही तो शास्त्रोंके रहस्यको समझे विना उन चैत्यवासियोंकी तरह दो श्रावण होने पर शास्त्रप्रमाणसे ५० दिनेपर्युषणाकरनेका छोड़कर ८० दिने प्रत्यक्ष विरुद्धातासे करते हो तथा शास्त्रोक्त श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करके उत्सूत्रभाषण करनेवाले बनते हो और गच्छ कदाग्रहके फंदमें भोलेजीवोंको फंसातेहो इसलिये इन महाराजका सत्यकथन भी आपको अच्छा नहीं लगा इससे विपरीत होकर, कुविकल्प उठाया अन्यथा 'विद्यमान आचार्योंसे निरपेक्ष होकर, ऐसे अक्षर लिखके चीतोड़के चैत्यवासियोंके विरुद्ध होनेका कदापि न लिखते क्योंकि इन महाराजने यहबात चीतोड़में ही प्रगट करी है और उस समय चीतोडमें चैत्यवासियोंकी मनमानी बातोंमें दृष्टिरागी विवेक शून्य श्रावक लोक उन्होके फंदमें पूरे पूरे फंसगये थे इससे उन्होंकी अविधि प्रचाररूपी मिथ्यात्वके अन्धकारकी मानों राजधानी जमीहुई थी उसको इन महाराजने वहां विधि मार्गकी श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्यबातोंकों प्रगटकरने रूप सूर्यके प्रकाशसे उखेड़ डाली और उस समय वहां शुद्ध क्रियापात्र सत्य उपदेशक उग्रविहारी आचार्योंका अभाव था इसलिये "विद्यमान आचार्योंसे" इन अक्षरोंसे उन चैत्यवासियोंके सिवाय आत्मार्थी

कल्याण करते हुए भव्यजीवोंको सत्यबात ग्रहण कराकर संसार भ्रमण रूपी खोटी श्रद्धाकी खाडसे उद्धार करनेके अनन्त लाभको प्राप्त करें, जिसमेंही निजपरका हित है परन्तु अभिमान झूठा हठवादसे तो संसार वृद्धिके सिवाय और कुछ भी सार न मिलेगा, गुरु गच्छके कदाग्रहसे मनुष्य जन्म वृथा गमाना उचित नहीं है।

और न्याय विशारद सुप्रसिद्ध महोपाध्याय श्रीयशोविजय-जीने श्रीसीमंधरस्वामीजीके स्तवनमें "जिमजिम बहुश्रुत बहुजन संम्मत, बहु शिष्ये परिवरियो ॥ तिमतिम जिन शासन नो वयरी। ते नवी कबुये तरियो" इस गाथाको जो कलिजुगकी व्यवस्था देखकरके कही है सो तो न्यायांभो निधिजीने पर्युषणा तथा सामायिक और कल्याणकादि विषयोंमें उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहसे और कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे ढूंढक मतके त्यागी वैरागी सत्योपदेशक बाह्य आडम्बरके भरोसे भोले जीवोंको श्री जिनाज्ञाकी विराधनके रस्ते चलानेके कर्त्तव्योंसे प्रत्यक्ष प्रमाणता युक्त सत्य करके दिखाई है परन्तु अब आत्मार्थियोंको उत्सूत्र प्ररूपणाकी बातोंकों त्याग करके श्रीजिनाज्ञा मूजिब शास्त्र प्रमाण युक्त इस ग्रन्थमें कथन करी हुई सत्य बातोंको शीघ्रतासे ग्रहण करके अपनी शुद्ध श्रद्धा पूर्वक आत्म कल्याणके कार्यका उद्यम सफल होवे ऐसा करना चाहिये।

और "आगमोक्तः षष्ट कल्याणकः" ऐसे अक्षर प्रत्यक्षपने खुलासा पूर्वक उपरोक्त पाठमें होनेपर भी "स्कंधा स्फालनपूर्वक साधितः" तथा "योनशेषसूरीणामज्ञात सिद्धांत रहस्यानां" इत्यादि इन दोनों पंक्तियोंके भावार्थको और चैत्यवा-सियों सम्बन्धी पूर्वापरके विषय सम्बन्ध को (विवेक बुद्धी से समझे बिना या अभिनिवेशिककी मायाचारीसे) छोड़करके

ऊपरकी दोनों पंक्तियोंके अर्थमें अटपटांग मन कल्पना मुजब भावार्थमें लिखकर उन शब्दोंके ऊपर अपना कुविकल्प उठाया याने उपरोक्त नाम धारक चैत्यवासी आचार्योंकी उत्सूत्रतासे अविधिरूप उन्मार्गकी कदाग्रही प्ररूपणाको हटानेके लिये, शास्त्रोक्त छठे कल्याणकके स्वरूपको न समझने वाले, तथा मन्दिरजीकी ८४ आशातना निवारणादि पूर्वक विधिसे वर्ताव करने सम्बधी शास्त्रोंमें प्रत्यक्ष पाठ मौजूद होनेपर भी श्रीमन्दिरमें रहते हुए ८४ आशातना करने वाले उन चैत्यवासियोंको श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने सिद्धान्तके रहस्यको न जानने वाले ठहराये तथा भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रोक्त विधिमार्गकी सत्यबातोंसे शुद्धश्रद्धाकी प्राप्ति पूर्वक दृढ़ता होनेके लिये अपनी विद्वत्ताकी हिम्मत शरीरप्रकृतिकी चेष्टासे सम्भा ठोकके ऊपरकी शास्त्रोक्त बातोंको सबके सामने विशेषतासे प्रकाशित करी जिसके तात्पर्यार्थको तो समझ सके नहीं इसलिये ऊपरकी दोनो पंक्तियोके अक्षरोंको देख कर अपने अतर मिथ्यात्वकी अज्ञानताका कुविकल्प भद्रजीवो पर गेरना चाहा कि, ऐसे शब्द क्यों कहे परन्तु विवेक बुद्धिसे इतना नही विचार किया कि श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके उत्सूत्र भाषणोपूर्वक अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे भव्यजीवोंको उन्मार्गमे गेरनेवालोंके पाखण्डको हटानेके लिये इन महाराजके उपरोक्त कथनसे भी विशेष ज्यादा शब्द कहे जावे तोभी कोई हरजेकी बात नही है। देखिये खास न्यायाम्भोनिधिजीनेही उत्सूत्रप्ररूपणा करने वालो सम्बन्धी अपने बनाये "अज्ञान तिमिरभास्कर" ग्रन्थके पृष्ठ २९४।२९५ के लेखमें कैसे कैसे शब्द लिखे हैं सो लेखे भी इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ७९।८० में छप चुका है और ढूंढकमतके साधुका वेषधारक जेठमल्लने

श्रीजिनप्रतिमाजीका उत्थापन वगैरह विरुद्धाचरणकी बातोंको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंसे संसार भ्रमण, दुर्लभ-बोधिपनेके दीर्घकर्मों का भय न रखके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फंसानेके लिये आगमोंके पाठोंका उलटाही विपरीत अर्थ करके कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे अनेक तरहके उटपटांग समकीतसार नामक परन्तु वास्तवमें उत्सूत्रोंकी अंधखाडकी पुस्तकमें लिखेथे, जिसका प्रति उत्तरमें भव्यजीवोंको सत्यबातकी प्राप्तिरूप उपकारके लिये "सम्यक्त्व शाल्योद्धार" नामा ग्रन्थमें खास न्यायांभोनिधिजीने उस जेठमल्लके तथा अन्य ढूढ़ियोंके जूठे हठवादकी कुयुक्तियोंके पाखडको हटानेके लिये "अज्ञानी, महामिथ्यात्वी, मूढमति, महानिन्हव, वैश्यापुत्र-समान, पशुतुल्य, दिनमें अंधे, अक्कलके दुश्मन, मूर्खशिरोमणी, महा दुर्भवी, मलेच्छ सरीखे पंथके मानने वाले, अनन्त संसारी, हीण पुण्योये, दासी पुत्र तुल्य, जेठेके बापके चोपड़ेमें लिखा है" इत्यादि अनेक तरहके अनुचित कटुक शब्द बहुत जगहों पर लिखे हैं तथा जिन मन्दिर कराने वाला श्रावक १२ वें देवलोक जावे इसका निषेध करनेके लिये जेठमलने अपने अन्तरके गाढ मिथ्यात्वके उदयसे दुर्बुद्धिसे भोले जीवोंको अपनी मायाजालमें फंसानेके लिये जिन मन्दिर बनाने वालेको नरक लिख दी जिसकी समीक्षामें सम्यक्त्व शल्योद्धारके पृष्ठ १८७ पंक्ति ६ से १० तक "जेठमलने उत्सूत्र लिखते हुए जरा भी विचार नहीं करा है जे कर जेठमल ढूंढक वर्तमान समयमें होता तो पण्डितोंकी सभामें चर्चा करके उसका मुंहकाला कराके उसके मुखमें जरूर शक्करदेते क्योंकि जूठ लिखने वालेको यही दण्ड होना चाहिये" इस तरहके शब्द लिखे हैं और इसी पृष्टमें ढूंढिये ढूंढणीये उनके सेवक सबको नरकमें जानेका

लिखा है और पृष्ट २५४।२५५ में भी कितने ही अभाषणीय शब्द लिख दिये हैं अब विवेकी निष्पक्षपाती पाठक गणको न्यायपूर्वक धर्मबुद्धिसे विचार करना चाहिये कि न्यायाभोनिधिजीने ढूंढकोंके लिये कैसे कैसे शब्द लिख दिये जिसपर तो कोई भी कुविकल्प किसीके दिलमें न उठा और श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चैत्यवासियोंके कल्पित आलम्बनोंका हठवादके मिथ्यात्वकी उत्सूत्रता और स्वार्थसिद्धकी प्रमादताका अभिनिवेशिकको हटानेके लिये अपने शरीर प्रकृति स्वभावकी चेष्टासे अपने कथनमें शास्त्रोक्त प्रमाणोंकी सत्य दृढता भव्य जीवोंको दिखाकर श्रीजिनाज्ञाकी प्राप्ति करानेके लिये शास्त्रोक्त बातोंको न समझने वाले और अविधिसे उन्मार्ग चलानेवाले उन चैत्यवासियोंको सिद्धान्तके रहस्यको न जाननेवाले ठहराकर खम्भा ठोकते हुवे सत्यबातोंको सबके सामने प्रकाशित करी, जिसपर अपना कुविकल्प उठाकर भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये चैत्यवासियो सम्बन्धी शास्त्रकारके अभिप्रायके अर्थकी जगहपर सब पूर्वाचार्यों को लिखके विद्यमान गीतार्थ शुद्ध उपदेश देने वाले आत्मार्थी सब आचार्योंको लिख दिया और आगमोक्त छठे कल्याणकको जबराईसे खमे ठोककर नवीन उत्सूत्र प्ररूपणरूप छठे कल्याणक को ठहरा दिया हा अति खेद ॥ "खल सरस्व मात्राणि, पर छिद्राणि पश्यति ॥ आत्मनो बिल्वमात्राणि, पश्यन्नपिन पश्यति" की तरह करके व्यर्थ ही निजपरके संसार बढानेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके कथनके रहस्यका तात्पर्यार्थके भावार्थको पूर्वापर सम्बन्ध सहित समझे बिना अपनी विद्वत्ताकी बड़ाई दृष्टिरागी विवेकशून्य अन्धभक्तोंमें

दिखाकर कितना वड़ा महान् अनर्थ करके मिथ्यात्वका कारण किया खैर।

अब श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी विवेकी पाठक गणसे हमारा इतनाही कहना है कि, उपरोक्त पाठके बनानेवाले टीका कार महाराजने चैत्यवासियोंके लिये पूर्वापर सम्बन्ध सहित ऊपरके पाठका भावार्थ सम्बन्धी "चैत्यादि विषयः पूर्व प्रदर्शितश्चप्रकारः" ऐसा खुलासा लिखदिया था तथा उपरके पाठकी व्याख्याकरनेकी आदिमें ही पूर्वकी गाथाके प्रसङ्गका इस गाथामें सम्बन्ध करनेका लिखा था जिसको तो इन्होंने जड़मूलसे ही उड़ा दिया और ग्रन्थकारके अभिप्राय विरुद्ध होकर आगे पीछेके सम्बन्धको तोड़कर विना सम्बन्धसे १ गाथाको लिखके उसका उलटा अर्थ करके भोलेजीवोंको अपनी मायाजालमें फंसानेके लिये श्रीजिनाज्ञाकी विराधनाका भय न करते हुए कितना वड़ा महान् अनर्थ करके आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्यबातको उत्सूत्ररूप असत्य ठहराके श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज पर छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका दोष (कलङ्क) लगादिया और पर्युषणा, कल्याणक, सामायिकके विषयोंमें भी शास्त्र प्रमाणोंको उत्थापतेहुए कितनेही उत्सूत्र लिखके कुयुक्तियोंसे भद्रजीवोंको उन्मार्गके भ्रममें गेरनेके लिये अपनी बुद्धिकी चातुराई खर्च करनेमें किसी तरहसे न्यूनपता न करके श्रीमद्यशोविजयजीको कथन करीहुई उपरोक्त गाथाको सार्थक करी तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजीको झूठा दोष लगाया सो ऐसे कर्तव्योंसे प्रत्यक्षपने दीर्घ संसारीपनेके लक्षण मालूम होते हैं तिस पर भी शास्त्रप्रमाणोंको उत्थापकर उत्सूत्रोंसे कुयुक्तियों करके मिथ्यात्वका कारण

करनेवालोको भी हमतो सम्यक्त्व शल्योद्धारके जैसे लोक विरुद्ध अनुचित शब्दोको लिखने अच्छे नहीं समझते है।

और 'आगमोक्त षष्ठ कल्याणक' यह वाक्य ऊपरके पाठमें विद्यमान है याने श्रीकल्पसूत्र तथा श्रीआचारांगजीसूत्र और श्रीस्थानांगजीसूत्र वगैरह शास्त्रोमें छठे कल्याणकका प्रत्यक्षपने कथन किया हुआ है (इसके प्रमाणमें इसी विषयकी आदिमेंही अनेक शास्त्रोके प्रमाण मूलपाठ सहित छप चुके हैं) तिसपर भी न्यायाम्भोनिधिजीने अपना कल्पित पाखण्ड जमानेके लिये (यह छठा कल्याणक नवीन कथन किया तो फिर किस वास्ते सिद्धान्तका झूठा नाम लेकर लोगोको भ्रममे गेरते हो) इस तरहका लिखकर नवीन छठे कल्याणकको प्ररूपणा करनेका ठहराया और छठे कल्याणककी सिद्धि सम्बन्धी जो जो शास्त्रोके पाठ "शुद्ध समाचारी प्रकाश" नामा पुस्तकमें दिखाये गये थे उन शास्त्र पाठोको लोगोको भ्रममें गेरने वाले झूठे ठहराये सोतो खास आपही निजमें उन शास्त्रपाठोको उत्थापन करके उत्सूत्रभाषणसे कुयुक्तियोके विभ्रममें भोले जीवोको भ्रमाने वाले बने है नतु '*शुद्ध समाचारी प्रकाश*' वाले क्योंकि उन्होंने तो जो जो पाठ छठे कल्याणककी सिद्धिके लिये लिखे हैं सो सब सत्य है परन्तु छठे कल्याणकको निषेध करने वालेही श्रीजिनाज्ञाके विराधक बनते हैं सोतो इस ग्रन्थको वाचनेवाले विवेकी तत्वज्ञ जन स्वय विचार लेवेगें—

और आगे फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीने लिखा है कि (पृष्ठ ८८ पंक्ति ७ में तपगच्छीय एक कुलमण्डनसूरिजीका जो उदाहरण दिया है सोतो तुमारे वडोकाही अनुकरण किया है ॥ पूर्वपक्ष ॥ श्रीकुलमण्डनसूरिजीने अनुकरणही किया है यह कैसे हमजान

लेवे ॥ उत्तर ॥ हे मित्र इतनातो विचार करणा चाहिये कि, जब पहिले श्रीजिनवल्लभसूरिजीने सभी आचार्योंसे निरपेक्ष होके नवीनही छठे कल्याणकको दिखाया तो फिर काहेको तर्क करते हो) इस तरहसे लिखकर जो शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तकमें छ कल्याणकाधिकारे पृष्ट ८७।८८ में श्रीतपगच्छके श्रीकुलमन्डन सूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरि ग्रन्थका पाठ दिखाया (तथा और भी कितनेही शास्त्र प्रमाणोंसे छठे कल्याणकको सिद्ध करके दिखाया) जिसपर न्यायांभोनिधिजीने अपनेपूर्वज श्रीकुलमण्डन सूरिजीने छठे कल्याणकको अपने बनाये ग्रन्थमें लिखा उसको अपने पूर्वजका वाक्य मान्य करना तो दूर रहा परन्तु विशेषतासे उसका निषेध करनेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजका अनुकरण करनेका श्रीकुलमण्डनसूरिजी पर आक्षेप लिखकर छठे कल्याणकके प्रमाण करनेकी बातको उड़ा दिया सो तो प्रत्यक्ष मायाचारीकी ठगाईका कारण है, क्योंकि जो शास्त्रानुसार सत्य बातका कथन होवे-उसके कथन करनेसे तो सब कोई अनुकरण करते हैं। देखो श्रीतीर्थंकर महाराजके कथनका अनुकरण श्री गणधर महाराज तथा पूर्वधर पूर्वाचार्यादि सभी परम्परागमसे-निजपरके आत्म कल्याणके लिये एक एकका अनुकरण करते आये हैं तथा ऐसेही चलता है सोही चलेगा परन्तु अविसंवादी जैनप्रवचनमें अन्यमतियोंकी तरह एक एकके विरुद्ध मनमानी गप्पोंकी बातें लिखनेका तो आत्मार्थी जैनाचार्योंमें कदापि नहीं हो सकता है इसलिये-जैसे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंने छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा मूल आगमोंमें कथन करी तैसेही श्रीपूर्वाचार्योंने भी आगमोंकी व्याख्याओंमें

लिखा उसीके अनुसारसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने भी छ कल्याणकोकी प्ररूपणा करी तो यदि इसबातमें इन महाराज का आपके कहने मुजब आपके पूर्वजने अनुकरण किया भी मान लिया जावे तो भी आपकी कल्पनासे अनुकरणके बहाने आप छठे कल्याणकका निषेध करना चाहते हो तो न्यायानुसार तो कदापि नही हो सकता है।

और हमारी समज मुजब तो अनुकरण करने सम्बन्धी आपका लिखना भद्रजीवोको भ्रमानेवाला मायावृत्तिका ठहरता है क्योंकि हमारे पूर्वाचार्योंने तो आगमानुसार अधिकमासकी गिनती वगैरह अनेक बातोको मान्यकरके अपने बनाये ग्रन्थोमें लिखी है सो जो तुम्हारे पूर्वजने हमारे पूर्वजका अनुकरण किया होता तो अधिक मासकी गिनती वगैरह जो जो बातें हमारे पूर्वजोने मानी सो सो बाते तुम्हारे पूर्वज भी मान लेते, तबतो तुम्हारा अनुकरणका लिखना ठीक हो सकता परन्तु तुम्हारे पूर्वजने वैसा तो किया नही और कोई कोई बातमे अपने पूर्वाचार्य मानते होगे सो वैसा किया तो प्रत्यक्ष मालूम होता है इसीलिये हमारे पूर्वाचार्यका अनुकरण न करते अपनेको अच्छालगा वैसा कुलमण्डनसूरिजीने अपनेग्रन्थमें लिख दिया होगा सो छ कल्याणक अपनेको उचित लगे होगे तभी लिखे और अधिक मासको गिनतीमें लेना आगमानुसार है सोही खास श्रीकुलमण्डनसूरिजीने भी अधिक मासकी गिनतीसे १३ मासोके अर्थवाला अभिवर्द्धितसम्वत्सर लिखा होनेपर भी पूर्वापर विरोधका और आगमोके प्रत्यक्ष प्रमाणोके उत्थापनका विचार न करके उसकी गिनती करनेका निषेध करनेके लिये “विचारामृत सग्रह” नामाग्रथमें खूब कोशिश करी।

अब विचार करना चाहिये कि हमारे पूर्वजका अनुकरण आपके पूर्वज करते तो अधिक मासकी गिनती निषेध कदापि न करते परन्तु करी इससे भी सिद्ध होता है कि अनुकरण नहीं किया किन्तु अपना रुचा किया है इसलिये अनुकरणके बहाने सामाचारीसे छठे कल्याणककी सिद्धिकी बातको उड़ाना चाहा सो प्रत्यक्ष मिथ्या ठहर गया इससे छठे कल्याणकका निषेध करना छोड़ कर अपने पूर्वजके लिखे मुजब छठे कल्याणकको मान्य करो तो अच्छा है और श्रीकुलमण्डनसूरिजीने छ कल्याणक लिखे परन्तु उसको तुम्हारे किसी भी पूर्वाचार्यने निषेध न किया तथा उस ग्रन्थको अप्रमाणभी न ठहराया इससे भी सिद्ध होता है कि कुल मण्डन सूरिजीके समयमें तुम्हारे सभी पूर्वज तथा कुलमण्डनसूरिजीके पूर्वज पूर्वाचार्य सभी छ कल्याणक मानने वाले थे अन्यथा कोई भी उसका निषेध अवश्य करते सो न किया ॥ तथा यह बात तो स्वयं सिद्धही है, कि हरेक गच्छके आचार्यादि जो कोई विवेक बुद्धिवाले श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंके प्रत्यक्ष पाठोंका अर्थको समजने वाले कदाग्रह रहित होंगे सोतो सभी छ कल्याणक मान्य करेंगे क्योंकि शास्त्रोंमें बहुत जगहोंपर खुलासा लिखा है ॥ तथा वस्तु, स्थान, कल्याणक, तीनों शब्द पर्याय वाची एक अर्थको कथन करने वाले हैं इसलिये कुल मण्डन सूरिजीके पूर्वाचार्य तथा उनके समयमें वर्तमानिक तपगच्छके समुदाय वाले आचार्यादि सभी छ कल्याणक मानते होवे उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है अतएव न्यायांभोनिधिजीकी साधुमंडलीसे तथा श्रीतपगच्छके समुदायसे मेरा यही कहना है कि जब श्रीतीर्थंकर गणधर महाराजोंके कथन किये हुए छ कल्याणकोंको तपगच्छके खरतरगच्छके वगैरहसभी आत्मार्थी

शास्त्रपाठोके तात्पर्यार्थको, याने-सिद्धान्तके रहस्यको जानने वाले सभी आचार्यादि छ कल्याणक मानते आये तैसेही तपगच्छके कुलमंडनसूरिजी वगैरहोने भी छ कल्याणक लिखे सो एक एकके अनुकरण मुजब कथन करना सो तो परम्परागम कहा जाता है इसलिये आप लोगोको भी छ कल्याणकके निषेध करनेकी कुयुक्तियो करनेके हठवादको छोडकर उत्सूत्रप्ररूपणाके पापसे बचनेके लिये शास्त्रानुसार आपके पूर्वजोके कथन मुजब छ कल्याणक मान्य करने चाहिये जिससे शास्त्र पाठोके उत्थापनके तथा पूर्वाचार्योकी अवज्ञाके दूषणसे संसार वृद्धिके कारणका बचाव होकर निजपरके आत्म कल्याणमें उद्यम करनेका अवसर मिले और उसकी सफलता प्राप्त होनेका कारण आपके बने आगे आपकी इच्छा।

और ऊपरके लेखमें अनुकरण करनेका लिखके पूर्वपक्ष उठाकर उसके उत्तरमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीपर आक्षेप करके वोही आक्षेपकी बात अपने पूर्वजपर गेरनेका लिखा सो तो ऊपरकेलेखसे न्यायांभोनिधिजीकी अज्ञानताके परदोके सबभेदको पाठक गण स्वय समज सकेंगे-क्योंकि श्रीजिनवल्लभसूरिजीका सत्यबातमें शास्त्रानुसार कथनका अनुकरण श्रीकुलमंडनसूरिजीने किया सो शास्त्रानुसार सत्यबात इन्होसे मंजूर न होसकी उससे कुविकल्प उठाकर भद्र जीवोको भी भरमाये और पूर्वपक्ष उठाना भी मायावृत्तिकी अज्ञानताका सूचक है क्योंकि खरतर गच्छवाले ऐसा पूर्वपक्ष कदापि नहीं उठा सकते हैं इसलिये पूर्वपक्षका उठाना और उनका उत्तरमें मनमाना उटपटांग गप्प लिखना सब व्यर्थ है।

और आपके पूर्वज सम्बन्धी अब मेरा तो इतनाही कहना है कि चाहेतो हमारे बडे पूर्वज श्रीजिनवल्लभसूरिजीके शास्त्रोक्त छ

कल्याणकके सत्य कथनका अनुकरण करके आपके बड़े पूर्वज श्रीकुलमण्डनसूरिजीने अपने बनाये ग्रन्थमें छ कल्याणक लिखे ऐसा आप मानो, या अपनी रुची मुजब छ कल्याणक लिखे मानो, वा अपने तपगच्छके पूर्वाचार्योंके माने मुजब परम्परागमसे लिखे मानों अथवा इस बातमें श्रीजिनवाणीको मान्य करके आगम प्रमाणानुसार छ कल्याणक लिखे मानो सो चाहे जिस तरहसे मान्य करो यह तो आपकी खुशीकी बात है परन्तु शास्त्रानुसार छ कल्याणक थे सोही आपके पूर्वजने लिखे हैं इसलिये श्रीकुलमण्डनसूरिजीके छ कल्याणक लिखने सम्बन्धी इस सत्य कथनको जो तुम्हारेमें भी शास्त्रप्रमाणानुसार सत्य बातको प्रमाण करनेरूप आत्मार्थीपना होतो युक्ति पूर्वक न्यायानुसार शास्त्र सम्मत छ कल्याणकोंकी सत्य बातको मान्य करनीही पड़ेगी, न्याय मुजब तो किसी तरहसे आप इस बातको कदापि निषेध नहीं कर सकते, तिस पर भी अपनी खोटी बुद्धिके उदयसे श्रीजिनवाणीरूप आगम वचनके छ कल्याणकोंको न मानकर उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंके विकल्पोंसे इस सत्य कथनका भी निषेध करनेके लिये अभिनिवेशिकका कदाग्रहको न छोड़ते हुए श्रीजिनवल्लभसूरिजीका अनुकरणकाही बहाना लेकर श्रीकुलमण्डनसूरिजीको भी उसी मुजब दोषी मान बैठों, तो अपनी गुरु परम्परासे इनका नाम निकाल दो क्योंकि आपकी खोटी बुद्धिकी समझ मुजब तो आप श्रीजिनवल्लभसूरिजीको सब पूर्वाचार्योंको अज्ञानी ठहराने वाले तथा खंभा ठोककर जबराईसे उत्सूत्ररूप नवीन छ कल्याणककी प्ररूपणा करने वाले आप मानते हो और फिर भी आप इन महाराजकाही अनुकरण करनेवाले अपने पूर्वज श्रीकुलमण्डनसूरिजीको भी कहते हो इससे तो आपके पूर्वज भी

आपके पूर्वाचार्यों को तथा अन्य सब पूर्वाचार्यों को अज्ञानी ठहरानेवाले व उत्सूत्ररूप छ कल्याणक लिखनेवाले आपके लेखसे ठहरगये, तो अब यहांपर विचारनेकी बात है, कि सब पूर्वाचार्यो को अज्ञानी ठहरानेवाले तथा उत्सूत्रलिखनेवाले श्रुलभद्रनसूरिजीको न्यायाभोनिधिजीकी मडलीवाले विद्वान्‌जन अपनीगुरु परम्परामें कदापि रहने देवे यह तो नहीं बन सकता इसलिये अब विद्वानोंके आगे हास्य जनक अपनी कुबुद्धिकी ऐसी ऐसी कुयुक्तिये करना छोड़ कर, या तो शास्त्रानुसार छ कल्याणक मान्य करो या कुलभद्रनसूरिजीको अपनी गुरु परम्परासे निकालो।

और अपनी समझ मुजब अपने लिखे लेखसे ही अपने पूर्वज, सब पूर्वाचार्यों की आशातना करने वाले उत्सूत्रके दोषी ठहर जावें तिसपर भी उनको अपने बड़े पूर्वज गुरुपनेमें मानते हैं सोभी बड़ी शर्मकी बात है और यदि इन महाराजको अपने पूर्वज गुरु उत्तम पुरुष पनेमें मान्य रखो तो इनपर ऐसा बड़ा भारी दोष लगानेका आक्षेप लिखा सो उनका प्रगटपने मिच्छामि दुक्कड़ देकर छ कल्याणककी सत्यबातको मान्य करलो, अन्यथा छ कल्याणक भी मान्य न करोगे और अपने पूर्वजको हमारे पूर्वजका अनुकरण करनेवालेभी कहोगे तबतो 'ममजननी वन्ध्यावत्' की तरह विवेकी सज्जनोंके आगे आपका लिखना बाल लीलाका ख्याल मुजब आत्मार्थियोंको प्रत्यक्षपने स्वय ही त्यागने योग्य मालूम हो जावेगा, और इन महाराजको अपनी गुरु परम्पराका समुदायसे निकालना मान्य करो तो 'जैनतत्वादर्श' वगैरह पुस्तकोंमें इनको उत्तम पुरुषपनेमें मान्य करके लिखा है जिसका सुधारा सम्बन्धी वर्तमानिक पत्रोंद्वारा जाहिर खबर (नोटिस) निकालना पड़ेगा और इन महाराज सबंधी ऐसा करनेमें भी नदीसे समुद्रमें गिरने जैसी विड-

रूपना होगी अर्थात् जैसे ढूंढियोंने तो अपना कदाग्रह जमाकर अपना अलग नवीन मत निकालनेके लिये जिनप्रतिमाको तथा पञ्चाङ्गीरूप जिनवाणीको और पूर्वधरादि सब पूर्वाचार्यों को मानना उठा दिया, तैसेही आप लोगोंको भी अपना कदाग्रह जमानेके लिये उनसे भी अधिक करना पड़ेगा याने श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थंकर महाराजोंने तथा गणधरोंने और पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों ने मूल सूत्रादि पञ्चांगीके अनेक शास्त्रोंमें छ कल्याणक कथन किये है और आप लोग छ कल्याणकोंका मानना उठाते हो इससे छ कल्याणकके कथन करने वालोंकों भी नहीं मानने अप्रमाण ठहरानेकी आपत्ति आती है, इसको खूब दीर्घ दृष्टिसे विवेक बुद्धि पूर्वक विचार करके छ कल्याणकोंको नहीं माननेका कदाग्रह छोड़ो, नहीं तो इनके निषेधसे इनके कथन कर्ताओंको प्रमाण माननेका उठ जानेसे इन महाराजोंके विरुद्ध कदाग्रह जमानेके मिथ्यात्वके बड़ेही दोषके बोझेसे कदापि दूर नहीं होसकोगे इस लिये यदि मिथ्यात्वसे संसार भ्रमणका भय लगता हो तो छ कल्याणकोंको मान्य करो और निषेधके लिये जो जो अनर्थ किये जिसकी आलोचनासे आत्मशुद्ध करके भव्य जीवोंको शुद्धमार्गका दर्शाव पूर्वक निजपरका आत्म कल्याण करो आगे इच्छा आपकी है।

और आगे फिर भी लिखा कि (हे मित्र जब इस छठेकल्याणककी आपको जडता सिद्धकर दिखाईतो फिर आपका जितना प्रयास है सोतो स्वतः ही व्यर्थ है) न्यायांभोनिधिजीके इन अक्षरोंपर भी मेरेको इतना ही कहना है कि छठे कल्याणककी तो जडता कदापि सिद्ध नहीं हो सकती है परन्तु श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी कथनकरी हुई छठे कल्याणककी सत्यंकालको जडता कहनेवाले न्यायांभोनिधिजी वगैरह किसीको

श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोकी तथा अपने पूर्वाचार्यो की आशातना करतेहुए गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके उदयसे दीर्घसंसार और दुर्लभबोधिपनेका कारण करने जैसा महान् अनर्थ करते हुए लज्जा भी नही आई हा अतीवखेद ? खेद ? महा खेद ?? जो विद्वत्ताके अभिमान रुपी अजीर्णतासे श्रीतीर्थंकर महाराजोकी कथन करीहुई आगमोक्त छठे कल्याणककी सत्यबातको अन्तरगाढमिथ्यात्वीके सिवाय तो जइता कोई भी जैनी नाम धरानेवाले भी कदापि न कहेगे इसबातको पक्षपात छोडकर तत्वदृष्टिसे अच्छीतरहसे विचारनी चाहिये ।

और श्रीजिनाज्ञाभिलाषी सत्यग्राही विवेकी सज्जनोसे मेरा यही कहना है कि "स्कधास्फालन पूर्वक साधित" तथा "यो न शेष सूरीणां" इत्यादि इन दोनो वाक्योपर न्यायांभोनिधिजीको कुविकल्प उठा उससे उलटा अर्थ लिख कर भद्रजीवोको भ्रममें गेरे जिसका निर्णय उपरमें हमने शास्त्रकारोके अभिप्राय सहित पूर्वापर पाठ सम्बंधी भावार्थ सहित उन्होकी कुयुक्ति और अन्यायके लेखकी समीक्षा करके अच्छी तरहसे खुलासालिखदियाहै जिससे जो अब आत्मार्थीहोगा सोतो व्यर्थ अन्यायके आग्रहमें न पडकर, अपनी अधपरपराकी कुग्रहाके भ्रमको त्याग करनेमें कदापि विलब न करेगा परन्तु गाढ अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी दीर्घ ससारी जैनी नामधारी इहलोककी पूज्यता मान्यता शोभादृष्टिरागके गाढबन्धनसे बन्धेहुए होंगे सो सत्यबातग्रहण करनेके बदले भद्रजीवोको कुयुक्तियोसे विशेष न भ्रमावेंतो भी बहुत अच्छा होवेगा। भद्रजीवोके कर्मबधनके हेतु न होंगे ।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञाके आराधन करनेवाले निष्पक्षपाती सत्यग्राही आत्मार्थी सज्जन पाठक गणको विशेष रूपसे ऊपरकी बातमें निसंदेह होनेके लिये तथा बहुत काल से विवेकशून्यताकी अंधपरम्पराके गड्डरीह प्रवाहकी तरह कदाग्रहियोंका मिथ्याभ्रम निवारण करनेके लिये इस अवसर पर मैंरी तरफसे प्रगटपने प्रकाशित करके कहनेमें आता है, कि-श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने तो उस समय एक चीतोड नगरमें रहने वाले चैत्यवासियोंको शास्त्रोंके रहस्यको न जानने वाले अज्ञानी ठहराकरके स्कंधास्फालन पूर्वक शास्त्रानुसार छ कल्याणक तथा चैत्यकीविधि और साधुकीशुद्धक्रिया व्यवहार वगैरह बातें सबकेसामने भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी प्राप्ति केलिये प्रकाशित (प्रगट) करीथी परन्तु मैं तो अभी इस लेख छापे द्वारा सब ग्राम नगर शहरोंमें श्रीतपगच्छके श्रीपज्य,आचार्य,उपाध्याय, प्रवर्तक, पन्यास, गणि, पण्डित, शास्त्रविशारदजैनाचार्य, जैनरत्न, न्यायतीर्थ, न्यायरत्न, जैनधर्मोपदेष्टा, वगैरह पदधर विद्वान् मण्डलीको तथा सामान्यतासे सब साधु यति श्रावक-सभा मण्डलादि सबको उद्घोषणारूप सूचनासे (एकदेशीयदृष्टांतासे डंकेकीचोट,नगाराबजवातेहुए) मालूम कराता हूं, कि प्रथम तो- जैसे श्रीपञ्चपरमेष्टिमन्त्रकी ४ चूलिका, श्रीआचारांगजीसूत्रके तथा श्रीदशवैकालिकसूत्रके ऊपर दो दो अध्ययनरूप दो दो चूलिका और लक्ष योजनके सुमेरूपर ४० योजनके शिखरको तथा अन्य हरेक पर्वतों, व देवमन्दिरोंके शिखरोंको चूलिकायें कही, तैसेही- चन्द्रसम्वत्सरके १२ महिनो ऊपर तेरहवे अधिक महिनेको भी उत्तम श्रेष्टतारूप चूलिकाकी ओपमा देकर उसको जैन शास्त्रोंमें श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने गिनतीमें लेनेका कहके १३ महिनोंका अभिवर्द्धितसम्वत्सर कहाहै उसके अनुसार

वर्तमानमें भी देशकालानुसार माननेमें आता है उससे लौकिक पञ्चागमें दो श्रावण या दो भाद्रपद होवे तब भी आषाढ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रमें श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन श्रीकल्पसूत्रके तथा उसकी अनेक टीकाओके आधारसे पूर्वाचार्यों की आज्ञा मुजब आत्मार्थी करते है, तथा (दूसरा) श्रावकके सामायिक करने सम्बन्धी सब शास्त्रोमें पहिले करेमिभन्तेका उच्चारण करे बाद पीछेसे इरियावहीकी क्रिया करके स्वाध्याय करना कहा है, और (तीसरा) शासननायक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीके छ कल्याणक श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों ने मूल आगमादि पञ्चागीके अनेक शास्त्रोमे कथन किये हैं। जिसपरभी इनऊपरकीबातो सम्बंधी शास्त्रोके प्रत्यक्ष पाठोंके अक्षरोका भावार्थको सद्गुरुसे या विवेकबुद्धिसे-बांचे,सुने, विचारे, विनाही गड्डरीय प्रवाहकी तरह विवेक शून्यताकी अन्धपरम्परासे ऊपरकी बातोको निषेध करके। प्रथम। काल चूला वगैरहके बहानोसे (अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्म कार्यका व्यवहार करकेभी) श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यों केकथन किये हुए मूल आगमादि पञ्चागीके अधिक मासगिनतीमे प्रमाण करने सम्बन्धी अनेक शास्त्रोके पाठोका उत्थापन करके उसको गिनतीमें नही लेनेका ठहराते हुए लौकिक पञ्चागमे दो श्रावणहोनेसे प्रगटपने शास्त्र विरुद्ध भाद्रपदमें ८०दिने या दो भाद्रपद होनेसे दूसरे भाद्रमें ८०दिने पर्युषणा करने वाले, तथा (दूसरा) श्रीमहानिशीथसूत्रके तीसरे अध्ययनका चैत्यवदन उपधान सम्बन्धी पाठको, और श्रीदशवैकालिकसूत्रकी दूसरी चूलिकाके साधुको गमनागमनसे इरियावही पूर्वक स्वाध्याय करने सम्बन्धी पाठको, आगे करके श्रावकके सामायिकमे पहिले इरियावही पीछे करेमिभन्तेको स्थापन करते हुए, श्रीआवश्यक चूर्णि, बृह-

वृत्ति, लघुवृत्ति, श्रीनवपदप्रकरणवृत्ति, श्रीयोगशास्त्रवृत्ति, वगैरह शास्त्रोंमें पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी भाव परम्परानुसार श्रावकके सामायिकमें पहिले करेमिभन्ते पीछे इरियावही करना कहा है, जिसको निषेध करने वाले, और (तीसरा) श्रीपञ्चाशकजीमें सर्वतीर्थङ्करमहाराजोंसम्बंधी सामान्यताके पाठका तात्पर्यार्थको समजे बिना उस सामान्यताके पाठको आगेकरके, फिर-वस्तु, स्थान, आश्चर्यके, बहाने श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने एक श्रीवर्द्धमान स्वामी संबन्धी खास विशेषताकेपाठमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंका कथन कियाहुआ होनेपरभी इसकानिषेध करनेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर नवीनछठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेकाजूठा दोष लगाने वाले, इन उपरोक्त विषयों सम्बंधी उन शास्त्रोंके रहस्यको न जाननेवाले अज्ञानी उत्सूत्र भाषण करके श्रीजिनाज्ञाकीविराधनाकरतेहुए कुयुक्तियोंके खोटे आलम्बनोंसे भद्रजीवोंको उन्मार्गके मिथ्यात्वमें गेरने वाले बनते हैं तथा उपरोक्त बातों संबन्धी उपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंको ऊपरकी बातोंके निषेध करने वालोंके देखनेमें और सुननेमें भी नहीं आये होंगें ऐसा समझना चाहिये सोतो निष्पक्षपात पूर्वक विवेक बुद्धिसे इस ग्रन्थको पूरा बांचने वाले आत्मार्थी सत्यग्राही तत्वज्ञ जन अच्छी तरहसे समझ लेंगे, तिसपर भी उपरोक्त बातों सम्बन्धी किसीके दिलमें अपने माने मंतव्य मुजब साबुत करनेकी बहादुरीकी होंस होवे तो अन्यान्य विषयोंकी आडलेनेका और ढूंढक तेरहपंथियों जैसी रांड़ नपुतीकी तरह व्यर्थ शिरपची कर्मबंधकी लड़ाइका कारण न करते, झूठे पक्षका अभिमानको छोड़कर सत्य बातको ग्रहण करनेकी अभिलाषा धारण करके, मेरेसे वर्तमानिक छापों

द्वारा, या-पत्र व्यवहार द्वारा, वा-बड़े शहरमें सुप्रसिद्ध अन्य मध्यस्थ पण्डितोंके समक्ष धर्मशास्त्रोंके और सरकारी न्यायालयके नियमों मुजब वादानुवाद करके सत्यासत्यके निर्णय करनेको सामने आवे, नहीं तो अंधपरंपराके झूठे कदाग्रहके हठवादको छोड़कर शास्त्रानुसार सत्यबात ग्रहण करें और दूसरोंको भी ग्रहण करावे जिससे वर्तमानिक विसंवादसे जूदी जूदी प्ररूपणाका कदाग्रहको देखकर भद्रजीव भ्रममें पड़कर श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करते हुए मिथ्यात्वमें गिरते हैं और आपसका विरोधसे कर्म बन्धनके हेतु, शासन्नोन्नतिके कार्यों में विघ्न और अन्यमतियोंमें हास्यका कारण वगैरह बड़े बड़े भयंकर नुकशान हो रहे हैं उसके निवारणका अनंत लाभको प्राप्त करे यही अपने और दूसरोंके श्रेयका कारण है।

शंका—अजी आपने ऊपरमें—छ कल्याणक, अधिक मास, और सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीका निषेध करने वाले श्रीतपगच्छके वर्तमानिक समुदायके, श्रीकल्पसूत्र श्रीआवश्यक चूर्णि वगैरह शास्त्रपाठोंको देखनेमें और सुननेमें भी नहीं आनेका लिखा, तथा-ऊपरकी टीकाके पाठमें भी "लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे न व्रजति याति" ऐसा कहके बड़े बड़े विद्वान् चैत्यवासी आचार्यों के-षष्ठ कल्याणक, चैत्यविधि तथा अधिकमास और साधुकी शुद्धक्रिया व्यवहार सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रोंके प्रगट पाठोंको देखनेमें आना तो दूर रहा परन्तु सुननेमें भी नहीं आये, ऐसा कहा सो कैसे मानाजावे क्योंकि श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रका पाठतो श्रीतपगच्छ वाले भी प्राय सब कोई यतिसाधु वगैरह हरवर्ष श्रीपर्युषणापर्वमें वांचते हैं तथा सामायिक सम्बन्धी और अधिकमास सम्बन्धी भी श्रीआवश्यक चूर्णि

वगैरह शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध हैं और चैत्यवासी लोग भी श्रीकल्पसूत्रको तो पर्वमें वांचते थे तथा कितनेही विद्वान् चैत्यवासी आचार्यादि अन्य भी जैनशास्त्रोंके तो पूरे पूरे ज्ञाता सुननेमें आते हैं इसलिये आपका और टीकाकारका उपरोक्त लिखना मिथ्या मालूम होता है।

समाधान—भोदेवानुप्रिय ? अतीव गहनाशययुक्त नयगर्भित अपेक्षा संबंधी श्रीजैनप्रवचनकी शैलीको गुरु गम्यतासे या विवेक बुद्धिसे जाने बिना, उपरके मेरे लेखका तथा टीकाकारके वाक्यका अभिप्रायको समझे बिना शङ्का करके उपरके दोनों लेखोंको अपनी अज्ञानतासे मिथ्या कह दिये परन्तु ऊपरके दोनों लेख सत्य होनेसे मिथ्या नहीं हो सकते हैं क्योंकि देखो, जैसे–श्रीवीरविजयजीने श्रीसिद्धाचलजीके स्तवनमें "कोडिसहस भवपातिक त्रूटे शेत्रुंजय साहामो डग भरिये, विमल गिरि जात्रा नवाणु करिये" तथा "पापी अभव्य नजरे न देखे, हिंसक पण उद्धरिये, विमल गिरि जात्रा नवाणु करिये" सो इन दोनों गाथाओंमें श्रीसिद्धाचल जीके सामने जाने वालेके हजारकोडो भवोंके पाप कटते हैं और पापात्माप्राणी तथा अभव्य प्राणी इस तीर्थको नजर (आंख) सेभी नहीं देखसके, इस तरह कथन किया परन्तु वहां तो श्रीपालीताणादिमें रहनेवाले भाट तथा डोली वाले वगैरह आजीविकादि अपने इस लोकके स्वार्थकेलिये (तीर्थकी आशातनासे दीर्घ संसारका कारण करते हुए भी) श्रीसिद्धाचलजीके पहाड़ ऊपर वहुत आदमियोंको जाते हुए अपने सब कोई प्रत्यक्षपने देखते हैं तो क्या श्रीवीरविजयजीके कहने मुजब उनलोगोंके हजारकोडी भवोंके पापकटनेका आपलोग मानोंगे सोतो नहीं, और इस तीर्थके आसपासके ग्राम नगरोंमें रहनेवाले कसाई मलेच्छादि सभी हिंसक पापी जीव, इस तीर्थको अपनी

नजरो (आंखो) से प्रत्यक्षपने देखते हैं तथा घास काष्टादि-लानेको खास पहाडपर भी जाते है तो क्या श्रीवीरविजयजीके उपरोक्त स्तवनमें कथन किये हुए वाक्यको आपलोग झूठा मानोगे सोभी नही, किन्तु यहा तो भावसहितयात्रा करनेके लिये गिरिराज तरफ चलनेवालेके हजारक्रोडी भवोके पापकटने सम्बन्धी तथा अन्तरके ज्ञानचक्षुसे पापी और अभव्य इस तीर्थको न देखसके, याने-भाव सहित दर्शन नही करे। ऐसा तात्पर्यार्थ उपरके स्तवन बनानेवालेका समझना चाहिये, तैसेही उपरोक्त टीकाकारके वाक्यमें तथा मेरे लेखमें भी उपरोक्त बातो सम्बन्धी उपरोक्तादि शास्त्रपाठोके सम्बन्धमें गुरुगम्यताका अनुभवकी विवेक बुद्धिसे उन शास्त्रकारोके मुख्य तात्पर्यार्थके रहस्यको भाव पूर्वक समझनेका समझना चाहिये, नतु-उपयोग शुन्यताकी अज्ञानता पूर्वक द्रव्यसे अक्षरमात्र वाचने वालों सम्बन्धी क्योंकि द्रव्यसे अक्षरमात्र तो छ कल्याणक चैत्यकी विधि सामायिकमें प्रथम करेमिभते पीछे इरियावही और अधिक मास गिनतीमें प्रमाण करने वगैरह बातो सम्बन्धी, श्रीकल्पसूत्र श्रीचन्द्र प्रज्ञप्ति श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति श्रीनिशीथचूर्णि श्रीआवश्यकचूर्णि वगैरह शास्त्रोंके पाठोको वाचने वाले सुनने वाले वे चैत्यवासी लोग थे परन्तु भावसे उपयोग पूर्वक वाचकर उनके भावार्थको ग्रहण करके उसी मुजब श्रद्धासे वर्ताव करने वाले नही थे, वैसेही वोही बात वर्तमानकालमें श्रीतपगच्छकी कितनीक कदाग्रही समुदायमें देखनेमें आती है क्योंकि ये लोग भी द्रव्यसे तो "तेणंकालेण तेण समयेण समणे भगव महावीरे पच हत्थुत्तरे हुत्था, साइणा परिनिव्वुडे" इस तरह श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणको सम्बन्धी श्रीकल्पसूत्रके खास मूल पाठको हरवर्ष पर्युषणापर्वमें वाचते है तथा श्रीनिशीथचूर्णि श्रीआवश्यकचूर्णि वगैरहके

शास्त्रपाठोंको (कालचूला रूप अधिकमास गिनतीमें प्रमाण तथा सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी) बांचते हैं और सुनते भी हैं परन्तु भावसे उपयोग पूर्वक वैसी श्रद्धा करके वैसाही उपदेश, और उसी मूजब वर्त्ताव नहीं करते इस लिये उपरोक्त बातों सम्बन्धी उपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंको देखने बांचने सुनने भी नहीं आये जैसे हैं इसलिये उपरमें मेरे लिखे वाक्य तथा टीकाकारके कथन किये हुए वाक्य सत्य है उससे अपनी अज्ञानतासे उसके रहस्यको समझे बिना किसीके कहनेसे मिथ्या नहीं हो सकते हैं

और कितनेही ढूंढिये तथा तेरापन्थी लोग भी उपयोग सून्य द्रव्यसे तो श्रीरायप्रशेणी श्रीजीवाभिगमजी श्रीज्ञाताजी श्रीभगवतीजी वगैरह खास मूल सूत्रोंके पाठोंके अक्षरकों तो बांचते हैं तथा सुनते हैं और लोगोंको भी सुनाते हैं उसमें श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाओंको श्रीजिनसमान कथन करी है तथा उसको वंदन पूजन करना कहा है और उसके वन्दन पूजनके प्रत्यक्ष प्रमाण भी उन सूत्रोंमें मौजूद है सोई सूत्र पाठ वे ढूंढिये और तेरापंथी लोगभी बांचते हैं तिसपरभी उन ढूंढिये, तेरेपन्थियोंकी उस बातमें भावसे शुद्धश्रद्धा और प्ररूपणा नहीं किन्तु विशेष मिथ्यात्वके उदयसे कुयुक्तियोके झूठे आलम्बनोंसे सूत्र पाठोंकों उत्थापन करके और उसका उलटा मन कल्पनाका झूठा अर्थ भद्रजीवोंको सुनाते हैं तथा द्रव्यसे साधुपनेकी श्रावकपनेकी प्रतिक्रमण, पडिलेहणा, तपश्चर्यादि भी करके अपनेमें जैनीपना मानते हैं परन्तुं श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके आगमोंको तथा उनकी व्याख्याओंको और पूर्वाचार्यों को उत्थापते हुए उन्होंकी और श्रीजिन प्रतिमाजीकी निन्दा करते हुए शास्त्र मर्यादासे विरुद्ध मन मानी बाल क्रिया अज्ञान कष्ट करते हैं इसलिये

उन्होंको श्रीजैनशास्त्रोके नही जानने वाले अज्ञानी और जैनाभास कहते है परन्तु उन्होको अपने लोग उन शास्त्रोके ज्ञाता उनके वांचनेवाले और जैनीपनेमें नहीं गिनते हैं, सो इसीमुजब निन्हव भी हृदयसे भावपूर्वक साधुपनेको शास्त्रानुसार सब क्रिया करताहै तथा शास्त्रोंको वाचनेवाला उन शास्त्रोंके ज्ञाता और पूर्ण वैराग्यमय शास्त्रोक्त उपदेश भी बहुत लोगोको सुनाताहै तो भी शास्त्रकारोंने उनको असाधु अज्ञानी मिथ्यात्वी कहके उनका उपदेश सुननेको मनाई करी और उनको वदन पूजन करना तो क्या परन्तु उनका मुह देखना दर्शन मात्रभी वर्जन किया, है उसी तरहसे ऊपरके लेखमें, मैने तथा टीका कारने जो वाक्य कथन किये हैं सो भाव सहित उसी मुजब श्रद्धा प्ररूपणा वर्ताव नही करने वालों सबन्धी जानने चाहिये परन्तु द्रव्यसे विनाश्रद्धाके अक्षर मात्रको बाचने वालों सम्बन्धी नही इस बातको विशेषतासे तों विवेकी पाठक गण स्वय विचार लेवेंगे।

और भी छ कल्याणक निषेध करनेके लिये न्यायांभोनिधिजीने अपने बनाये "जैन तत्वादर्श"के १२ वें परिच्छेदमें अपनी गुरुआवलीके सबन्धमें मिथ्यात्वके उदयसे भद्रजीवोको भरमानेके लिये मायावृत्ति पूर्वक प्रत्यक्ष मिथ्या गप्प लिखा है उसका भी अब यहां इस अवसर पर निर्णय करना उचित समझ कर करता हू सो प्रथम बारका छपा हिन्दी "जैन तत्वादर्श"के पृष्ट ५७३ की पक्ति ८ से ११ तक ऐसा लिखा है "विक्रमसे (११३५) वर्ष पीछे, कोई कहता है (११३९) वर्ष पीछे नवांग वृत्ति करने वाला अभयदेवसूरि स्वर्गवास हुए तथा कुर्चपुर गच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिने चित्रकूटमें श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे" न्यायाभोनिधिजीके इस ऊपरके अज्ञानता वाले मायाचारीके प्रत्यक्ष

मिथ्या लेखपर प्रथम तो मेरेको इतनाही कहना है कि न्यायांभोनिधिजीने अपनी गुरुआवलीके सम्बंधमें श्रीसिद्ध-सेनदिवाकरजी वगैरह प्रभावक पुरुषोंका कथन करनेमें उन्होंके गच्छका और गुरुका नाम खुलासा लिखा है तैसेही श्रीनवांगी वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीअभयदेवसूरिजीके कथन करनेमें भी इन महाराजके गुरुका और गच्छका नाम भी अवश्य लिखना उचित था, सो न लिखा यह तो प्रगटही मायाचारीका कारण है क्योंकि यह महाराज श्रीखरतर गच्छमें हुए हें, सो अणहिलपुर पट्टणमें श्रीदुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजको खरतर विरुद दिया उसदिनसे इन महाराजकी समुदायवाले खरतर गच्छके कहलाये। सो इनमहाराजकेही शिष्य श्रीनवांगीवृत्तिकार श्रीअभय देवसूरिजी थे परन्तु इनमहाराजके वड़ेगुरुभाई श्रीजिनचन्द्र सूरिजी थे सो उन्होंको श्रीजिनेस्वरसूरिजीके पाटपर विराजमान किये थे और श्रीजिनचन्द्रसूरिजीके पाटपर यह श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज विराजमान हुए थे, और न्यायांभोनिधिजीनेइसी जैनतत्वादर्शके पृष्ट ५७४ में खरतर गच्छसे द्वेषकरके प्रत्यक्षमिथ्या सं० १२०४ में खरतर उत्पत्ति लिखाहै, इसलिये अपने इस मायाचरीके मिथ्या लेखकी पोल न खुलनेके लिये श्रीअभयदेवसूरिजीको खरतरगच्छके लिखते न्यांभोनिधिजीको लज्जा आई होगी इससे इन महाराजके गच्छका नाम छिपा दिया सो यह मायाचारीके सिवाय और क्या होगा इसको विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेगें।

और श्रीजिनेश्वरसूरिजीने श्रीदुर्लभराजाकी पाठांतरे श्री भीमराजाकी राजसभामें चैत्यवासियोंको धर्मवादमें जित लिये, आप विशेष सच्चे (अतिशय खरे) रहे उससे राजाने खरतर बिरुद दिया है सो इन महाराजके पांचवो पिढो (पट्ट)

पर इनही श्रीखरतर गच्छमें श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हुए हैं इसलिये स० १२०४ में इन महाराजसे खरतर उत्पत्तिका लिखना न्यायांभोनिधिजीका महा मिथ्या है इस बातमें सब शङ्काओंका निवारण पूर्वक शास्त्र प्रमाणों सहित विस्तारसे निर्णय "आत्मभ्रमोच्छेदन भानु" नामा ग्रन्थमें अच्छी तरहसे छप गया है इसलिये यहां पर विशेष लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तोभी इसका सक्षेपसे खुलासा आगे लिखा जावेगा,

और न्यायांभोनिधिजीने श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके ऊपर श्रीवीरप्रभुके षट् कल्याणक प्ररूपणका दोष लगाया सोतो न्यायांभोनिधिजीके मिथ्यात्वकी भ्रांतिका भेद पाठकगण उपरोक्त लेखसे स्वयं समझ लेवेंगे, परन्तु श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्चपुरीयगच्छके लिखे सोतो न्यायाभोनिधिजीनेखास अपने नामको ही लजाया है और अपने गुरु आवलीके जैसी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध मर्यादाकी गपोल खीचड़ीका बर्तावमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीको भी ठहराकर श्रीखरतर गच्छमें भी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध मर्यादा स्थापन करनेका न्यायाभोनिधिजीने चाहा सो भी बड़ी भूल करी क्योंकि श्रीजैन शास्त्रोंकी मर्यादानुसार तो किसी भी गच्छका कोई भी शिथिलाचारीको अपने गच्छमें क्रियापात्र शुद्ध संयमीका योग न मिले और उसके क्रिया उद्धार करके शुद्ध संयमसे अपनी आत्म कल्याणकी पूर्ण अभिलाषा होवे तो किसी भी अन्य गच्छके शुद्ध संयमीके पास क्रिया उद्धार करे, याने उनके पास फिरसे दीक्षा लेकर उनकोही गुरुमाने और उन क्रियाउद्धार करनेवालेकी पाट परम्पराभी पहिलेकेशिथिलाचारि गुरुओंके साथ न मिलाकर जिसके पास क्रिया उद्धार किया होवे उन्होंकी परम्परामें अपनी पाट परम्परा मिलावे सो वोही उनका गच्छ और गुरु परम्परा मानी जावे परन्तु पहि-

लेकेशिथिला चारियोंकी नहीं, जिस पर भी पहिलेके शिथिला चारियोंके साथ अपनी गुरु परम्परा मिलावें तो श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे संसार वृद्धिका कारण है सोही बात खास न्यायांभोनिधिजीने भी तीनथुईवाले श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेन्द्र सूरिजी) को उपदेश करनेके लिये "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तककी प्रस्तावनाके पृष्ट ८ की पंक्ति १३ से पृष्ट १२ की पंक्ति ५ वीं तक लिखी है जिसका उतारा नीचे मुजब है।

रत्नविजयजी बहुल संसारी न हो जावे इसी वास्ते इनोका उद्धार करना चाहीयें, ऐसा उपकार बुद्धिसें हम सब श्रावकोंकों कहने लगेके प्रथम तो यह रत्नविजयजीकों जैनमतके शास्त्रानुसार साधु मानना यह बात सिद्ध नहीं होती है. क्योंके? रतनविजयजी प्रथम परिग्रहधारी महाव्रतरहित यति थे, यह कथा तो सर्व संघमें प्रसिद्ध है, और पीछे निर्ग्रंथ पणा अङ्गीकार करके पञ्चमहाव्रत रूप संयम ग्रहण करा परन्तु किसी संयमी गुरुके पास उपसम्पत् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी नहीं, और पहले तो इनका गुरु प्रमोदविजयजी यती थे, कुछ संयमी नहीं थे यह बात मारवाड़के बहोत श्रावक अच्छी तरेसें जानते है, फेर असंयतीके पास दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा, यह जैनमतके शास्त्रोंसे विरुद्ध है।

इसी वास्ते तो श्रीवज्रस्वामी शाखायां चांद्रकुले कौटिकगणे वृहद्गच्छे तपगच्छालंकार भट्टारक श्रीजगच्चंद्रसूरिजी महाराजे अपणेकों शिथिलाचारी जानके चैत्रवाल गच्छीय श्रीदेवभद्रगणि संयमीके समीप चारित्रोपसंपद् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी, इस हेतुसें तो श्रीजगच्चंद्रसूरिजी महाराजके परम संवेगी श्रीदेवेंद्रसूरिजी शिष्यें श्रीधर्मरत्नग्रंथकी टीकाकी प्रशस्तिमें अपने वृहद् गच्छका नाम छोड़के अपने गुरु श्रीजगच्चंद्रसूरिजीकों चैत्रवाल गच्छीय

लिखा, सो यह पाठ है॥ क्रमशश्चैत्रावालक, गच्छे कविराज-राजिनभसीव॥ श्रीभुवनचन्द्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजा ॥ ४ ॥ तस्य विनेय प्रसमै कमदिर देवभद्रगणि पूज्य ॥ शुचिसमयकनक निकषो, बभूव भूविदितभूरिगुण ॥ ५ ॥ तत्पादपद्मभृंगा, निस्सगाश्चद्गतुङ्गसवेगा ॥ सजनित शुद्धबोधा॰, जगति जगचंद्र-सूरिवरा ॥ ६ ॥ तेषामुभौ विनेयौ, श्रीमान् देवेंद्रसूरिरित्याद्य ॥ श्रीविजयचन्द्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्त्तिभर ॥ ७ ॥ स्वान्ययो रुपकाराय, श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा ॥ धर्मरत्नस्य टीकेयं, सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ८ ॥ इत्यादि इस वास्ते भव भीरु पुरुषांको अभिमान नहीं होता है, तिनकू तो श्रीवीतरागकी आज्ञा आराधनेकी अभिलाषा होती है, तब रत्नविजयजी और धनविजयजी यह दोनु जेकर भवभीरु है, तो इनकोभी किसी सयमी मुनिके पास फेरके चारित्रोपसपत् अर्थात् दीक्षा लेनी चाहिये, क्योंके फेरके दीक्षा लेनेसे एकतो अभिमान दूर होजावेगा, और दूसरा आप साधु नही है तोभी लोकोको हम साधु है ऐसा कहना पडता है यह मिथ्या भाषण रूप दूषणसेंभी बच जायगे, और तीसरा जो कोइ भोले श्रावक इनको साधु करके मानता है, उन श्रावकोंके मिथ्यात्वभी दूर हो जावेगा, इत्यादि बहुत गुण उत्पन्न होवेंगे जेकर रत्नविजय जी धनवीजयजी आत्मार्थी है तो यह हमारा कहना परमो पकाररूप जानके अवश्यही स्वीकार करेंगे।

यह फेरके दीक्षा उपसपत् करनेका जिस माफक जैनशास्त्रोमें जगे जगे लिखे हैं, तिसि माफक हम इनोके हितके वास्ते कुछ आप श्रावकोको कहते है। तथाच जीवानुशासनवृत्तौ श्रीदेवसूरिभि प्रोक्त ॥ यदि पुनर्गच्छो गुरुश्च सर्वथा निजगुण विकलो भवति तत आगमोक्त विधिना त्यजनीय पर कालापेक्षया

योऽन्यो विशिष्टतरस्तस्योपसंपद्ग्राह्या न पुनः स्वतंत्रैः स्थातव्यमिति हृदयं॥ इति श्रीजीवानुशासनवृत्तौ। इसकी भाषा लिखते हैं। जेकर गच्छ और गुरु यह दोनों सर्वथा निजगुण करके विकल होवे तो, आगमोक्त विधि करके त्यागने योग्य है, परं कालकी अपेक्षायें अन्य कोइ विशिष्टतर गुणवान संयमी होवे, तिस समीपें चारित्र उपसंपत् अर्थात् पुनर्दीक्षा ग्रहण करनी परन्तु उपसम्पदाके लीया विना स्वतंत्र अर्थात् गुरुके विना रहणा नहीं इस कहनेका तात्पर्यार्थ यह है के जो कोई शिथिलाचारी असंयमी क्रिया उद्धार करे सो अवश्यमेव संयमी गुरुके पास फेरके दीक्षा लेवे। इस हेतुसें रत्नविजयजी और धनविजयजीकों उचित है के प्रथम किसी संयमी गुरुके पास दीक्षा लेकर पीछे क्रिया उद्धार करे तो आगमकी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणसें बच जावे और इनकों साधु माननेवाले श्रावकोंका मिथ्यात्वभी दूर हो जावे, क्योंके असाधुकों साधु मानना यह मिथ्यात्व है और विना चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षाके लीये कदापि जैनमतके शास्त्रमें साधुपणा नहीं माना है।

तथा महानिशीथके तीसरे अध्ययनमें ऐसा पाठ है॥ सत्तट्ठ गुरुपरंपरा कुसीले॥ एग दु ति परंपरा कुसीले॥ इस पाठका हमारे पूर्वाचार्योंने ऐसा अर्थ करा है, इहां दो विकल्प कथन करनेसें ऐसा मालुम होता है के एक दो तीन गुरु परंपरा तक कुशील शिथिलाचारीके हूएभी साधु समाचारी सर्वथा उच्छिन्न नहीं होती है, तिस वास्ते जेकर कोइ क्रिया उद्धार करे तदा अन्य संभोगी साधुके पाससें चारित्र उपसंपदा विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार हो शक्ता है, और चोथी पेढीसें लेकर उपरांत जो शिथिलाचारी क्रिया उद्धार करे तो अवश्यमेव चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षा लेकेही क्रिया उद्धार करे, अन्यथा नही।

अब जेकर प्रमोद विजयजीके गुरुभी संयमी होते तब तो रत्नविजयजी विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार करते तोभी, यथार्थ होता परन्तु रत्नविजयजीको गुरुपरंपरा तो बहु पेढीयोसें संयमरहित थी इस वास्ते जेकर रत्नविजयजी आत्महितार्थी होवे तो, इनको पक्षपात छोडके अवश्यमेव किसी संयमी गुरु समीपे दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा चाहिये।

न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेखसे अच्छी तरहसे सिद्ध हो चुका; कि—शिथिलाचारी जिसके पास दूसरी वेर दीक्षा लेवे उसकी ही परंपरामें वो गिना जावे-नतु पहिलेकी, बस। इसीके अनुसार श्रीजिनवल्लभसूरिजी पहिले वाचनाचार्य गणी पदमें कुर्चपुरीय गच्छके शिथिलाचारी द्रव्यलिंगि चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरि नामा आचार्यके शिष्यथे सो उन चैत्यवासी गुरुने इनको न्याय, व्याकरण, छंद, काव्य, ज्योतिष, वगैरह बहुत शास्त्रोका अध्ययन कराकर अच्छी बुद्धि और उत्तम लक्षणो वाले भविष्यमे शासन प्रभावक जानकरके श्रीजिनवल्लभजीको वाचनाचार्य गणिकी पदवी देकर सुप्रसिद्ध श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीको जैन शास्त्रोके ज्ञाता समझके इन महाराजके पास जैनसूत्रार्थोंकी गुरुगम्यतासे धारणा करनेके लिये वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणी जीको भेजे सो श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने भी इनको उत्तम बुद्धिवाले योग्य पुरुष जानकर थोडेही कालमें श्रीजैन शास्त्रोका अध्ययन करा दिया और श्रीजिनाज्ञाभगसे संसार वढानेवाला चैत्यवास (शिथिलाचारको) छोडकर क्रिया उद्धारसे शुद्ध संयमपूर्वक आत्मकल्याण करनेका उपदेश भी दिया सो उपदेश श्रीजिनवल्लभगणीजीने मान्यकिया और अपने चैत्यवासी गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीअभयदेवसूरिजीमहाराज के पास उपसम्पत् याने क्रिया उद्धार किया फिरसे दीक्षाली

और इनही गुरुमहाराजके चरणकमलकी सेवा करते हुए महाराज के पासही रहने लगे पीछे कालान्तरमें श्रीअभयदेवसूरिजीका देवलोक हुए बाद, संसारका कारणभूत उत्सूत्ररूप चैत्यवासको अविधिका निवारण पूर्वक श्रीजिनवल्लभगणीजीने देशदेशान्तरोमें विहार करके बहुत भव्यजीवोंका उपकार किया और अनुक्रमसे विहार करते हुए मेवाड चीतोड़नगरमें पधारे सो वहां भी चैत्य वासियोंकी उत्सूत्रता और अविधिकी बातोंका निषेध पूर्वक श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्र प्रमाण सहित विधि मार्गकी सत्य बातोंको सबके सामने भव्य जीवोंको श्रीजिनाज्ञानुसार विधि मार्गकी सत्य बातोंकी प्राप्ति होनेके लिये प्रगट (प्रकाशित) करी सोतो हमने पहलेही लिख दिया है और पीछे चीतोड़ नगरमें ही इन महाराजको (श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पहिलेके कथनानुसार श्रीप्रशन्नचन्द्राचार्यजीके कहने मुजब) श्रीदेवभद्राचार्यजीने श्रीजिनवल्लभगणीजीको सूरि पद देकर श्री अभयदेवसूरिजीके पट्टपर स्थापित किये और श्रीजिनवल्लभ सूरिजी नाम रक्खा इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजके पट्टधर शिष्य श्रीखरतरगच्छमे ठहरे सो यह बात भी श्रीखरतरगच्छकी पट्टावलियोंमें तथा पूर्वाचार्योंके चरित्रोंमें और श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंके बनाये ग्रन्थोंमें तथा अन्य भी इतिहासिक ग्रन्थ वगैरह बहुत जगहोंपर प्रसिद्ध है तिसपर भी न्यायांभोनिधिजी हो करके भी अपने गच्छकदाग्रहके मिथ्याहठवाद रूप अभिनिवेशिकसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्चं-पुरीय गच्छके चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य लिख दिये सो श्रीजिनाज्ञाका भङ्ग कारक प्रत्यक्षपने जैन शास्त्रोंकी मर्यादा विरुद्ध और सर्वथा मिथ्या है इस बातको विशेषतासे विवेकी तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं—

और न्यायांभोनिधिजी श्रीआत्मारामजीके ऊपरके लेखसे यह भी सुस्पष्टता पूर्वक अच्छी तरहसे प्रगटपने सिद्ध होता है कि श्रीजगच्चद्रसूरिजीके ३।४ पेढ़ियोंके पहलेसेही अपने वडगच्छकी परम्परामें शिथिलाचार चला आता होगा इसलिये श्रीजगच्चद्रसूरिजी जैसे सुप्रसिद्ध विवेकी विद्वन् आत्म कल्याण और श्रीजिनाज्ञाके अभिलाषी महाराजने अपने वडगच्छके तथा अपने शिथिला चारी पूर्वजोंके (श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध) दृष्टिरागके पक्षपातको न रखके अपने शिथिलाचारके आचार्य पदके अभिमानको भी छोड़कर श्रीजिनाज्ञानुसार श्रीचैत्रवालगच्छके वैराग्य समुद्र शुद्ध क्रियापात्र शुद्ध संयमी श्रीदेवभद्रजी उपाध्यायजीके पास क्रिया उद्धार किया, याने—फिरसे दूसरी वेर दीक्षा धारण करी और इन्हीं महाराजको गुरु मान्य करके श्रीचैत्रवाल गच्छकी इन्होंके शुद्ध संयमियोंकी परम्परामे मिल गये इसलिये इन्ही श्रीजगत् चन्द्रसूरिजी महाराजके सुप्रसिद्ध विवेकी विद्वान् शिष्य श्रीदेवेन्द्र सूरिजीने अपने गुरुजीकी पहिलेकी शिथिलाचारकी श्री वड़गच्छकी परम्परा न लिखके पीछे दूसरी वारकी शुद्ध संयमियोंकी श्रीचैत्रवालगच्छकी शुद्ध परम्परा श्रीधर्मरत्नप्रकरण की वृत्तिके अन्तमें प्रशस्तिके लेखमें लिखी सो पाठ भी न्यायांभोनिधिजीने अपने ऊपरके लेखमें लिख दिखाया है (और अब तो श्रीधर्मरत्न प्रकरण वृत्ति गुजराती भाषा सहित श्रीपालीताणासे श्रीविद्याप्रसारक मण्डलकी तरफसे छप करके प्रसिद्ध भी होगयी है इसलिये यह ऊपरका पाठ तो प्रसिद्धही है) इसलिये न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेख मुजब तो श्रीजगच्चद्र सूरिजी महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छके मानने तथा इसी गच्छसे उन्होंकी परम्परा भी मिलाना सोही शास्त्र मर्यादा पूर्वक श्रीजिनाज्ञा मुजब परम उचित है सो ऐसे ही करनेसे न्यायांभोनिधिजीको

अपना उपरोक्त 'चतुर्थ स्तुति निर्णय'का लिखा सत्य होसके परन्तु पहिलेके शिथिलाचारियोंकी श्रीवड़गच्छकी परम्परामें मिलाना और इन महराजको श्रीवड़गच्छके मानना सो तो प्रत्यक्षपने सर्वथा प्रकारसे शास्त्र मर्यादासे विपरीत (श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध) ठहरता है और न्यायांभोनिधिजीको उपरोक्त तीनथुई वाले रत्नविजयजी सम्बन्धी हितशिक्षारूप लिखना सब मिथ्या ठहरता है तिसपर भी बड़े ही अफसोसकी बात है, कि—खास आप न्यायांभोनिधिजी इतने बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान् हो करके भी "जैन-तत्वादर्श" वगैरह अपने बनाये ग्रन्थोंमें श्रीजगचंद्रसूरिजीको श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्ध संयमियोंकी परम्परामें लिखने छोड़कर जिनाज्ञा विरुद्ध होके श्रीवड़गच्छकी शिथिलाचारियोंकी परम्परा में लिखे तथा वर्तमानिक श्रीतपगच्छके सब समुदाय वाले भी वैसेही मानते हैं तथा पट्टावलियोंमें और अन्य पुस्तकोंमें भी लिखते हैं सो श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा भङ्ग करनेकी हेतु भूत यह कितनी बड़ी अज्ञानता है ।

और श्रीदेवेंद्रसूरिजी जैसे गीतार्थ महाराजने अपने गुरुजी श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारियोंकी परम्परामें लिखना—श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध जानकर छोड़दिया और श्रीचैत्रवाल-गच्छके शुद्धसंयमियोंकी परम्परामें लिखना श्रीजिनाज्ञानुसार जानकर खुलासा पूर्वक लिखदिया जिसको वर्तमानिक श्रीतपगच्छ के सब समुदाय वाले मान्य न करके इससे विपरीत लिखते हैं याने श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्धसंयमियोंकी श्रीजिनाज्ञानुसार पर-म्परामें लिखना छोड़कर श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारियोंकी आज्ञा विरुद्ध परम्परामें लिखते हैं मानते हैं सो क्या कारण है। क्या श्रीतपगच्छके वर्तमानिक समुदायवालोंको आज्ञानुसार श्रीदेवेंद्र

सूरिजीकी लिखीहुई उपरोक्त बात अच्छी नहीं लगती और यदि अच्छी लगती होवेतो अब भी अपनी भूलको सुधारके श्रीजगत्चन्द्रसूरिजीको आज्ञाविरुद्ध वडगच्छके शिथिलाचारियोकी अशुद्ध परम्परामें लिखना, मानना, छोड़कर आज्ञानुसार चैत्रवालगच्छके शुद्धसयमियोकी शुद्धपरम्परामें लिखना मानना अङ्गिकार करना चाहिये नहीं तो चैत्रवालगच्छके लिखने मानने छोड़कर वड़गच्छकेही लिखोगे तो यह लिखना मानना जिनाज्ञा भङ्गका कारणरूप होनेसे आपलोगोकी वड़गच्छकी परम्परा कदापि शुद्धनहीमानी जा सकती औरअशुद्ध परम्परा श्रीजिनाज्ञाभिलाषी आत्मार्थी निष्पक्षपातियोको छोड़कर शीघ्रतासे श्रीजिनाज्ञामुजब शुद्धपरम्परा मान्यकरनी ही परम उचित है।

और आपलोग त्यागी वैरागी शुद्धसयमी कहलाके भी चैत्रवालगच्छकी त्यागी वैरागी शुद्धसयमियोकी परपरामें श्रीजगचन्द्रसूरिजीको लिखना मानना छोडकर शिथिलाचारियोकी अशुद्ध परपरामें लिखके उसी मुजब मानते हुए इन महाराजको तथा इनमहाराजके पिछाडीके आपके सब पूर्वजोको शिथिलाचारियोके शिष्य बना देते हो तथा आपलोग भी वैसे ही शिथिलाचारियोके शिष्य बन जाते हो सो भी कितनी बडी शर्मकी बात है

और श्रीजगचन्द्र सूरिजी महाराजके पहिलेके गुरुजी दादागुरुजी वगैरह ३ । ४ पेढीके पूर्वजोको सयमी मानकर वडगच्छके ही इन महाराजको लिखते मानते हो वो सो भी नही बनसकता क्योंकि जो इन महाराजके गुरुजी वगैरह ३।४ पेढी वाले जो सयमी होते तो इन महाराजोंको अपने वडगच्छको तथा अपने गुरुजी वगैरहोको छोड़कर अपने शिथिलाचारके आचार्य (सूरि) पदके अभिमानको नरखके श्रीचैत्रवाल

गच्छके श्रीदेवभद्रउपाध्यायजीके पासमें उपसम्पत् याने फिरसे दूसरी वेर दीक्षा लेनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं होती परन्तु अपने गुरुको और गच्छको छोड़कर दूसरे गच्छवालेके पास दूसरी वार दीक्षा लेनी पडी इससे इन महाराजके गुरुजी दादा गुरुजी वगैरह संयमी नहीं थे ऐसा सिद्ध होता है इसलिये इन महाराजको वडगच्छके न मानकर चैत्रवालगच्छके मानने तथा उनसे ही परंपरा मिलाना उचित है, नतु वडगच्छसे।

और इतने पर भी वडगच्छसे परंपरा मिलाना कहोगे तो भी यह मिथ्यात्वका कारण ठहरता है सोही दिखाता हूं कि देखो इन महाराजने दूसरी वेर दीक्षाली उससे यह महाराज शुद्ध संयमी ठहरे सो इन संयमी महाराजको संयमियोंको चैत्र-वालगच्छकी शुद्ध परंपरामें लिखना छोड़कर शिथिलाचारियों की अशुद्धपरंपरामें लिखके उन शिथिलाचारियोंको शुद्धसंयमी अपने पूर्वाचार्य मानलेना सो प्रत्यक्षपने असाधुको साधुमानने रूप मिथ्यात्व आता है इसको निष्पक्षपात पूर्वक विवेक बुद्धिसे खूब विचार लेना चाहिये।

और श्रीजगत्चन्द्रसूरिजी महाराज पहिले मूलमें वडगच्छके थे ऐसा समझकर दूसरी वेर दूसरे गच्छमें दीक्षा लेनेपरभी पहिले की वडगच्छकी परंपरा मिलाना मान्य करते हैं सोभी प्रगटपने लौकिक और लोकोत्तर दोनोंसे विरुद्ध बनता है क्योंकि प्रथम तो लौकिकमें भी जो लडका अपने जन्मदाता माता पिताको छोड़कर दूसरी जगे जिसके गोद जावे उनको माता पीता मानने पड़ते हैं तथा उसीके गौत्र कुलकी परंपरामें गिनाजाता है परन्तु पहिलेके जन्मदाता माता पीताके गौत्र कुलकी परम्परामें वो नहीं गिना जाता यह बात तो जगतमें प्रसिद्ध हैं और इसी तरहसे लोकोत्तरमें श्रीजैनशास्त्रोंमें भी जिसके पास दूसरी वेर

दीक्षालेवे उसीकी परम्परामें वो गिनाजावे, परं-पहिलेकी नहीं, सोतो उपरमें खुलासा पूर्वक लिखा गया है जिसपर भी पहिले की परंपराको ही मान्य रखो तो श्रीबूटेरायजी (श्रीबुद्दिविजय जी) तथा श्रीआत्मारामजी (न्यायांभोनिधिजी) वगैरहोने जो पहिले ढूंढकमतमें दीक्षा लीयी पीछे श्रीतपगच्छमें दूसरी वेर दीक्षा ली है जिन्होंको भी श्रीतपगच्छके न मानके उन्होकी परंपरा भी श्रीतपगच्छमें न मिलाकर ढूंढकमतके साधुओके शिष्य कहा करो तथा उन्ही मुहवधोंकी परंपरामें लिखने चाहिये और वर्तमानिक श्रीआत्मारामजीके समुदाय वाले वगैरहोंको भी श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्यों को अपने पूर्वज न मानकर उन मुहबंधोको अपने पूर्वज पूर्वाचार्य मानने तथा अपनी परपरामें भी लिखनेचाहिये तबतो इन्होंकीतरहसे आपलोगोंकी कल्पना मुजब श्रीजगचद्रसूरिजीमहाराजकोभी वड़गच्छमें लिखना और परपरा मिलाना आप लोगोके बनसकेगा अन्यथा कदापि नहीं।

और भी पहिलेकी अशुद्ध दीक्षाको आगे करके दूसरी वारकी शुद्ध दीक्षाको छोड देने पूर्वक, पञ्जाबी ढूंढक जीवण रामजोके शिष्य न्यायांभोनिधिजी (श्रीमद्विजयानदसूरिजी) ने "जैन तत्वादर्श" वगैरह ग्रन्थ बनाये जिन्होंके शिष्य सप्रदायमें अभी इतने साधु विद्यमान है, ऐसा कहना शास्त्रानुसार बन सकता है तथा यह बात भी सर्व मान्य हो सकती है सो तो नहीं तो फिर श्रीजगत्चद्रसूरिजीकी पहिलेकी शिथिलाचारकी अशुद्दीक्षाको (मूलमें पहिले वडगच्छके थे इसको) आगे करके दूसरीवार चैत्रवालगच्छमें शुद्दीक्षा ली उससे परपरा मिलाना छोड़ करके श्रीवडगच्छसे इन्होंकी परपरा मिलाते हुए श्रीदेवेन्द्र सूरिजी वगैरहको श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारियोके शिष्य होनेका

लिखते हो सो शास्त्रानुसार कैसे बन सकता है तथा सर्व मान्य भी कैसे हो सकेगा इसको दीर्घ दृष्टिसे विचारना चाहिये।

अब श्रीतपगच्छकी सब समुदायवालोंसे मेरा यही कहना है कि यद्यपि श्रीजगतचंद्रसूरिजी पहिले वड़गच्छके थे परन्तु शिथिलाचारको छोड़करके पीछेसे चैत्रवाल गच्छमें दीक्षा ली है। इसलिये यदि आप लोग न्यायानुसार शास्त्रप्रमाण पूर्वक श्रीजिनाज्ञामुजब शुद्धपरंपरा वाले आत्मार्थी बनना चाहते हो तो इनमहाराजकी वड़गच्छसे परंपरा मिलाना छोड़कर चैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलाना उचित है और आजतक अज्ञानतासे चैत्रवाल गच्छसे अपनी परंपरा मिलाना छोड़कर वड़गच्छसे परंपरा मिलाई जिसकी भूलको सुधारना चाहिये, परन्तु गड्डरीय प्रवाहकी तरह अन्धपरंपराकी अज्ञानताके हठवादको ही पकड़के रहना उचित नहीं है, आगे इच्छा आपकी।

तथा और भी यहांपर आपलोगोंको प्रत्यक्ष प्रमाणभी दिखाता हूं कि देखो श्रीवर्द्धमानसूरिजी पहिले श्रीजिनचन्द्रसूरि नामा चैत्यवासी आचार्यके शिष्य थे सोही श्रीवर्द्धमानसूरिजीने अपना शिथिलाचार चैत्यवासको छोड़कर श्रीउद्योतनसूरिजी महाराजके पास दूसरीवार दीक्षा ली इसलिये इनमहाराजको उन चैत्यवासी शिथिलाचारि श्रीजिनचंद्रसूरिजीकी परंपरामें न गिन कर, दूसरी बार दीक्षालेनेके कारण श्रीउद्योतनसूरिजीकोही परंपरामें गिने गये सोतो श्रीखरतरगच्छकी पट्टावलियोंमें और इतिहासिक ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है और श्रीरत्नसागरके दूसरे भाग वगैरहोंमें छपा हुआ भी प्रगट है तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी सम्बन्धी भी ऊपरमें लिखा गया है उसी मुजब आप लोगोंको भी श्रीजगतचन्द्रसूरिजीको चैत्रवाल गच्छकी परंपरामें लिखने चाहिये इतने पर भी आपका कदाग्रह न छुटेगा तो आपकी परंपरा श्रीजि-

नाज्ञाविरुद्ध होनेसे मानने योग्य नहीं है इस बातको निष्पक्ष पाती विवेकी तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते है।

और श्रीजगत्चन्द्रसूरिजीने अपने गच्छको शिथिल जानकर श्रीचैत्रवाल गच्छके श्रीदेवभद्रजी उपाध्यायजीकीसाह्यतासेक्रिया उद्धार किया ऐसा जैनतत्वादर्श वगैरहोमें लिखा है सो भी मायावृत्तिसे मिथ्या है क्योंकि 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' में दूसरी बार फिरसे दीक्षा लेनेका खुलासा लिखा है तथा शिथिलाचार छोड़े तो, दूसरी बार दीक्षा लिये बिना क्रिया उद्धार करना नही बन सकता और जब दूसरी बार दीक्षा लेकर क्रिया उद्धार कियाजावे तो जिसके पास क्रिया उद्धार कियाजावे उनके शिष्य बनकर उनको गुरु माननाही पड़ता है, और जब दूसरी बार दीक्षा ली उनके शिष्य बने उनको गुरु माने, तो फिर उनकी साह्यतासे क्रिया उद्धार किया, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या व्यर्थ ठहरगया इसलिये यदि आप लोग साह्यतासे क्रिया उद्धार करनेके बहानेसे भी बड़गच्छकी परपरा मिलाना ठहराते हो सो भी कदापि नही बन सकता, और जो श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीकी साह्यतासे क्रिया उद्धार करके उनको गुरु न माने होते तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीधर्मरत्न प्रकरणकी वृत्तिके अन्तमें प्रशस्ति के लेखमें श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीको गुरुपनेमें लिखके श्रीचैत्रवाल गच्छसे श्रीजगत्चन्द्रसूरिजीकी तथा अपनी परपरा कदापि न मिलाते और बड़गच्छकीही परपरा लिखते सो न लिखकर बड़गच्छको छोड़ करके चैत्रवाल गच्छसे परपरा मिलाई और आप भी बड़गच्छके न बन कर चैत्रवाल गच्छके बने हैं, तथा वैसे ही श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने भी श्रीवृहत्कल्पवृत्तिके अन्तकी प्रशस्तिके लेखमें लिखकर चैत्रवाल गच्छसे परपरा मिलाईहै और न्यायांभोनिधिजीनेभी 'चतुर्थस्तुति निर्णय'की पुस्तकमें चैत्रवाल

गच्छसे परंपरा मिलाना सिद्ध किया है इसलिये साच्चताका बहाना लेकर वड़गच्छकी परंपरामिलाना यहीभूलहै, उससे साच्चताकाबहाना लेनेकी मिथ्याबातकोछोड़कर सत्यको मान्य करना होश्रेयकारी है इसकोभी विवेकीजनस्वयं विचार करते हैं।

और अब पाठक गणसे मेरा यही कहना है कि श्रीतपगच्छके समुदाय वालोंने अपनी बड़ाई विशेष शोभा होनेके लिये शास्त्रानुसार चैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाना छोड़कर श्रीवड़गच्छके पूर्वाचार्योंको बड़े प्रभावक प्रसिद्ध पुरुष जान कर श्रीजगचन्द्रसूरिजीके तथा इन महाराजके गुरुजी वगैरहके शिथिलाचार, असंयम, अशुद्धपरम्पराका-विचार न करके बड़गच्छ से परंपरा मिलाने लगे, परन्तु जिनाज्ञा भङ्गका भय होता और अन्तरंगमें न्यायानुसार आत्मार्थी पना होतातो चैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाना कदापि न छोड़ते, खैर।

और ऊपरके लेखमें श्रीजगचन्द्रसूरिजीके ३।४ पेढी वाले गुरुजी दादागुरुजी वगैरहोंको मैंने मेरी तरफसे शिथिलाचारी नहीं लिखे किन्तु न्यायांभोनिधिजीके लेखसे ही सिद्धहोते हैं इस लिये इस बातका मुझे कोई दोष नहीं देना इस बातको भी ऊपरके लेखसे विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

बस ? इसी तरहसे न्यायांभोनिधिजीने अन्याय कारक और जिनाज्ञा विरुद्ध वडगच्छसे परंपरा मिलाने रूप गपोलखोचड़ी की बात श्रीखरतरगच्छनेंभी करदेनेकेलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजीको कुर्चपुरीयगच्छके चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य लिख दिये परन्तु ऐसी जिनाज्ञाविरुद्ध वर्तावकी यह बात श्रीखरतरगच्छमें कदापि नहीं चलसकती जिसका विशेष खुलासा ऊपरमें लिखा गया हैं इसलिये श्रीवर्द्धमानसूरिजीको श्रीउद्योतनसूरिजीके शिष्य लिखने मुजब श्रीजिनवल्लभसूरिजीको भी श्रीखरतरगच्छके

सुप्रसिद्ध श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके शिष्य लिखने न्यायाभोनिधिजीको उचित थे सो न लिखकर धर्मसागर जीकी धमंठगाईकी मायाजालमें फसकर व्यर्थही भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका हेतु करके संसार बढनेका कारण किया है जिसको तत्वज्ञजन अच्छी तरहसे विचार सकते हैं।

तथा और भी न्यायाभोनिधिजीकी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वकी मायाचारीका प्रत्यक्ष नमूना पाठकगणको यहां दिखाता हूं कि, देखो न्यायांभोनिधिजीने उपरोक्त चतुर्थ स्तुतिनिर्णयकी पुस्तकके पृष्ठ१०० की पंक्ति १० वीं से पृष्ठ १०१ की पंक्ति १३ तकके लेखमें खासआपनेही श्रीजिनवल्लभसूरिजीको श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके शिष्य लिखे हैं सो लेख नीचे मुजब है।

"नवांगीवृत्तिकार जो श्रीअभयदेवसूरिजी तिनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने रचीहुइ समाचारीका पाठलिखते हैं॥ पुण पणवीसुस्सास, उस्सग्ग करेइ पारए विहिणा॥ तो सयल कुसल किरिया, फलाण सिद्धाण पढइ थयं॥१४॥ अह सुय समिद्धि हेउ, सुयदेवीए करइ उस्सग्ग॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ देइ तिए थुइ॥ १५॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्ग करेइ सुणइ देइ थुई॥ पढिऊण पंचमंगल, मुव विसइ पमज्ज संडासे ॥ १६॥ इत्यादि॥

भाषा॥ श्रीजिनवल्लभसूरि विरचित समाचारिमें प्रथम पडिक्कमणेमें चार थुइसे चैत्यवंदना करनी पीछे प्रतिक्रमणेके अवसानमें श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनोंकी थुइयां कहनी, यह कथन पंदरावी अरु सोलावी गाथामें करा है, जब श्री अभयदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारकके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीकी बनवाइ समाचारीमें पूर्वोक्त लेख है तब तो श्रीअभयदेवसूरिजीमें तथा आगु तिनकी गुरु

परंपरासें चार थुइकी चैत्य वंदना और श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी थुइ कहनी निश्चयही सिद्ध होती है, तो फेर इसमें कुछ भी बाद विवादका झगडा रह्या नहीं, इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धनविजयजी तीन थुइका कदाग्रह छोड देवे, तो हम इनोंकों अल्पकर्मी मानेंगे ॥"

देखिये ऊपरके लेखमें श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेंद्रसूरिजी) के और धनविजयजीके तीन थुइके नवीन मतभेदके प्रचलीत कदाग्रहको हटानेके लिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी कृत सामाचारीका पाठ लिख दिखाया तथा इन महाराजको श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजकी परंपरामें लिखके दिखाये तो फिर इन्ही महाराजको कुर्च्चपुरीय गच्छके चैत्यवासीके शिष्य लिखके भद्रजीवोंको मिथ्यात्वके भरममें गेरनेका काम करने वाले को आत्मार्थी सम्यक्त्वी कैसे माने जावे सो भी तत्वज्ञ जन विचार सकते हैं।

और जब खास न्यायांभोनिधिजीने ही श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजीके शिष्य लिखके उनकी ही परम्परामें गिने सो न्यायांभोनिधिजीका लेख हमने ऊपर लिख दिखाया है तो फिर इसी मुजब श्रीजग-चन्द्र सूरिजीको भी श्रीचैत्रवाल गच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्याय जीके शिष्य लिखके उनसे इनकी परम्परा मिलानेमें न मालूम न्यायांभोनिधिजीको किस कारणसे लज्जा होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने इसमें लज्जाका तो कोई कारण नहीं है, क्योंकि श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य श्रीजगचन्द्र सूरिजीको लिखके श्रीचैत्रवाल गच्छसे परंपरा मिलानेमें तो श्री जिनाज्ञाकी आराधना रूप महान् लाभका कारण था सो न किया। इससे यदि इनको श्रीचैत्रवाल गच्छकी श्रीमहावीर स्वामी

की परम्परानुसार अनुक्रमसे श्रीजगचन्द्र सूरिजी तक पट्टावली मिलाने संबधी कोई पट्टावली या पुस्तक नही मिल सकी होवे तो उससे विना परम्पराके रहनेके भयसे श्रीचैत्रवालगच्छसे परम्परा मिलाना छोड़कर श्रीवडगच्छसे परम्परा मिलाकर श्रीमहावीर स्वामीके परम्परा वाले बननेके लिये "श्रीजग-चद्रसूरिजी पहिले वड़गच्छके थे" ऐसा आलम्बन लेना मान्य किया होवे तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने परन्तु तो भी इसमे श्री जिनाज्ञाकी विराधनाका कारण होनेसे ऐसा आलंबन लेना उचित नही है क्योंकि श्रीचैत्रवाल गच्छ भी तो श्रीमहावीर स्वामीकी परम्परा वाला है इस लिये ऊपरका आलम्बनको छोड़कर उसही गच्छसे परम्परा मिलाना उचित है, जिसमे काल दोषादि कारणोसे पूरी पट्टा-वली नही भी मिल सके तो भी कोई हरजा नही है क्योकि श्री महावीर स्वामीके शासनमें अनुक्रमसे परम्परागत कितने ही नैमित्त कारणोसे कितने ही गच्छ, कुल, शाखा, वगैरह अनेक हुए थे उन्होमेंसे किसीके विशेष ज्यादा समुदाय होगया, किसीके कम, तथा किसीकी बहुत पीढियो तक परम्परा चली किसोकी थोड़ी पेढ़ियो तक ही, और कितने ही विच्छेद भी होगये और कितनोंके यद्यपि परम्परासे पूर्वाचार्य होते आये तो भी काल दोषादि कारणोसे पट्टावली नही मिलती और कितनोके बीचमें से त्रुटक पट्टावली मिलती है, कितनोके पाठांतरसे मतभेदकी मिलती है और किसीके बिलकुल नही मिलती तो क्या वे सयमी गण श्रीमहावीर स्वामीकी परम्परा वाले नही गिने जावेंगे सो तो कदापि नही किन्तु अवश्यमेव गिने जावेंगे, इस लिये यदि श्रीचैत्रवाल गच्छकी पूरी पट्टावली नही मिल सके तो भी कोई नुकसानकी बात नहीं परन्तु

जितनी मिल सके उतनीहीमें भी श्रीजगचन्द्रसूरिजीसे लेके वर्तमानिक श्रीतपगच्छके समुदाय तक परम्परा मिलाना शास्त्रानुसार श्रीजिनाज्ञा मुजब है परन्तु पूरी पट्टावलीके अभावसे परम्परागत शुद्ध संयमियोंकी पट्टावली छोड़करके प्रत्यक्षपने शास्त्र मर्यादा और लौकिक विरुद्ध हो करके पूरी पट्टावली मिलानेके लिये झूठे आलम्बनसे असंयमियोंकी अशुद्ध परम्परामें मिलाना उचित नहीं है तिस पर भी श्रीजिनाज्ञाकी विराधना रूप वड़गच्छसे परम्परा मिलाकर भद्रजीवोंके आगे आप वड़गच्छके अधिपति बनना चाहते हो सो भी नहीं बन सकते क्योंकि आजतक परम्परागतसे भी वड़गच्छके-आचार्यादिकोंका और श्रावकोंका समुदाय विद्यमान कालमें भी मौजूद है इसलिये वड़गच्छसे आप अपनी परम्परा मिलावो तो भी वड़गच्छके अधिपति नहीं बन सकते किन्तु अपनी कल्पनाके लेखसे भी आप लोग श्रीजिनाज्ञाकी विराधना करके भी शाखारूप बनो तो आपकी खुशी इसमें हमारा कोई नुकशान नहीं परन्तु शास्त्रप्रमाणानुसार श्रीचैत्रवाल गच्छसे अपनी परम्परा मिलाते तो संयमियोंकी शुद्धपरम्परा वाले ठहर सकते अन्यथा नहीं आगे इच्छा आपकी।

और हम लोग तो न्यायांभोनिधिजीके उपरोक्त लेख मुजब, जिनाज्ञानुसार तथा श्रीदेवेन्द्रसूरिजीके श्रीधर्मरत्न प्रकरणके पाठसे और श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्प वृत्तिके अन्तमें प्रशस्तिके पाठसे श्रीजगचन्द्रसूरिजीको दूसरी बार शुद्ध संयम ग्रहण करने वाले श्रीचैत्रवाल गच्छके मानते हैं तथा इसी गच्छसे उनकी शुद्ध परंपरा भी मानते है और वोही परम्परा आप लोगोंकी भी ठहरती है नतु वड़गच्छकी सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाके पक्षपात दृष्टिरागसे अन्धपरम्पराके आग्रहको छोड़ करके तत्व दृष्टिसे अच्छी तरहसे विचार लेना चाहिये।

अब यहां पर पाठक गणको विशेष निःसंदेह होनेके लिये श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्तिकी प्रशस्तिका पाठ इस जगह दिखाता हूं सो नीचे मुजब हैं।

सौवर्णाविविधार्थ रत्नकलिता एतेषड्डुद्देशका ॥ श्रीकल्पेर्थनिधौ मता'मुकलशा दौर्गत्यदुःखापहे ॥ दृष्ट्वाचूर्णिसुबीजकाक्षरतति कुर्थ्याथगुर्वाज्ञया ॥ खानखाननमीमयास्वपरयो र्थस्फुटार्थीकृता ॥१॥ श्रीकल्पसूत्रममृतविबुधोपयोगयोग्य ॥ जरामरणदारुणदुःख-हारि॥ योनोद्धृतमतिमथार्मथितान्श्रुताब्धे ।श्रीभद्रबाहूगुरवेप्र-णतोऽस्मितस्मै ॥२॥ येनेद कल्पसूत्रं कमलमुकलवत् कोमलमजुला-भिःगोभिर्दोषापहाभि स्फुट विषय विभागस्यसंदर्शिकाभि ॥वत्फु-ल्लोद्देशपत्र सुरसपरिमलोद्गारसार वितेने । तनि'सबध बंधुनुतमुनि मधुपा भास्कर भाष्यकार ॥ ३ ॥ श्रीकल्पध्ययनेस्मिन्नति गभीरार्थ भाष्यपरिकलिते।विषमपदे विवरणकृते श्रीचूर्णिकृते नम कृतिने॥४॥ श्रुतदेवताप्रसादादिदमध्ययन विवृण्वता कुशल ॥ यदवापिमया तेन प्राप्नुयांबोधिमहममल ॥ ५ ॥ गमनयगभीरनीरश्चित्रोत्सर्गा पवादवादोर्मि ॥युक्तिशतरत्नरम्यो जैनागमजलनिधिर्जयति ॥६॥श्री जैनशासन नभस्तलतिग्मरश्मि, श्रीसद्मचान्द्रकुलपद्मविकाशका-रि।स्वज्योतिरावृतदिगम्बरडंबरोऽभूत्, श्रीमान्धनेश्वरगुरु प्रथित पृथव्यां॥७॥श्रीमच्चैत्रपुरैकमडनमहावीरप्रतिष्ठाकृत स्तस्माच्चित्रपुर-प्रबोधतरणि श्रीचैत्रगच्छोऽजनि तत्रश्रीभुवनेन्द्रसूरिसुगुरुर्भूषणभा सुर ज्योतिसद्गुणरत्नरोहणगिरि कालक्रमेणाभवत् ॥८॥ तत्पादां-बुजमडनसमभवत्पक्षद्वयीशुद्धिमा न्नीरक्षीर सदृक्षदूषणगुणत्याग ग्रहैकव्रत ॥ कालुष्यचजडोद्भव परिहरन्दूरेणसन्मानस॥ स्यायीरा जमरालवद्गणिवर श्रीदेवभद्रप्रभु ॥ ९ ॥ तस्य शिष्या त्रयस्तत्पद सरसिरुहोत्सगशृंगारभृङ्गा॥ विध्वस्तानगमगा सुविहित विहितो तुगरगाग्रभृत्‌ ॥तत्राद्य सच्चारित्रानुमतिकृतमति श्रीजगच्चद्रसूरि ।

श्रीमद्देवेंद्रसूरिः सरल तरल सच्चित्तवृत्तिर्द्वितीयः ॥ १० ॥ तृतीय शिष्यः श्रुतवारिवार्द्धयः। परीषहाक्षोभ्यमनः समाधयः॥ जयंतिपूज्या विजयेन्द्रसूरयः। परोपकारादि गुणौघभूरयः ॥ ११ ॥ प्रौढंमन्मथ पार्थिवं त्रिजगती जैत्रं विजित्यैयुषां॥ येषांजैनपुरेपरेणमहसाप्राक्रांत्तकांतोत्सवे ॥ स्थैर्यंमेरुरगाधतांचजलधिः सर्वंसहत्वं मही ॥ सोमः सौम्यमहप्पंक्तिं किल महत्तेजोऽकृतप्राभृतं ॥ १२ ॥ वापं वापं प्रवचनवचोवीजराजींविनेय ॥ क्षेत्रव्रातेसुपरिमलितेशव्दशास्त्रादिसीरेः ॥१३॥ यैः क्षेत्रज्ञैः शुचिगुरुजनाम्नायवाक्सारणीभिः॥ सिक्त्वा तेनेसुजनहृदयानंदिसंज्ञानशस्यं ॥ १३ ॥ यैरप्रमत्तैः शुभमन्त्रजापैर्वैतालमाधायकृतं स्ववश्यं ॥ अतुल्यकल्याण मयोत्तमार्थं सत्पुरुषः सत्वधनैरसाधिः ॥ १४ ॥ किं वहुना ॥ ज्योत्स्ना मंजुलया ययाध वलितं विस्वंतरामंडलं॥यानिशेषःविशेषविज्ञजनताचित्तश्चमत्कारिणी ॥ तस्यांश्रीविजयेन्दुसूरिसुगुरोर्निष्कृत्रिमायागुण ॥ श्रेणेःस्याद्यदि वास्तवस्तवकृतौविज्ञः सचावांपति ॥१५॥तत्पाणि पङ्कजरजः परिपूतशीर्षाः। शिष्याः स्त्रयोदधतिसंप्रतिगच्छभारं ॥ श्रीवज्रसेन इतिसद्गुरुरादिमोत्र। श्रीपद्मचन्द्रसुगुरुस्तु ततोद्वितीयः ॥ १६ ॥ तार्त्तीयीकस्तेषांविनेयपरमाणुरनणुशास्त्रेऽस्मिन् ॥ श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिविनिर्ममेविवृतिकल्पमिति ॥१७॥ श्रीविक्रमतः क्रामति नयनाग्निगुणेन्दुपरिमितेवर्षे॥ ज्येष्ठश्वेतदशम्यां समर्थितैषाचहस्तार्के ॥१८॥ प्रथमादर्शे लिखता नयप्रभप्रभृतियतिभिरेषा ॥ गुरुतरगुरुभक्ति भरोध्वहनादिवनम्रितशिरोभिः ॥ १९ ॥ इहवा ॥ सूत्रादर्शेषुयतो भूयसोवाचनाविलोक्यंते ॥ विषमाश्चभाष्यगाथाः प्रायः स्वल्पाश्वचूर्णिगिरः॥ २० ॥ ततः ॥ सूत्रेवा भाष्येवा यन्मत्तिमोहान्मयाऽन्यथा किमपिलिखितंवाविवृतं वा तन्मिथ्यादुःकृतंभयात् ॥२१॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीचैत्रवालगच्छ-के श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य लिखे परन्तु श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजीके तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य तो नहीं लिखे सो इसी तरहसे श्रीदेवेंद्रसूरिजीने भी श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिकी प्रशस्तिके पाठमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजी तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य न लिखके श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य लिखे है सो पाठ तो न्यायांभोनिधिजीनेही "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तकमें लिख दिखाया है सो ऊपरमें भी छप चुका है तो फिर उपरोक्त प्राचीन प्रभावक विद्वान् पुरुषोंके कथन किये हुए पाठोंका उत्थापनरूप और किसी भी शास्त्र प्रमाण बिना अपनी कल्पना मुजब मिथ्या आलम्बनोंसे दूसरी वार शुद्ध संयम ग्रहण करने वाले श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवड़गच्छके शिथिलाचारी श्रीसोमप्रभसूरिजी तथा श्रीमणिरत्नसूरिजीके शिष्य लिखना मानना यह कोई आत्मार्थी का तो काम नहीं हैं इसका विशेष खुलासा ऊपरमें छप चुका हैं।

और श्रीवड़गच्छमें भी तो बहुत आत्मार्थी शुद्ध संयमी पूर्वाचार्य होगये परन्तु कर्मोंकी विचित्रतासे श्रीजगच्चन्द्रसूरीजी के ही गुरुजी वगैरहोंकी थोडीसीही पेढियोंमें शिथिलाचारकी प्रवृत्ति होगई होगी किन्तु सब वड़गच्छमें नहीं इसलिये श्रीवडगच्छके आत्मार्थी शुद्ध संयमी सबको शिथिलाचारी नहीं समझना चाहिये ।

अब न्यायांभोनिधिजीके समुदाय वाले वगैरह महाशयो को मेरा यही कहना है कि उपरोक्त "चतुर्थ स्तुति निर्णय"की पुस्तकके ऊपरके लेखमें न्यायांभोनिधिजीने तीन थुईके मतकी प्ररूपणा करनेवाले श्रीरत्नविजयजी (श्रीराजेन्द्रसूरिजी) के गुरुजी वगैरह ३।४ पेढीवालेसंयमी नहीं थे इसलिये श्रीरत्न-

विजयजीको किसी संयमी गुरुके पास क्रिया उद्धार करके पुनर्दीक्षा लेने सम्बन्धी 'भवभीरू' 'आत्महितार्थी' वगैरह शब्दों पूर्वक उनको आगमकी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणसे वचनेके लिये खूब सुस्पष्टतासे उपदेश दिया तथा जबतक श्रीराजेन्द्र-सूरिजी क्रियाउद्धार करके दूसरे शुद्ध संयमी गुरुको धारण न करे तबतक उनको साधुमाननेकी मनाई करी जिसपर भी भोले-जीव उनको साधुमाने तो असाधुको साधु मानने रूप मिथ्यात्वी ठहराये और क्रिया उद्धार सम्बन्धी शास्त्र मर्यादाके पाठ भी दिखाये और उसके दृष्टान्तरूपमें श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत पाठ भी दिखाया तो फिर श्रीजगचन्द्रसूरिजी महाराजने क्रिया उद्धार करके दूसरेको गुरु माने थे तिसपर भी उन्होंकी गुरु परंपरामें लिखनेका छोडकर श्रीजिनाज्ञाभङ्गसे अपने संसार वढनेका भय न करके पहिलेकी परंपरामें लिखनेका ऐसा प्रत्यक्ष विरुद्ध आचरण न्यायांभोनिधिजीने तो अन्धपरंपरासे कर दिया परन्तु अब उन्होंकी समुदाय वालोंको अभिनि-वेशिक मिथ्यात्वका हठवाद अन्धपरंपराको छोडकर श्रीजिना-ज्ञानुसार श्रीजगचन्द्रसूरिजीको वडगच्छमें लिखना मानना छोडकर श्रीचैत्रवालगच्छमें लिखना अवश्यही मान्य करना चाहिये परन्तु विद्वत्ताके अभिमानादि कारणोंसे विरुद्ध बातको ही अन्धपरंपरासे पुष्टकरके चलाते रहना उचित नहीं है।

अब पाठकगणसे मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतनाही कहना है कि 'हीर सौभाग्य काव्य' तथा 'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' और श्रीमुनि सुन्दरसूरिजी कृत 'त्रिदश तरंगिणी' और धर्मसागरजी कृत 'पट्टावली' वगैरह जोजो श्रीतपगच्छकी पट्टावलियोंमें और अन्य ग्रन्थोंमें जिस जिस जगह पर श्रीजगचन्द्रजीने अपने वड गच्छमेंसे शिथिलाचारको छोड़ करके श्रीचैत्रवाल गच्छमें दूसरीवार

शुद्ध दीक्षा अङ्गिकार करी थी जिस पर भी इन महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छकी परम्परामें न लिखकर भद्रजीवोको भरमानेके लिये साम्यता वगैरहके कल्पित आलम्बनोसे श्रीवडगच्छकी परम्परामें लिखे हैं सो उपरोक्त कथनानुसार सर्वथा श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे अप्रमाणिक समझना परन्तु जिस जिस ग्रन्थमें श्रीचैत्रवालगच्छकी परम्परा लिखी होवे सो श्रीजिनाज्ञानुसार प्रमाणिक समझना चाहिये।

और वर्तमानिक कितनेही गच्छवाले यति लोग, चैत्रवालगच्छके चैत्यवासी श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीसे तपगच्छ नाम प्रगट हुआ कहते हैं सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै क्योंकि यह महाराज पहिले वडगच्छमें शिथिलाचारी थे परन्तु पीछेसे शिथिलाचार छोड़कर क्रिया उद्धार करके चैत्रवालगच्छमें तो दूसरी वार शुद्ध संयम ग्रहण किया था और पीछेसे वैराग्यभावसे खूब कठिन तपश्चर्या जीवित पर्यन्त आंबीलकी तपस्या करने लगे थे तब राजाने बहुत तपस्वी दुर्बल शरीरवाले देखकर "महातपा" विरुद दिया था परन्तु कालांतरमें लोग 'महातपा' का 'महातमा' ऐसा कहने लग जावेंगे इसलिये 'महा' शब्दको छोड़ कर 'तपा' कहने लगे उस दिनसे इन महाराजके समुदायवाले श्रीतपगच्छके कहलाने लगे है इसलिये इन महाराजको चैत्रवाल गच्छके चैत्यवासी कहना मिथ्या है। और वर्तमानिक तपगच्छवालोंका वड़गच्छसे तपगच्छ हुआ ऐसा कहना भी उपरोक्त लेखसे जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्या ठहरता है सो तो विवेकी जन स्वय विचार लेवेंगे।

और वर्तमान कालमें जो जो आत्म कल्याणाभिलाषी जन अपना शिथिलाचारको छोड़कर क्रिया उद्धारसे दूसरी वेर शुद्ध संयम लेनेवाले महाशयोको भी किसी संयमीको गुरु धारण करना उचित है परन्तु श्रीराजेंद्रसूरिजीकी तरह दूसरा गुरु

धारण किये विना स्वयं क्रिया उद्धार करना शास्त्र मर्यादा विरुद्ध है और क्रियाउद्धार करनेमें देशकालानुसार व्यवहार शुद्ध देखलेना और न्यूनाधिक विद्वत्ता वगैरह सब गुणतो वर्तमानकाले दूसरेमें मिलने मुश्किल है इसलिये अभिमान छोड़कर छिद्रग्राही न होते हुए जिनाज्ञा आराधन करनेके लिये शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजकी तरह क्रिया उद्धार करना चाहिये।

और श्रीजगचन्द्रसूरिजीकी वडगच्छमें तथा चैत्रवाल गच्छमें दोनों गच्छोंमें परंपरा लिखना मान्य करो तो भी आत्मार्थी शुद्ध संयमियोंको तो श्रीचैत्रवालगच्छकी परंपरा मान्य करनी पडेगी और शिथिलाचारियोंको वडगच्छकी सो इस न्यायसे भी तो श्रीदेवेंद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी परंपरा श्रीचैत्रवाल गच्छसे मिलाना ठहरता है नतु वडगच्छसे इसको भी तत्वज्ञजन स्वयं विचार लेवेंगे।

बस ? इसी तरहसे न्यायांभोनिधिजीने श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजको श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके शिष्य पनेमें लिखने, मानने,का छोडकर श्रीवडगच्छके श्रीसोमप्रभसूरिजीके तथा श्रीमणीरत्नसूरिजीके शिष्य लिखने मानने रूप अपनी विरुद्धाचरणकी बातको दवादेनेके लियेही तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीअणहिलपुरपट्टणमें श्रीदुर्लभराजाकी पाठांतरसे श्रीभीमराजा की राज्य सभामें चैत्यवासियोंसे साधुके वर्ताव सम्बन्धी विवाद करके उन्होंकी अविधि उत्सूत्रता शिथिलताको सबके सामने प्रगट करते हुए शास्त्रोक्त साधुके वर्तावमें आप विशेष सच्चे (अतिशयखरे) रहे तब राजाने उन चैत्यवासियोंको कहा कि तुमतो साधुके वर्तावमें कवले (शिथिल) हो और श्रीजिनेश्वरसूरिजीको कहा आप खरतर (अतिशय विशेष सच्चे) हो इस

तरहसे उस दिनसे उन चैत्यवासियोंकी परपरावाले 'कँवले' कहलाये और इन महाराजके परपरा वाले 'खरतर' कहलाये इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजके शिष्य श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी तथा श्रीनवांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिन-वल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह शासन प्रभावक महाराज सभी श्रीखरतरगच्छकी परपरामें हुए है सो शास्त्रोके प्रमाणोसे और युक्तियोके अनुसार प्रगटपने स्वय सिद्ध हैं तथा ऐसेही श्रीतपगच्छादिके पूर्वाचार्योंने भी अपने बनाये ग्रन्थोमें खुलासा पूर्वक लिखा है तिसपर भी न्यायांभोनिधिजीने अपने पूर्वज पुरुषोके कथनको और शास्त्र प्रमाणानुसार सत्य बातको उत्थापन करके श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद नही मिलनेका ठहरा करके श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेव-सूरिजी खरतरगच्छमें नही हुए ऐसा कहते हुए व्यर्थ द्वेष बुद्धिसे प्रत्यक्ष मिथ्या जूठे आलबनोसे शासन प्रभावक परमोपकारी श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज पर कितनीक बातोके झूठे दोष लगाके इन महाराजसे सम्वत् १२०४ में खरतरगच्छकी उत्पत्ति होनेका "जैनसिद्धांत समाचारी" परन्तु वास्तवमें "उत्सूत्रोकी कुयुक्तियोकी अन्धखाड" नामक पुस्तकमें तथा 'जैनतत्वादर्श' वगैरहोमें लिखने वाले (न्यायाभोनिधिजी वगैरहो) ने अपने महाव्रतका भग करके मिथ्या भाषणके लेखोंसे भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकर अपने और दूसरे भद्र जीवोके ससार बढानेका कारण करते हुए आपसमें कदाग्रहका झगडा बढानेका कारण किया जिसका निवारण करनेके लिये तथा ऊपरकी बातमें पाठकगणको विशेष नि सन्देह होनेके लिये यहा पर थोडेसे शास्त्रोंके प्रमाणो सहित, प्रत्यक्ष प्रमाणो पूर्वक युक्तिके साथ सक्षिप्तसे निर्णय करके दिखाता हू।

सो प्रथम तो श्रीतपगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीसोमसुन्दर सूरिजीके शिष्यश्रीचारित्ररत्नगणिजीके शिष्यश्रीसोमधर्मगणिजीने विक्रम संवत् १५ सौके अनुमानमें श्री "उपदेश सत्तरी" नामा ग्रन्थ बनाया है उसमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतरगच्छ तथा नवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी खरतरगच्छमें हुएहैं ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब है।

जयत्यसौ स्तंभन पार्श्वनाथः प्रभावपूरैः परितः सनाथः ॥ स्फुटीचकाराभयदेवसूरि र्यंभूमिमध्यास्थित मूर्त्तिसिद्धं ॥ १ ॥ पुरा श्रीपत्तनेराज्यं॥ कुर्वाणे भीमभूपतौ ॥ अभूवन् भूतलाख्याताः॥ श्री जिनेश्वर सूरयः ॥ २ ॥ सूरयोभयदेवाख्यास्तेषां पट्टे दिदीपिरे ॥ येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥ तेषामाचार्याणां, मान्यानांभूभृतामपि ॥ कुष्टव्याधिरभूद्देहे, प्राच्यकर्मानुभावतः ॥४॥ ततः श्रीगूर्जरयात्रायां, स्थंभनकपुरं प्रति ॥ शक्त्यल्पत्येपिते चक्रु र्विहारं मुनिपुंगवाः ॥५॥ रोगग्रस्ततयात्यंतं। संभाव्यस्त्रायुषः क्षयं ॥ मिथ्यादुः कृतदानार्थं। सर्वं श्रीसंघमाहूयत् ॥ ६ ॥ तस्यामेव निशीथिन्यां स्वप्नेशासनदेवता ॥ प्रभोस्वपिषि जागर्षि, किंचेत्या हगुरु'प्रति ॥ ७ ॥ रोगेणक्वास्तिमेनिद्रेत्युक्ते देवी गुरु' जगौ ॥ उन्मोहयततन्त्वेषा सूत्रस्यनवकुकुंटीः ॥८॥ शक्तेरभावात् किंकुर्वे, साहमेवंप्रचोवद् ॥ त्वमद्यापि नवांग्या यद्वृत्तीः स्फीताः करिष्य सि ॥९॥ श्रीसुधर्मकृत ग्रन्थान् कंथमन्याम्यहं ॥ पंगोः प्रत्येतिको नाम मेर्वारोहण कौशलं॥ १० ॥ देव्याह यत्र संदेहः स्मर्त्तव्याहं त्वयातदा ॥ यथाभिनद्धितान् सर्वान्पृष्ट्वा सीमंधरं जिनं ॥ ११ ॥ रोगग्रस्तः कथंमातः, करोमि विस्तीरहं ॥ सावादीत्तत्प्रतीकारं कितूपायमिमंश्रृणु ॥ १२ ॥ अस्तिस्तंभनक ग्रामे सेढीनाम महा नदी ॥ तस्यां श्रीपार्श्वनाथस्य प्रतिमास्त्यतिशायिनी ॥ १३ ॥ यत्र च क्षरति क्षीरं प्रत्यहं कपिलेतिगौः तत् सुरोत्खा भूमौच

द्रक्षसि प्रतिमा मुख ॥१४॥ तदैव स प्रभाव तद्बिंब वद्य स्वभावतः॥ यथा त्व स्वस्य देहस्या दिति प्रोच्यगता सुरी॥ १५ ॥ प्रातर्जागरित स्तेष स्वप्नार्थ समनुद्धयच ॥ सम समग्र सघेन चेलु स्तभनक प्रति ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा यथा स्थाने प्रेक्ष्यपार्श्वजिनेश्वर ॥ उल्ल सत्सर्व रोमाच एव ते तुष्टुवुर्मुदा ॥ १७ ॥ जय तिहुअण वर कप्परुक्ख जय जिण धन्नतरि, जय तिहुअण कल्लाण कोस दुरिअ क्करि केसरि ॥ तिहुअण जण अविलघिआण भुवण त्तय सामिय कुणसु सुहाइ जिणेसपास थभणय पुरहिय ॥ १८ ॥ वृत्ते तुपोडशे साथो सर्वाङ्गा प्रगटाभवत् ॥ अतएवाग्र वृत्तेतै पद्मख्येतिपद कृतं ॥ १९ ॥ फणि फण फार फुरन्त रयण कर रंजिय नहयल, फलिणी कदल दल तमाल नीलुप्पल सामल ॥ कमठा सुर उवसग्ग वग्ग ससग्ग अगजिय, जय पच्चक्ख जिणेस पास थम्भणय पुर ट्ठिय ॥ २० ॥ एव द्वात्रिंशता वृत्तैस्तुष्टुवु पार्श्वनोर्थप ॥ श्रीसंघोपि महापूजा ध्युत्सवान्स्तत्रनिर्ममे ॥ २१ ॥ अत्यद्भुतवृद्वय तत्र त्यक्त्वा देव्यपरोधत ॥ चक्रिरैत्रिंशतावृत्तैं स प्रभाव स्तवहिते ॥ २२ ॥ तत्कालं रोगनिर्मुक्ता सूरय स्तेपि जज्ञिरे ॥ नव्य कारित चैत्येच प्रतिमा सा निवेशिता ॥ २३ ॥ स्थानागादि नवागाना चक्रुस्ते विवृती क्रमात्॥ देवता वचन नस्यात्कल्पातेपिहिनि फल ॥ २४ ॥ सौवर्ण नव्य निष्पन्न ग्रथपुस्तक संचय ॥ दृष्ट्वा उत्तरिकाभूपादि- भिर्दिव्यानुभावत ॥ २५ ॥ पत्तने भीमभूपालो द्रव्यलक्षत्रय व्ययात्॥ लेखया मास ता सर्वावृत्ती स्वपरसूरिषु ॥ २६ ॥ एव ते सूरयो भूरिकालं श्रीवीरशासने ॥ चिरं प्रभावना चक्रु प्राप्त सार्व त्रिकोदया ॥ २७ ॥ आघ्नायमानादिरमर्त्य नायक, श्रीरामकृष्णो- रुगपांडुगादिभि ॥ नाना विधस्थान कृतार्चनश्चिरंपार्श्व, प्रभु पातु भावात् सदेहिन ॥२८॥ अथवा॥पार्श्वे श्रीकुथुनाथस्य,मम्मण व्यवहारिणा॥पृष्ट मोक्ष कदाभावी, ममस्वाम्यपित्र जगौ ॥ २९ ॥

तीर्थश्रीपार्श्वनाथस्य तव सिद्धिर्भविष्यति ॥ अचीकरदिमामर्चां ततो सा विति केचन ॥३०॥ इत्युपदेशसप्तत्यां द्वादशोपदेशः ॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीतपगच्छ वालोंनेही अपने बनाये ग्रंथमें पत्तननगरमें श्रीभीमराजा और श्रीजिनेश्वर सूरिजी-तथा इन्ही महाराजके शिष्य श्रीनवांगी वृत्ति कारक श्रीअभयदेव -सूरिजीको "गच्छः खरतराभिधः" याने श्रीखरतरगच्छमें होनेका प्रगटपने लिखा है और इन महाराजके शरीरमें बहुत व्याधि उत्पन्न होजानेसे स्वप्नमें शासन देवीने आकर रोग निवारण करनेके लिये स्थंभनक ग्रामके पास सेढीनामा नदीके नजीक महा प्रभावशाली अतिशय युक्त श्री पार्श्वनाथजीकी प्रतिमा भूमिके अंदर है उसपर कपिला गऊ नित्य दूधसे स्नान कराती है वहां जाकर उस प्रतिमाको प्रगट करनेसे रोग मुक्त होनेंका और नवांग सूत्रोंकी टीका करनेको कहा तब महाराजने श्रीसंघ सहित वहां जाकर "जयतिहुयण" इत्यादि भगवानूकी स्तुतिकरनें लगे सो "फणीफण" इत्यादि १६वींगाथा बोलतेही प्रतिमा प्रगट होगई और श्रीसंघने भक्ति सहित महापूजा करी उस स्नात्रपूजाके न्हवण जलसे महाराजका शरीर अच्छा हुआ और अनुक्रमे श्रीस्थानांगादि नवअंगोंकी वृत्तियें करके श्रीवीरप्रभुके शासनकी उन्नति करतेहुए बहुत भव्यजीवोंका उपकार करके देवलोक पधारे सो खुलासा लिखा है ऐसे महाप्रभावक नवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजको उपरोक्त 'उपदेशसप्तति' केपाठमें खरतरगच्छके लिखे हैं।

२ और दूसरा "सोहन चरित्र" के दूसरे सर्गमें भी भीमराजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद देनेका लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब हैं

महावीरात्सुधर्मार्य-जम्बू श्रीप्रभवादयः । आचार्याः क्रमशोऽभूवन् नवत्रिंशत्सुसंयताः ॥ ४१ ॥ चत्वारिंशास्ततोऽभूव-न्सूर-

य श्रीजिनेश्वरा । अणहिल्ल पत्तन ते विहरन्त समागमन् ॥ ४२ ॥ धर्मोद्योत कृत तत्र श्रीजिनेश्वर सूरिभि । वीक्ष्यभीमनृप सद्य प्रसत्ताद् महामना ॥ ४३ ॥ प्रतिवादि मतोत्साद एते खरतरा इति । तेभ्य खरतरेत्याख्य विरुद प्रददौनृप ॥ ४४ ॥ गगनेभव्योमचन्द्र—मितेविक्रमसवदि । अलभन्त नृपादेतद्व विरुद श्रीजिनेश्वरा ॥ ४५ ॥ शासने वर्धमानस्य कुलचन्द्रपुरातनम् । तस्मादारभ्यलोकेऽस्मि—न्नाप्नोत्खरतराभिधाम् ॥ ४६ ॥ तत्पट्टेजिनचन्द्राख्या अभवन्सूरयस्तत । सवेगरङ्ग शालादि ग्रन्थरत्नविधायका ॥ ४७ ॥ सूरयोऽभयदेवाख्या—स्तेपापट्टेऽतिविश्रुता । नवाङ्गीवृत्तिकर्तारोऽभूवस्तीर्थप्रभावका ॥ ४८ ॥ ततस्तेपापट्टआसन्सूरयो जिनवल्लभा । सघपट्टादिकर्तारो भव्य बोध विशारदा ॥ ४९ ॥ तेषांपट्टे लब्धिरेऽय जिनदत्ताद्योऽमला । सूरय सयमभित शासनोन्नति कारका ॥ इत्यादि ॥

देखिय ऊपरके पाठमे भी श्री अणहिलपुर पट्टणमें प्रतिवादियोंको जीतनेसे श्री भीमराजाने विक्रम संवत् १०८०में श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतरविरुद दिया और इन्ही महाराजके शिष्य श्री जिनचद्र सूरिजी तथा श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी और श्री जिनवल्लभ सूरिजी वगैरहोको अनुक्रमे पट्टधर लिखे हैं।

३ तीसरा फिर भी श्री तपगच्छके श्री हेमहस सूरिजीने श्री "कल्पांतरवाच्य" में भिन्न भिन्न गच्छोके प्रभावक पूर्वाचार्यो के सबधमें श्री नवागी वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरिजीको तथा इन महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभ सूरिजीको श्रीखरतरगच्छके लिखे हैं जिसका लेख नीचे मुजब है।

नवांग वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरि जेणे थभणइ गामइ श्री सेढी नदी नइ उपकठइ श्रीपार्श्वनाथ तणी स्तुतिकीधी धरणेंद्र प्रत्यक्ष कीधउ शरीरतणउ कोढ रोग उपसमाव्यउ तेहना शिष्य

श्रीजिनवल्लभसूरि थया ते चारित्र निर्मल अनेक ग्रन्थ तणउ निर्माण कीधउ इणइ अनुक्रमइ श्रीखरतरपक्षइ अनेक सूरिवर सातिशयइ थया, इत्यादि ॥

४ चौथा और भी श्रीतपगच्छके श्रीमुनिसुंदर सूरिजीने "त्रिदश तरंगिणी" में उपरोक्त 'उपदेश सत्तरी' तथा 'कल्पांतरवाच्य' मुजब ही श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्री अभयदेव सूरिजीके शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिजी और इनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजीको लिखे है जिसका पाठ नीचे मुजब है यथा—

व्याख्याताभयदेव सूरि रमल प्रज्ञो नवांग्या पुनः, प्रौढिं श्री जिनवल्लभोगुरुरधीत् ज्ञानादि लक्ष्म्याःपुनः ॥ भव्यानां जिनदत्त सूरिरददद्दीक्षां सहस्रस्यतु, ग्रन्थान् श्रीतिलकश्चकार विविधान् चन्द्रप्रभाचार्यवत् ॥ १ ॥

५ पांचवां श्रीतपगच्छके श्रीरत्नशेखरसूरिजीने भी श्रीआचार प्रदीपमे श्रीजिनदत्त सूरिजीको श्रीखरतरगच्छके लिखे हैं सो ग्रन्थ अभी मेरेपास नहीं है इसलिये उस पाठको यहां नहीं लिख सकता परन्तु 'आचारप्रदीप' मूल ग्रन्थ तथा भाषांतर छपा हुआ प्रसिद्ध है सो पाठक गण स्वयं देख लेवेंगे—

६ छटा और भी देखो खास न्यायांभो निधिजीने ही 'चतुर्थं स्तुति निर्णय' की पुस्तकमें श्री अभयदेव सूरिजीको खरतरगच्छके लिखे हैं जिसके पृष्ठ १०७ की पंक्ति २० से पृष्ठ १०८ की पंक्ति १० तकका लेख नीचे मुजब है

तथा श्रीअभयदेवसूरिने तथा तिनके शिष्यने देवसि पडिक-मणेकी आदिमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुत-देवता अरु क्षेत्र देवताका कायोरसग्ग करना तथा तिनकी थुइ कहनी कही है तथा सम्यक्त्व देशविरत्यादिके आरोपणेकी चैत्य वंदनामें प्रवचन देवी, भुवन देवता, खेत्र देवता, वेयावच्चगराणं

इनके कायोत्सर्ग और इन सबों की पृथग् पृथग् थुइ कहनी कही है इस समाचारोके अंत श्लोकमें ऐसें लिखा हैके,श्रीअभयदेवसूरिके राज्यमें यह समाचारी रची गई है और इसी पुस्तककी समाप्तिमें ऐसे लिखा है इति श्रीखरतरगछे श्रीअभयदेवसूरि कृता समाचारी सपूर्णा ॥ यह पुस्तकभी हमारे पास है किसीको शङ्का होवे तो देख लेवे ॥

देखिये ऊपरके लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीने तीनथुइ वालोंके कदाग्रहको हटानेके लिये श्रीअभयदेवसूरिजीको श्रीखरतर गच्छके लिखके इन महाराजके कथनसे प्रतिक्रमणमे च्यारथुइ कहना ठहराया और श्रीखरतर गच्छके अभयदेवसूरिजी कृत समाचारीके लेखमें किसीको शङ्का होवे तो खास उस पुस्तकको देखा करके लोगोंकी शङ्काका निवारण करनेकेलिये खुलासा सूचना करी है।

७ सातवा और भी सुप्रसिद्ध १४४४ ग्रन्थकारक श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज कृत श्री 'अष्टक' जी नामा ग्रन्थको टीका श्रीजिनेश्वरसूरिजीने विक्रम् सम्वत् १०८० में बनाई है और उस टीकाको श्रीअभयदेवसूरिजीने शुद्ध करी है सो वो श्री अष्टकजी नामा ग्रन्थ भाषान्तर सहित छपकर प्रकाशित हो चुका है उसकी 'प्रस्तावना' में उपरोक्त इन तीनों महाराजोंके संक्षिप्त चरित्र लिखे हैं उसमेंसे यहां श्रीजिनेश्वरसूरिजीके तथा श्रीअभदेवसूरिजीके चरित्र लिख दिखाता हू सो नीचे मुजब है।

श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज।

आ "अष्टकजी" नामना ग्रन्थनी टीका करनारा श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज विक्रम सवत् एक हजारना सैकामां विद्यमान हता, एम सम्भवे छे। ते श्रीवर्द्धमानसूरीश्वरजी महाराजना शिष्य हता, अने श्रीअभयदेवसूरिजी, जिनचन्द्रसूरिजी, तथा जिनभद्रसूरिजीना गुरु हता। ते ओ ससारी पणामा सोम

नामना ब्राह्मणना पुत्र हता। तथा तेमनुं नाम शिवेश्वर हतुं तथा मालवाना रहेवासी हता. तेओ गुजरातना राजा दुर्लभसेनना समयमां चैत्यवासीओ साथे धर्मवाद करवाने पोताना भाई बुद्धिसागरजीनी साथे गुजरातमां आव्या हता; तथा त्यां दुर्लभसेनराजानी सभामां, सरस्वतीभाण्डागारमांथी मंगावेली-दशवैकालिकनी टीकामांथी साध्वाचार प्रकरण वांचीने तेमणे चैत्यवासीओने हराव्या हता; अने एवी रीते सभाने जीतवाथी राजाए तेमने "खरतर" नामनुं विरुद आप्युं हतुं, तेमने अष्टकनी टीका विक्रम सम्वत् १०८० मां जावालपुर नामना गाममां बनावी छे; वली तेमणे पञ्चलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, तथा सम्वत् १०९२ मां आसापलीमां रहीने लीलावती कथा, तथा डींडीयानकमां रहीने कथानककोश विगेरे ग्रन्थो बनाव्या छे।

श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज।

आ ग्रन्थनी टीकाना शोधनार श्री अभयदेवसूरि महाराज पण विक्रम संवत् एक हजारना सैकामां विद्यमान हता, तेम कहेवुं निर्विवादज छे, तेमनो जन्म धारा नगरीना व्यापारी धननी स्त्री धनदेवीनी कुक्षिये थयो हतो, तथा संसारीपणामां तेमनुं अभयकुमार नाम हतुं ते श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराजना शिष्य हता, तेमने विक्रम संवत १०८८ मां सोल वर्षनी वयेज आचार्यपदवी मली हती, अने तेथी तेमनो जन्म विक्रम संवत् १०७२ मां होवानुं साबित थाय छे, वली विचारामृत नामना ग्रन्थमां कहेलुं छे के, तेमणे विक्रम संवत् ११२५ मां धोलकामां रहीने श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजना बनावेला पञ्चाशक नामना ग्रन्थपर टीका रची छे, तेम तेमणे त्रणथी मांडीने अग्यार सुधिना एटले नव अङ्गोनी टीका ओ, जयतिहुअणस्तोत्र, जिनचन्द्रगणिजीए बनावेला नवतत्वप्रकरणनी टीका, निगोदषट्

त्रिंशिका, पञ्चनिग्रन्थविचारसंग्रहणी पुद्गलषट्त्रिंशका, संग्रहणी जिनभद्रजीए बनावेला विशेषावश्यकभाष्यपर टीका, हरिभद्रसूरिजीना बनावेला षोडशकनी टीका, देवेन्द्र महाराजे बनावेला सतारिकप्रकरणनी टीका विगेरे अनेक ग्रन्थो बनावेला छे, एवीरीते ६७ वर्षोनु आयुष्य संपूर्ण करीने विक्रम सवत् ११३९ मा कपडवजमा तेमनु देवलोकगमन थयु, एवी रीते महान् आचार्योनो संक्षेपथी इतिहास जाणवो।

८ आठवा और भी श्री जैनधर्मके प्राचीन इतिहासकी दोनो पुस्तकोमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीका चरित्र नीचे मुजब लिखा है।

जिनेश्वरसूरि—आ महान् आचार्य, वर्धमान सूरिना शिष्य हता, तथा नवांगी टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिना गुरु हता। खरतरगच्छ आ आचार्यथी चाल्यो छे, ते विक्रम सवत् १०८० मा विद्यमान हता। तेमणे जावालपुरमां रहीने हरिभद्रसूरिजीना अष्टकपर टीका रचेली छे। तेमने गुजरातना राजा दुर्लभसेन तरफथी खरतरनु विरुद मळ्यु हतु। वळी तेमणे पचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, लीलावतीकथा, कथारत्नकोष विगेरे अनेक ग्रंथो रचेला छे। तेमने माटे प्रभाविकचरित्रमा प्रभाचद्रसूरिजे नीचे प्रमाणे वृत्तांत आपेलु छे।

मालवा देशमा आवेली धारा नगरीमा ज्यारे भोज राजा राज्य करता हता त्यारे त्या लक्ष्मीपति नामनो एक महाधनाढ्य व्यापारी रहेतो हतो। एक दहाडो त्यां महा विद्वान् श्रीधर अने श्रीपति नामना ब्राह्मणना पुत्रो देशो जोवानी इच्छाथी आवी चड्या, तथा भिक्षा माटे ते लक्ष्मीपतिने घेर आववाथी तेणे तेओने भक्तिपूर्वक भिक्षा आपी। ते शेठना घरनी भींतपर हमेशां लेख लखाता हता। ते लेखने आ बुद्धिवान बन्ने ब्राह्मणो हमेशां जोता। अने तेमनी अपूर्व याद-

शक्तिथी ते लेख तेओने कंठे थइ गयो। एक दहाडो ते नगरमां आग लागवाथी ते शेठनुं घर धनमाल सहित नष्ट थयुं। ते दिवसे ज्यारे ते बन्ने ब्राह्मणपुत्रो ते शेठनेघेर आव्या, त्यारे तेओ ते शेठने शोकमां निमग्न थएलो जोइ अत्यंत दिलगीर थया। शेठे तेओने कह्युं के, हे ब्राह्मणपुत्रो! मने मारा द्रव्यादिकनी हानिथी शोक थतो नथी, पण मारा लेखनी हानिथी मने घणुं दुःख थाय छे। त्यारे ते ब्राह्मणपुत्रोए कह्युं के, हे यजमान! अमो गरीब भिक्षुको आपने बीजो उपकार करवाने तो असमर्थ छैये, तो पण तमोने तमारा ते लेखनी जो इच्छा होशे तो अमो ते आपने यथास्थित लखी आपीशुं। ते सांभली अत्यन्त हर्षित थएला ते लक्ष्मीपति शेठे तेमने उंचा आसनपर बेसाडी अत्यंत सन्मान आप्युं। पछी तेओए तिथिवार पूर्वक ते समस्त लेख शेठने लखी आप्यो, ते जोइ शेठे विचार्युं के, अहो! आ तो मारा पूर्वभाग्यना प्रबलथी कोइक मारा गोत्रदेवोज मने प्राप्त थया छे!! पछी ते शेठे तेमने उत्तम भोजन तथा वस्त्रादिकथी सन्मान आपीने पोताने घेर चाकर राख्या। बाद तेओ बन्नेने जितेंद्रिय अने शांतस्वभावी जोइने शेठे विचार्युं के, आमने जो मारा आचार्य शिष्यो करे, तो खरेखर जैनशासनने दीपावनारा तेओ थाय। एटलामा त्यां श्रीवर्धमानसूरि पधारवाथी ते लक्ष्मीपति शेठ ते बन्ने ब्राह्मणपूत्रोने साथे लेइने तेमने वांदवामाटे तेमनी पासे गयो। तेओनां हस्तरेखा आदिक चिन्हो जोइने गुरुए तेमने दिक्षायोग्य जाणीने लक्ष्मीपतिनी अनुज्ञापूर्वक दीक्षा आपी। दीक्षाबाद तेओ योगवहनपूर्वक सर्व सिद्धांतोनो अभ्यास करीने पंच महाव्रतो निरतिचारे पालवा लाग्या। छेवटे तेओने योग्य जाणीने गुरु महाराजे आचार्यपद आपी तेओनां अनुक्रमे

जिनेश्वरसूरि तथा बुद्धिसागरसूरि नाम पाड्यां पछी श्रीवर्द्धमान-सूरिश्रीअे तेओने कह्यु के आज कल अणहिलपुर पाटणमां चैत्यवासीओनु घणु जोर होवाथी त्यां शुद्ध मुनिराजोने रहेवाने स्थानक मलतुं नथी, माटे ते उवद्रवने तमो बन्ने तमारी शक्ति अने बुद्धिथी त्यां जइ निवारण करो ? केमके, आ सांप्रतकालमां तमारा सरखा बीजा विचक्षणो नथी। गुरु महाराजनी ते आज्ञाने मुकुटरूप करीने तेओ बन्ने त्यांथी विहार करीने अनुक्रमे पोताना चरणन्यासोथी पृथ्वीने पवित्र करता थका गुर्जर देशमां आवेला अणहिलपुर पाटणमा पधार्या, ते समये ते नगरमां महा विद्वान् तथा नीतिशास्त्रमां विचक्षण दुर्लभसेन नामे राजा राज्य करतो हतो, त्या अेक सोमेश्वर नामनो पुरोहित वसतो हतो, तेने घेर आ बन्ने जैनाचार्यो गया, तथा वेदपाठोच्चार करवा लाग्या, ते सांभली पुरोहित तेअेने अत्यन्त आदरसत्कार आप्यो, त्यारे तेओअे पण तेने आशिष आपी के, 'अपाणि पादो यवमो गृहीता। पश्यत्यचक्षु स श्रृणोत्यकर्णा स वेत्ति विश्व न च तस्य वेत्ता । शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्व' ॥ १ ॥ पछी ते पुरोहिते तेओने आदर पूर्व्वक पूछ्यु के, तमोअे अहीं कइ जगोपर निवास कर्यो छे,? त्यारे तेओअे कह्यु के, अहीं चैत्यवासि यतिओनु जोर होवाथी अमोने रहेवाने स्थानक मल्यु नथी, ते सांभली निर्मल मनवाला पुरोहिते तेओने रहेवा माटे पोतानी चन्द्रशाला आप्याथी त्यां परिवार सहित तेओअे निवास कार्यो, त्यां तेओ लोलता रहित निरवद्य आहार पाणी लेता थका विद्याविनोदथी पोतानो समय निर्गमन करवा लाग्या। अेटलामां त्या चैत्यवासिओना नोकरो आवीने तेओने कहेवा लग्या के, अरे। साधुओ!! तमो तुरत आ नगरनी बाहर निकली जाओ ? केम के, अहीं

ચૈત્યવાસીઓ સિવાય બીજા શ્વેતાંબર મુનિઓને રહેવાનો હુકમ નથી, તે સાંભલી પુરોહિતે કહ્યું કે, આ બાબતનો મારે રાજાપાસે જઇ રાજસભામાં નિર્ણય કરવો છે, એમ કહી તે દુર્લભરાજા પાસે ગયો, અને ત્યાં તે ચૈત્યવાસીઓ પણ આવ્યા, પછી પુરોહિતે રાજાને વિનતી કરી કે, હે રાજન્! આ નગરમાં બે ઉત્તમ જૈનમુનિઓ પોતાને સ્થાનક નહીં મલવાથી મારે ઘેર પધાર્યા છે, તેઓ મહા ગુણી હોવાથી મેં તેઓને રહેવાને સ્થાનક આપ્યું છે, પણ આ ચૈત્યવાસી યતિઓએ પોતાના માંણસો મારે ઘેર મોકલી તેઓને નગરની બાહર નીકલી જાવાનું કહેવરાવ્યું છે, તે સાંભલી તુલ્યદૃષ્ટિવાલા દુર્લભરાજાએ જરા હસીને કહ્યું કે, મારા નગરમાં જે ગુણી માણસો દેશાન્તરથી આવીને વસે છે, તેઓને કોઇ પણ નિવારી સક્તું નથી તો, આવા મહાત્માઓને અહીં નહીં વસવા દેવા માટેશું પ્રયોજન છે,? ત્યારે ચૈત્યવાસીઓ બોલી ઉઠ્યા કે, હે મહીપતિ! પૂર્વે શ્રીવનરાજ નામના જે મહાપરાક્રમી રાજા આહીં થએલા છે, તેમને બાલ્યપણામાં ચૈત્યવાસી દેવચન્દ્રસૂરિએ (બીજા મત પ્રમાણે શિલગુણસૂરિએ) આશ્રય આપી પોષ્યા હતા, અને તે ઉપકારના બદલામાં વનરાજે સંપ્રદાય વિરોધના ભયથી આ નગરમાં ફક્ત ચૈત્યવાસીઓ એજ રહેવું અનેબીજા શ્વેતાંબર જૈનસાધુઓએ અહી રહેવું નહીં, એવો લેખ કરી આપ્યો છે, અને તેથી અમો તેમને અહીં વસવા માટે મના કરીએ છીએ, અને આપે પણ આપના તે પૂર્વજોની આજ્ઞા પાલવી જોઇએ, ત્યારે રાજાએ કહ્યું કે, અમારા પૂર્વજોની આજ્ઞા અમારે પાલવી જોઇએ તે વ્યાજબીજ છે, કેમકે, આપ જેવા મુનિઓની આશિષોથી અમારા જેવા રાજાઓ ઋદ્ધિવંત થાય છે, અને ટુંકામાં કહીયે તો આ રાજ્ય આપનુંજ છે; તેમાં કંઇ પણ

सन्देह नथी, वली तमो पण जैन मुनिओ छो, तो मुनिओनो आचार शुं छे? ते सांभलवानी मने इच्छा छे, अने ते आचारमां जो आ बन्ने मुनिओनुं विशेषपणुं मालुम पड़े, तो तेओए आ नगरमां रहेवुं नही, एम कही ते दुर्लभराजाए पोताना सरस्वती भण्डारमां रहेलुं, जैन मुनिना आचारना स्वरूपवालु दशवैकालिक सूत्र मगाव्युं, अने तेमां कहेला आचार प्रमाणे आ बन्ने आचार्योने प्रवर्तता जोइने तेमने 'खरतर' बिरुद आपी रहेवामाटे त्यां निवास आप्यो, अने चैत्यवासीओ झखवाणा थइने पोताने स्थानके गया, तथा त्यारथी ते अणहिलपुरमां शुद्ध जैन मुनिओने निवास मलवा लाग्यो, अने चैत्यवासीओनु जोर धीमे धीमे कमी थतु चाल्यु त्यां बुद्धिसागराचार्यें बुद्धिसागर नामनुं आठ हजार श्लोकनु नवुं व्याकरण रच्युं, एवी रीते आ खरतरगच्छना स्थापनकर्ता श्रीजिनेश्वरसूरि आचार्य महाप्रभाविक थएल छे।

९ नवम औरभी सर्वगच्छोंकेमान्य श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके शिष्य श्रीप्रसन्नचन्द्रसूरिजीकी आज्ञानुसार श्रीसुमतिविमलवाचकके शिष्य श्रीगुणचन्द्रगणजीने श्रीअभयदेवसूरिजी स्वर्ग पधारे उसी वर्ष, याने सम्वत् ११३९ वर्षे प्राकृत भाषामें १२००० प्रमाणे श्रीवीरप्रभुका चरित्रकी रचना करी है उसके अन्तकी प्रशस्तिमें भी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे "सुविहित" अर्थात् खरतर सतती प्रचलीतहोनेका खुलासा लिखा है जिसका पाठ नीचे मुजब है।

इय सुक्कज्झाणानलनिद्दड्ढ। घण घाइ कम्मदारुस्स। गोयम पहुस्स सहस्सा। उप्पन्न केवल नाण ॥ १ ॥ बारस वासाणि विबोहिऊण। भव्वे सिवंगए तम्मि ॥ भयव सुहम्मसामी। निव्वाण पहं पयासेइ ॥ २ ॥ तम्मिविचिरकालं विहरिऊण।

सिरिजंबूसामिणो दाउं । गच्छ गणाण मणुराणं । संपत्ते सिद्धि वासंमि ॥ ३ ॥ एवं विज्जाहर सुर नर । सुरिंद सन्दोह वंदणिज्जेसु समइक्कन्तेसु महा । पहुसु सेज्जंभवाईसु ॥ ४ अइसय गुणरयण निही । मिच्छत्त तमंधलोअ दिणनाहो ॥ दूरिच्छारिय वइरो । वइरसामी समुप्पन्नो ॥ ५ ॥ सहाइतस्स चंदे । कुलंमि निप्पडिम पसम कुल भवणं । आसि सिरि वद्धमाणो । मुणिनाहो संजम निहिव्व ॥ ६ ॥ बहु कलिकालतम पसर । पूरिया सेस विसम सम भागो ॥ दीवेणंव मुणीणं । पयासिओ जेन मुत्तिपहो ॥ ७ ॥ मुणि-वइणो तस्स हरट्टहास । सिअ जस पसाहिआसस्स ॥आसि दुवेवर सीसा । जयपयडा सूर ससिणोव्व ॥ ८ ॥ भवजलहि वीइसंभंत । भविय संताण तारण समत्थो ॥ बोहित्थोव्व महत्थो सिरि सूरि जिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसीराओ धवलाओ । सुवि हिया साहू संतती जाया ॥ हिमवंताऊ गंगुव्व निग्गया सयल जण पुज्जा ॥१०॥ अन्नोयपुणिणमाचन्दो । सुन्दरो बुद्धि सागरो सूरी ॥ निम्म विय पवर वागरण । च्छन्द सत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगंतवाय विल सिर । परवाइ कुरंग भंग सीहाणं ॥१२॥ तेसिं सीसो जिण चन्दो । सूरि नामा समुप्पन्नो ॥ १२ ॥ संवेगरंगसाला । न केवलं कव्व-विरइणाजेण । भव्वजण विम्हयकारी । विहिया संयम पवित्तीवि ॥ १३ ॥ ससमय पर समयन्नू । विसुद्ध सिद्धांत देसना कुसलो । सयल महिवलय वित्तो । अन्नो अभयदेव सूरित्ति ॥ १४ ॥ जेण लंकार धरी । सलक्खणा वरपया पसन्नाय ॥ नवांगवित्तिरयणेण । भारइ कामिणिव्वकया ॥ १५ ॥ तेसिं अंतिथविणेओ । समत्थ सत्थत्थ बोह कुसलमई । सूरि पसन्नचन्दो । चन्दोव्व जणमणा-णंदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेणं सिरिसुमइ । वायगाणं विनेयलेसेण ॥ गणिणा गुणचन्देणं । रइअं सिरि वीरचरिय मिणं ॥ १७ ॥ इत्यादि

देखिये ऊपरके पाठकी "भवजलहि वीइ संभंत भविय संताण

तारण समत्थो योहित्थोव्व महत्थो सिरि सूरिजिणेसरो पयसो ॥ ९ ॥ गुरु सीराओ धवलाओ सुविहिया साहु सन्तती जाया हिम वताऊ गगुव्व निग्गया सयल जण पूज्जा ॥ १० ॥ इन गाथाओंमें भव्यजीवोंको भवजलधिके दुखसे पार उतारनेमें नाव समान श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे सब जनोंके पूज्यने योग (हीमवन्त पर्वतसे गङ्गानदीके निकलनेकी तरह) सुविहित याने खरतर सन्तती चली अर्थात् साधुके वर्तावमें शुद्ध चलने रूप सुविहित खरतर परम्परा चली ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है सो सुविहित कहो अथवा खरतर कहो दोनों शब्द पर्याय वाची एकार्थ वाले हैं क्योंकि पहिले श्रीअणहिलपुर पट्टनमें चैत्यवासिलोगोंने वहांके राजाको अपने वशीभूत करके उनसे पट्टा (हुकुम नामा) लिखा लिया था कि इस नगरमें हम लोगोंके समुदाय (चैत्यवासियो) के सिवाय अन्य जैन श्वेतांबर मुनि रहने न पावे सो इस तरहकी श्रीवनराज बावड़ाने अपनी स्वार्थ सिद्धताकी बात मंजूर कराके क्रियापात्र शुद्ध मुनियोंके आभावसेअपना मनमाना उपदेशसे भद्रजीवोंको अपने गच्छ परम्पराके और दृष्टि रागके फन्देमें फँसाकर शिथिलाचारी होते हुए कितनीक बातोंमें अविधि करके उत्सूत्रतासे अपनी बात जमा बैठे थे इसलिये इस नगरमें चैत्यवासियोंके सिवाय अन्य शुद्ध संयमी जैन मुनियोको रहनेका स्थान भी नहीं मिल सकता था उससे साधुओका आना जाना इस नगरमें प्रायः बन्ध हो गया था तब श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराजकी आज्ञानुसार श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज उपरोक्त अनर्थका निवारण करके भव्यजीवोंको विधिमार्गकी सत्य बातोंमें प्रवर्तमान करनेके लिये और शुद्ध संयमी साधुओंका आना जाना शुरू करानेके लिये इस अणहिलपुर पट्टणमें पधारे सो जब चैत्यवासियोंके

सीखांने (कहने) से उनोंके नोकर लोगोंने श्रीजिनेश्वरसूरिजी को नगर छोड़कर बाहिर चले जानेका कहा तब इन महाराजने सोमेश्वर नामा राज्यपुरोहितकी सहायतासे श्रीदुर्लभराजाकी राज्यसभामें उन चैत्यवासियोंके साथ विवाद करके उन्होंको हटाये तब राजाने इन महाराजको खरतर याने साधुके वर्ताव में-अतिशय विशेष सच्चे मार्गमें चलने वाले सुविहित अर्थात् शुद्धसाधु आप हैं ऐसा कहके अपने नगरमें ठहरनेकी आज्ञा दी।

तबसे महाराजका वहां रहना हुआ तथा अन्य भी शुद्ध संयमियोंका आना जाना शुरू होगया और चैत्यवासियोंकी पोल भी खुलती गई उन्होंकी माया फंदसे बहुत भव्य जीवों का छुटकारा होगया और विधिमार्गका शुद्ध व्यवहारसे श्रीजिनाज्ञाकी आराधना करके आत्म कल्याणके रस्ते लगे और इन महाराजके उपदेशसे तथा शुद्धवर्तावके देखनेसे राजा भी महाराजका भक्त होगया और महाराजके पास धर्मशास्त्रोंका अध्ययन भी करने लगा और जीवदया वगैरह धर्म कार्योंमें और न्यायमें वर्तने लगा था और उपरोक्त कारणसे ही तो इन महाराजके समुदाय वाले उस नगरमें शुद्ध संयमी सुविहित (खरतर) कहलाने लगे सो ही नामसे गच्छ प्रसिद्ध होगया इसीलिये श्रीगुणचन्द्र गणिजीने विक्रम संवत् ११३९ वर्षे श्रीवीरप्रभु का चरित्रकी रचना करी उसके अन्तकी प्रशस्तिमें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे खरतर (सुविहित) साधुओंकी सन्तती परम्परा जाता अर्थात् शुरू होनेका खुलासा पूर्वक लिखा है सो सुविहित कहो अथवा खरतर कहो दोनों शब्द पर्यायवाची एकार्थ सूचक है और 'वसति वासी' याने निर्दोष मकानमें ठहरने वाले शुद्ध साधु कहो तो भी सुविहित-खरतरके तात्पर्य को प्रगट करनेवाला होनेसे तीनों शब्द एकार्थवाले हैं।

और श्रीमहाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षासे तो अनादिसे सुविहित खरतर वसतिवासी शुद्ध संयमियोंकी सन्तती शुरू है तथा इस भरत क्षेत्रकी इन्ही अवसर्प्पिणीकी अपेक्षासे श्रीऋषभदेव स्वामीजीसे शुरू होनेका कहो अथवा निज निज शासनकी अपेक्षासे शासन नायक श्रीवर्द्धमान स्वामीजीसे सुविहित खरतर वसतिवासी शुद्ध सयमियोंकी सतती शुरू समझो, परन्तु भगवान्‌के मोक्ष पधारे बाद अनुमान हजार वर्ष किंचित् किंचित् किसी किसीने शिथिलाचार चैत्यवासकी प्रवृत्ति करी थी सो श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजके समय एकमें तो अणहिलपुर पट्टण जैसे ग्राम नगरोंमें चैत्यवासी लोगोंने अपना पूरा जोर जमा लिया था, तथा अपने क्षेत्रोंमें शुद्ध संयमियोका विहार राजाओंके हुक्म से बन्ध करा दिया और अपनी मति कल्पना मुजब इहलोक स्वार्थके लिये उत्सूत्रतासे और कुयुक्तियोंसे भव्यजीवोंको अपनी माया जालमें फँसाकर अविधि रुप उन्मार्गमें गेरकर अपने अपने गच्छकी अन्ध-परम्पराके और दृष्टिरागके बन्धनसे भव्य जीवोंको खूब बांध लिये थे इस तरहका महान् अनर्थ करके अन्य शुद्ध सय-मियोके और विधि मार्गके द्वेषी बना लिये थे तब श्रीजिने-श्वर सूरिजी महाराज अपने गुरु भाई श्री बुद्धिसागर सूरिजीके साथ उपरोक्त महान् अनर्थका निवारण करके शुद्ध सयमियोका विहार शुरू करनेके वास्ते अणहिलपुर पट्टणमें पधारे और राज्य सभामें चैत्यवासियोंसे शास्त्रार्थ करके उन्होंको पराजय किये उससे सयमियोंका विहार होने लगा और इन महाराज की समुदायमें उग्रविहारी शुद्धसयमी शासन प्रभावकोकी परम्परागत बहुत शिष्य प्रशिष्यादिकी समुदायमें साधुओंकी वृद्धि हुई। सो चैत्यवासियोंको हटा करके राजासे खरतर

विरुद पाये और शुद्ध संयमियोंका अणहिलपुर पट्टणमें विहार-खुला कराने वाले होनेसे इन्होंको सुविहित खरतर वसति-वासियोंके जन्मदाता अर्थात् संतती चलानेवाले कहनेमें आते हैं इस लिये श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज खरतर सुवि-हित सन्ततीके जन्मदाता याने सुविहित खरतर समुदायकी परम्पराके चलाने वाले माने तो क्या पहिले सुविहित सन्तती तीर्थंकर महाराजोंसे नहीं थी ऐसी किसी तरहकी शंका करनेका कोई भी कारण नहीं है।

देखिये दुर्लभराजा जैसे बुद्धिमान् भी शुद्ध संयमियोंके दर्शन और उपदेशके अभावसे अपने नगर निवासी द्रव्य लिंगी शिथिलाचारी आचार्य नाम धारक चैत्यवासियोंको ही शुद्ध संयमी जैनी साधु मानता था परन्तु यह तो श्री जिनेश्वर-सूरिजी महाराजके संसर्गसे ही सब भेद खुल गये तबसे ही तो दिनों दिन चैत्यवासियोका जोर घटता गया और शुद्ध संय-मियोंकी समुदाय भी बढ़ती गई तथा देशान्तरोंमें विहार भी होने लगा तबसे विशेष रूपसे सुविहित सन्तती प्रसिद्धिको प्राप्त होती भई इससे इन महाराजको खरतर समुदायकी सन्तती चलाने वाले कहनेमें किसी तरहकी विरुद्धता नहीं आ सकता है।

और उपरोक्त पाठमें खरतर शब्दके अर्थ वाला ही सुविहित शब्द शास्त्र करने कथन किया परन्तु दुर्लभराजाकी सभामें चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ होने सम्बन्धी खुलासा पूर्वक विस्तारसे नहीं लिखा जिसका कारण तो यही है कि प्रशस्तिके पाठमें कथानक रूपकी बात विस्तारसे या संक्षिप्तसे भी प्रायः करके नहीं लिखी जाती किन्तु जिन जिन पूर्वाचार्योंका संबंध आवे उन्होंके विशेषण सहितसे नाम मात्र ही लिखनेमें आते हैं

सो ऐसा तो बहुत प्रशस्तियोके पाठोंमे देखनेमें आता है, देखिये? श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी महाराजने तपस्या करी उससे इन्होंको राणाकी तरफसे 'तपा' का विरुद मिला ऐसा वर्त्तमानिक सब तपगच्छवाले मानते हैं, परन्तु इन्ही महाराजके शिष्य श्रीदेवेन्द्र-सूरिजी महाराजने श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिके अन्तकी प्रशस्तिके पाठमें तथा श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने श्रीवृहत्कल्पवृत्तिकी प्रशस्ति-के पाठमें, इत्यादि अनेक पाठोमें श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीका नाम मात्र ही देखनेमें आता है परन्तु उन्होंने आंबीलकी तपस्या करी उससे राणाने 'तपा' विरुद दिया, उस दिनसे तपगच्छ प्रसिद्ध हुआ, ऐसा नहीं लिखा और 'तपस्वी' या 'तपा विरुद' धारक तपगच्छकी सन्तती चलाने वाले ऐसा भी किसी तरहका विशेषण नही लिखा तो क्या यह बात नही मानी जाती, सो तो नही? किन्तु विशेषरूपसे प्रगटपने माननेमे आती है, इसलिये कथा-नक रूपकी बातको प्रशस्तिकार खुलासा पूर्वक लिखे, या न लिखे यह तो ग्रन्थकारकी इच्छाकी बात है, परन्तु प्रशस्तिमें कथानककी बातको न लिखने पर प्रसिद्ध प्रचलित बातको नही मानना या निषेध करनेका व्यर्थ हठवादका कदाग्रह करना सो न्याय विरुद्ध होनेसे आत्मार्थियोको सर्वथा त्यागने योग्य है, तिसपर भी कोई अभिनिवेशिक कदाग्रही हठवाद करें, तो अब यहां दुर्लभराजाकी सभामें चैत्यवासियोके साथ शास्त्रार्थ होने सम्बन्धी नीचेमे प्राचीन पाठ दिखानेमें आवे सो देखो।

१० दशवा–और भी ऊपरकी बात सम्बन्धी सुप्रसिद्ध सवा लक्ष ब्राह्मण क्षत्री महेश्वरी वगैरहके कुटुम्बोको प्रतिबोध करके जैनी श्रावक बनाने वाले तथा चौसठ योगनी और बावन वीर वगैरह अनेक देवी देवताओको अपने वशमें करके जैनधर्मकी महान् उन्नति करने वाले बड़ेही शासन प्रभावक, जङ्गम युग

प्रधान श्रीदादाजी नामसे प्रख्यात श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजनें विक्रम सम्वत् ११८० के अनुमान श्री "गुरुपार तंत्रय" नामा-स्तोत्र बनाया है उसमें श्रीदुर्लभराजाकी राज्यसभामें श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने चैत्यवाशियोंके साथमें विवाद (शास्त्रार्थ) करके उन्होंको हटाये ऐसा खुलासा पूर्वक कथन किया है सो छपा हुआ श्री "गुरुपारतंत्र" के पृष्ट १० से १४ का मूल व्याख्या भावार्थ सहित पाठ नीचे मुजब है।

अथ वसति मार्ग प्रकाशक श्रीजिनेश्वरसूरि स्तुतिं गाथा त्रयेणाह ॥ "सुहसील चोर चप्परण पच्चलो निच्चलो जिण मयंमि ॥ जुग पवर सुद्ध सिद्धन्त जाणउ पणय सुगुण जणो ॥ ९ ॥ पुरउ दुल्लहमहि वल्लहस्स अणहिलवाडए पयडं॥ मुकाविआरिउणं सीहेण व दव्वलिंगिगया ॥ १० ॥ दसमच्छेरय निसिविप्फुरंत सच्छन्दसूरि मयतिमिरं॥ सूरेणव सूरिजिणेसरेण हयमहिय दोसेण ॥ ११ ॥"

व्याख्या ॥ सुखशीलचौर निराकरण समर्थः, जिनमते निश्चलः, युगप्रवर शुद्ध सिद्धान्त ज्ञातः, प्रणत सुगुण जनः (चप्परण पच्चल शब्दौ क्रमेण निरास समर्थ वाचकौ) ॥ ९ ॥ (येन) अणहिल्लपाटके दुर्लभमही वल्लभ स्य पुरतः विचार्य सिंहेन गजा इव प्रगटं लिंगिनः मुक्ताः ॥ १० ॥ अहित दोषेण सूरिजिनेश्वरेण दशमाश्चर्य निशि विस्फुरत्स्वच्छन्दसूरि मत तिमिरं सूरेणेव हतम् ॥ ११ ॥

भावार्थ—विषय सुखमें लंपट केवल साधु वेषकोहि धारण करनें वाले, भक्त जनोंके जैन सम्यक्त्व बोधि रत्नोंको असदुपदेश द्वारा चुरानें वाले, ऐसे लिङ्गी साधुओंको जिनराज सिद्धान्तोक्त युक्ति पूर्वक बलात्कारसे मत खण्डनमें समर्थ और जिन मतमें निश्चल और युगप्रवर सुधर्म्मस्वामीके निर्दोष अङ्गोपाङ्गरूप सिद्धान्तके निरन्तर अभ्यासमे प्रसिद्ध और प्रणाम करते हैं सद्गु-

गुणी जन जिणको ऐसे ॥ ९ ॥ अणहिल्ल पाटक नामके नगरमें दुर्लभ सच्चक राजाके समक्ष श्रीजिनेश्वरसूरिने शिथिलाचारी साधुओंसे वादप्रतिवाद किया और जैसे सिंह हाथिओंसे सामना कर उन्हें चीरकर फेंक देता है वैसेही श्रीजिनेश्वरसूरिने शास्त्रार्थ में उन शिथिला चारियोंको पराजित किया ॥ १० ॥ जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारको सत्वर नष्ट करता है वैसे ही रागादि दोष रहित सूरिजिनेश्वराचार्यनें दुषम असयमीरूप पूजा लक्षण आश्चर्यरूप रात्रिमें स्फुरायमाण स्वच्छन्द शिथिलाचारियोंके मतरूप अन्धकारको शीघ्र नष्ट किया ॥ ११ ॥

११ और इन्हीं महाराजनें श्रीगणधर सार्द्ध शतकमें ऊपर की बातको खुलासा पूर्वक कही है जिसका पाठ नीचे मुजब है

अथ-वसति वासोद्धारकरा भारधारण धोरेयान् ॥ श्रीजिनेश्वरसूरि युगमवरान् शरणी कुर्वन् गाथा त्रयोदशकमाह ॥

तेसिं पय पउम सिवा रसिउ भमरुव्व सव्व भमरहिओ ॥ ससमय पर समय पयत्थ सत्थ वित्थारण समत्थो ॥६४॥ अणहिल्ल वाडयनाड इव्व दसिय सुपत्तसदोहे ॥ पउरपए बहूक विदूसगेय सन्नायगा णुगए ॥६५॥ सठिय दुल्लहराए सरसइ अको वसोहिय ॥ सुहए मज्झेरायसह पविसिऊण लोयागमाणु मयं ॥ ६६ ॥ नामाय रएहि समं करिय वियारं॥ वियार रहिएहिं वसहि निवासो साहुण ठाविउ ठाविओ अप्पा ॥६७॥ परिहरिय गुरुकमागय वरवत्ताएय गुजरत्ताए वसहि निवासो जेहिं फुडी कउ गुजरत्ताए ॥६८॥ इत्यादि

ऊपरके पाठकी लघु वृत्तिका पाठ नीचे मुजब है :—

व्याख्या॥वक्ष्यमाण त्रयोदश गाथांत स्थित तेसिं जिणेसरसूरीणा चरणसरणं पवज्जामीति संबंध ॥ य कीदृश तेषां श्रीवर्द्धमानाचार्याणां पाद पद्म सेवा रसिक चरणारविन्दपर्युपासिगाढासक्त, किवदित्याह॥ भ्रमरवत् मधुकरइव, सर्वेपु शास्त्रेपु भ्रमेण संशयेमरहितः

सर्व भ्रम रहितः ॥अतएव स्वसमय परसमय पदार्थ सार्थः विस्तारण समर्थ स्वसिद्धांत परसिद्धांतानां पदार्थ सार्थास्तत्र पदानि विभक्ति-तानि तेषां अर्था पदार्थास्तेषां सार्थासमूहास्तेषां विस्तारणे विस्तर प्रकाशनेपटुः ॥६४॥ ये श्रीजिनेश्वराचार्यैः नाममात्र धारकाचार्यैः समं सह विचारं धर्म्मवादं कृत्वा वसतौ निवासोऽवस्थानं साधूनां स्थापित प्रतिष्ठापितः, प्रतिष्ठितस्थापितः स्थिरी कृतः आत्म-कीर्त्यालंकृतइत्यर्थः ॥ किंविशिष्टैर्यैः विवादैः क्वबसत्ति व्यवस्था-पनं, अणहिल्ल पाटके अणहिल्ल पाटकाख्य पत्तने कीदृशे पाटके नाटक इव, दशरूपाख्ये शास्त्रविशेषे इव कीदृशे ॥ अणहिल्ल पाटके नाटके च,उभयोरपि श्लिष्टविशेषण सप्तकमाह॥दंसिय सुपत्त संदोहे, दर्शितश्चक्षुर्विषयतांनीतः सुपात्राणां सज्जनानां स्थालक कच्चो लादीनां हट्टेस्थापितानां संदोहः समूहो यत्र ॥ नाटक पक्षे, राम लक्ष्मण सीता लंकेश्वर विभीषणादीनि सुपात्राणि ज्ञेयानि, तस्मिन् दर्शित सुपात्र संदोह ॥ १ ॥ संदेहे इति पाठेतु, पत्तने पत्त नपक्षेऽसमंजसचारित्र साधुवेषविडंबक कुयति दर्शनेन भव्यानां मनस्य यं संशयः यदुत किमस्ति क्वापि सत्पात्रं नवेति, अतउक्तं, दर्शित सुपात्र संदेहे॥नाटक पक्षे, दर्शितानि सुपात्राणां रामादीनां संसम्यक्देहाः शरीराणि यत्र, तस्मिन् दर्शितसुपात्र संदेहे ॥ १ ॥ तथा ॥ पउरपए इति, प्रचुराणि प्रभूतानि प्रतिगृहद्वारकु-पिका सहस्र लिंग महातडाग वाप्यादिसद्भावेन पयांसि जलानि यत्र, तस्मिन् प्रचुर पयसि ॥ नाटक पक्षे ॥ प्रचुराणि प्रलम्बानि दीर्घसमासानि पदानि यत्र तस्मिन् प्रचुर पदानि ॥ २ ॥ बहुकवि दूसगे इति, बहूनि अनेकानि कवयः काव्य कर्त्तारः दुष्यानिव-स्त्राणि च यत्र तस्मिन् बहुकविदूषके ॥ नाटक पक्षेतु ॥ बहुकाः प्रभूता विदूषका क्रिडा पात्राणि यत्र तस्मिन् बहुक विदूषका ॥ ३ ॥ तथा ॥ संनायगाणुगये इति, श्रीमन्नायके वशिष्ट मण्डल

गृह ग्रामादिस्वामिभिरनुगते ॥ नाटक पक्षेतु, ललित शात उदानु-
उद्धत सत्वश्चतुर्विधैर्नायकैरनु गतो ॥ ४ ॥ तथा सद्दियदुल्लहराए
इति, सहऋध्यावर्त्ततेतिसर्द्धिक ऋद्धमान् दुर्लभ राज्ञो महीपति
यत्र तस्मिन् सार्द्धिक दुर्लभ राजा ॥ नाटक पक्षे ॥ सती शोभना
वैराग्य युक्ता धीर्बुद्धिर्येषाते सार्द्धिका स्तेषां दुर्लभोदु प्रापो
राग श्चेतशोऽनुबधो यत्र तस्मिन सर्द्धिक दुर्लभ राग ॥ ५ ॥
तथा ॥ सर सइअको वसोहिए इति, सरस्वती नाम नदी तस्या अक
उत्सगस्तेन उपशोभिते विराजिते ॥ नाटक पक्षे च ॥ सरस्वती
भारतीलक्षणा वृत्ति ॥ अकावरर साश्रया स्तैरुपशोभितेतेषां
स्वरूप नाटकाद्वगन्तव्य ॥ ६ ॥ तथा ॥ सुहए इति, शोभना हया
अश्वा यत्र तस्मिन् सुहये ॥ नाटकपक्षेतु ॥ सुखदे कौतकप्रियाणां
शर्मदे ॥ ७ ॥ इति पक्षविशेषण समकार्थं ॥ किंकृत्वा विवाद
कृत मध्ये राजसभ राजसभामध्ये प्रविश्यउपविश्यकथ विवादकृ
त लोकश्च आगमश्च तयोरनुमत सम्मत यथा भवतीति गाथा ॥६५॥
६६ ॥ ६७ ॥ अथार्थ ॥ अमुमेवार्थंपुन सविशेषमाह॥वसत्या चैत्य-
गृह निराकरणेन परगृहावस्थितस्य सह विहार ॥ समय भाय या
ग्रामनगरादौ विचरणं वसति विहार सर्वैर्भगवद्भि: स्फुटीकृत:
सिद्धान्तोक्तोपि पुन प्रकटी कृत कस्यां गूर्जरयात्रायां सप्तसिहस्र
प्रमाण मण्डलमध्ये किं विशिष्टायां प्रगटीकृत गुरुक्रमागतवरवा-
र्तायामपि परिहृता अवगणिता गुरुक्रमागता गुरुपारंपर्यसमा-
याता वरवार्त्ताविशिष्टधर्मवार्ता यथातस्यामपि अपिसभावने
नास्तिकिमप्यत्रासभाव्य घटतएवैतदित्यादि ॥

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीवर्द्धमान सूरिजीके चरण कमलकी
सेवा भक्तिमें भ्रमरकी तरह विशेषरक्त और सर्व प्रकारके सदेह-
रूप भ्रमसे रहित और श्रीजैन शास्त्रोंके तथा अन्य मतके शास्त्रों

के अर्थको विस्तार करनेमें समर्थ, ऐसे श्री जिनेश्वर सूरिजी महाराजने गुजरात देशमें श्रीअणहिलपुर पट्टणमें श्रीदुर्ल्लभ राजाकी राज्य-सभामें चैत्यवासी आचार्य नामधारकोंके साथ साधुके क्रिया कर्त्तव्यका व्यवहार सम्बन्धी युक्ति और आगमानुसार धर्मवाद करके,वहां साधुका वसति मार्ग स्थापित किया उससे इन महाराजकी देश देशान्तरोंमें शोभा प्रसिद्धिको प्राप्त होती भई। यद्यपि शास्त्रोंमें तो वसतिमार्गको प्रकट ही कथन किया हुआ है परन्तु इस क्षेत्रमें शिथिलाचारी द्रव्यलिंगियोंसे लुप्त प्रायः होगया था इसलिये इन महाराजने प्रगट किया और इन्हीं अणहिलपुर पट्टणको "दशरूप" नामा नाटक सदृश ओपमा देकर सात विशेषणोंकी समानता दिखाई है सो तो खुलासा ही लिखा है और ऊपरके पाठसे वसतिमार्ग प्रकाशक कहो या खरतर मार्ग प्रकाशक कहो अथवा वसतिवासी सुविहित मार्ग प्रकाशक कहो सबका भावार्थ एकही है सो तो ऊपरके लेखसे विवेकी-तत्वज्ञ पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं:—

और इसी तरहसे उपरोक्त पाठकी वृहद्वृत्तिमें तथा श्रीसंघपट्टककी वृहद्वृत्ति और षट् स्थानक प्रकरण वृत्ति वग़ैरह अनेक शास्त्रोंमें दुर्लभराजाकी राज्य सभामें श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजनेचैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ करके उन्होंको हटाये और संयमियोंका विहार शुरू करानेका खुलासापूर्वक लिखा है उन सब पाठोंको विस्तारके कारणसे यहां नहीं लिखता हूं, परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो उपरोक्त शास्त्र पाठ स्वयं देख लेवेंगे।

१२ बारहवां और भी श्रीखरतरगच्छकी गुर्वावली श्रीआचार रत्नाकर के दूसरे प्रकाशमें छप कर प्रसिद्ध हुई हैं उसके पृष्ठ १०४। १०५। १०६ में नीचे मूजिब लिखा है।

श्रीवर्द्धमानसूरिके पाट ऊपर श्रीजिनेश्वरसूरि हुए सो, स० १०७९ मे आचार्य पदको प्राप्त होके श्रीबुद्धिसागरसूरिके साथ मरुस्थल देशमें विहार करके क्रमसे गुर्जर देशमें अणहिल्लपुर पट्टणमें गए, वहां दुर्लभ राजाका पुरोहित शिवशर्मा नामें ब्राह्मण जो अपना मामाथा तिसके घरमें गए, वहां शिवशर्मा ब्राह्मण अपने लड़केको वेद पदोका अर्थ बतला रहाथा, उसमें कितनेक वेद पदोंका उलटा अर्थ बताने लगा, तब गुरु बोले, इस मुजब नही है, हम कहैं उस मुजब है, तब सच्चा अर्थ सुनके प्रोहित बोला कि आपको इस माफक वेदके अर्थका जाणपणा किसतरैं हुआ, आप ससारी अवस्थामें कौन नगरके अरु किसके पुत्र थे, तब महाराजने कहा कि, हम बणारसी नगरीके, सोम नामें ब्राह्मणके पुत्र हैं, तब शिवशर्मा पुरोहितने पिछानें कि ये तो मेराभाणेज है, ऐसा जाणके बहुत भक्ती मान हुआ, बहुमान पूर्वक अपने मकानमें रक्खे, वहा रहते और भी केई पदार्थो में पुरोहितके दिलमें सन्देहथे सो सर्व दूर किये, तब शिवशर्मा पुरोहित बहुत महाराजका रागी हुआ, तब वहाके चैत्यवासियोने विचारा कि श्रीजिनेश्वरसूरिके इहां रहनेसे अपना पड़दा खुल जायगा, अपनेको कोई न मानेंगा, सर्व लोक इनोके रागी हो जायेंगे, इसमें कोई उपाय करना चाहिये, ऐसा विचारके दुर्लभराजाके पास जायके चुगली किया कि दिल्लीसे ग्रन्थ लोटरू चोर आये हैं, सो आपके पुरोहितके इहां ठहरे हैं, तब राजा एसा वचन सुनके पुरोहितको बुलाकर पूछने लगा कि तेरे घर चौर आये सुना है, तब पुरोहित बोला कि, मेरे घरमें चौरतो कोई नहीं आए है, परन्तु शुद्धक्रिया पात्र साधु आये हैं जो उनोको चौर कहते होगे सो आप चौर

होंगे, तब राजाने शुद्धाचार देखनेके लिये श्रीजिनेश्वरसूरीको अपने पास बुलाये और चैत्यवाससियोंको भी बुलाये, जब श्रीजिनेश्वर सूरि राजाकी सभामें आए तब राजानें नमस्कार करा, तब गुरू महाराजने धर्मलाभ आशीर्वाद देके अपने बैठने योग्य स्थानमें, कंबली बिछाके इरियावही पडिक्क-मके जमीनकी पडिलेहणा करके बैठें। तब राजाने विचारा कि शुद्ध आचार ऐसा ही होता है और चैत्यवासी जो आये सो राजाको आशीर वाद देके, इसी तरह विस्तरोंके ऊपर बैठ गये तब राजाने चैत्यवासियोंका विरुद्ध आचार देखके श्री जिनेस्वरसूरि महराजको साधुका आचार पूछा तव महाराज बोले आपका देवाधिष्टित ज्ञानका भण्डार है जिसमें सर्व मत स्वरूप निवेदक पुस्तक है उसमें से आपके पण्डितोंके पास एक या दो पुस्तक मंगवाइये तब राजाने भण्डारमेंसे पुस्तक मंगवाया सो पण्डितोंके दशवै कालिक पुस्तक हाथ लगी। सो जब राजसभामें लेके आये। तबगुरू महाराजनें कहा, इस पुस्तककों चैत्यवासियोंके हाथमें देके आप साधुका आचार सुनों, तब चैत्यवासी पुस्तक बाचने लगे, सो जहां बहुत साधुका आचार आने लगा वहांके पाठ वे छोड़नें लगे, तब गुरूमहाराज बोले, कि राजसभामें दिन को चोरी होती है, तब राजाने पूछा किस तरेसें, गुरूनें कहा; कि यहां इणोंनें साधुके आचारके कई पन्ने छोड़ दिये हैं, तब राजा बोला कि,आप वांचो। तब गुरूमहाराजनें कहा हमारे बांचनेंसे ये लोग फिर कल्पित बात कहेंगे, इससे आपके बड़े पण्डितोंके पास ये पुस्तक वंचावो, तब राजाने अपने पण्डितोंके पास उस पुस्तक मेंसे साधुका आचार सुना, तब उसी आचारमुजिब श्रीजिनेश्वर

सूरिका सत्य आचार देखा, और चैत्यवासियोंका उस पुस्तक-में विरुद्ध आचार देखा, इससे सारी सभाके सामने राजाने कहा ॥ अतिशय पणें करके श्रीजिनेश्वरसूरि सच्चा हुवा, इसमें ये खरतरा है, और चैत्यवासी हारगया, इससेती ये कवला है ॥ हारा सो कवला थया ॥ जीता खरतर आणिया ॥ तिणीकाल श्रीसघमें । गच्छ दोय वखाणिया ॥ १ ॥ इसी तरे सुविहित पक्षधारक श्री जिनेश्वर सूरि, वीर सवत् १५५० ॥ विक्रम सवत् १०८० में खरतर विरुदकों प्राप्त भए । तबसें कोटिक गच्छ, चन्द्रकुल, वयरी शाखा, खरतर विरुद, ऐसा भेद स्थिवर साधु, नवीन साधुओंसे कहनें लगे, इहासे मूल कोटिक गच्छका नाम खरतर गच्छ प्रसिद्ध हुआ, अतिशयेन खरा सत्य प्रतिज्ञा ये ते खरतरा, इत्यादि खरतर विरुदकी प्राप्त होनेंवाले श्री जिनेश्वर सूरि बड़े प्रभावीक भए ॥ ४० ॥"

१३ तेरहवां—और भी अन्यमतके न्यायवान् मध्यस्थ विद्वान्ने अङ्गरेजी भाषामें सभामें व्याख्यान (भाषण) करते समय अनेक शास्त्रानुसार जैनधर्मके प्राचीन इतिहास संबधी बहुत खुलासा किया था उसमें खरतरगच्छ तथा तपगच्छकी पट्टावलियोंका कथन करनेमें तपगच्छकी पट्टावलीको पहिले कथन न करके खरतरगच्छकी पट्टावलीको पहिले कथन करी थी और इसके बाद तपगच्छकी पट्टावलीको कथन करी थी उसी खरतर-गच्छकी पट्टावलीमें भी श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे 'खरतर' विरुदलिखाहै उसका गुजरातीभाषामें अनुवाद सन् १९०८ जुलाई मासके "सनातन जैन" नामा मासिकपत्रके पृष्ठ ३७४ से ३८१ तक में प्रसिद्धहुआ था जिसका उत्तराभीसेमुजबहै —

"डॉक्टर जहॅान्नेस क्लाट्ट पी० एच० डी० (बर्लिन) ए लखेलो अगरेजी निबन्ध-डाक्टर भाउदाजी रॉयल ऐसीआटीक

सोसाइटीनी मुंबई शाखा पासे (१२ मी डिसेंबर १८६७ ने दिने) निबंध वांच्यो हतो तेमां तेणे मेरुतुङ्गनी थेरावलि अने बीजां पुस्तकाने आधारे जैनोना प्राचीन इतिहास पर घणो प्रकाश पाड्यों हतो। आ पृष्ठोमां जैनोना बे मुख्य गच्छ खरतर अने तप गच्छनी पट्टावलिओमांथी सौथी अगत्यनी तारीख—काल हुं आपीश, आ सर्व २२ लिखीत प्रतोमांथी लीधुं छे। तेमांथी २० प्रतो मुंबईथी, के. एम. चॅटफिल्ड मुंबईना केलवणी खाताना डायरेकटरनी सहायता थी मली छे तेथी तेनो उपकार मानुं छुं अने बीजी बे प्रतो बर्लिनमांथी मेलवी छे।

खरतर गच्छनी पट्टावलि।

महावीर—कुल इक्ष्वाकु, गोत्र काश्यप, पिता क्षत्रियकुण्ड ग्रामना राजा सिद्धार्थ, माता त्रिशला, जन्म चैत्र शुदि त्रयोदशीमां, निर्वाण चतुर्थ आराना अंत पहेलां ३ वर्ष अने ८॥ महिनें पापाशहेरमां ७२ वर्षनी उमरे कार्तिक अमावास्याने दिने, तेमने ११ शिष्यो (गणधरो) हता।

तेना प्रथम शिष्य गौतम उर्फे इन्द्रभूति हता. तेमना गोत्रनुं नाम गौतम, पितानुं नाम ब्राह्मण वसुभूति, मातानुं नाम ब्राह्मणी पृथ्वी हतां. जन्म मगधदेशना गोबर ग्राममां थयो. निर्वाण वीरना निर्वाण पछी १२ वर्षे ९२वर्षनी उमरे राजगृहीमां पाम्या. गौतमे दीक्षित करेला साधुओ पोतानी पहेलां गत थवाथी, अने बीजा नव गणधरोअ पोताना शिष्य साधुओ सुधर्माने सोंपी देवा थी,पांचमा गणधर सुधर्मानीपाट गणाई अने ते पाट पांचमा आराना अंते थनार दुःप्रसहसुरि सुधी चालशे।

वीर पछी १४ वर्ष गयां पछी जमालि नामनो पहेलो निन्हव जाग्यो, अने १६ वर्ष गयां पछी तिश्यगुप्त (प्रादेशिक) नामनो बीजो निन्हव थयो।

२ सुधर्मा—जन्म कोल्लाक ग्राममां, गोत्र अग्नि वैश्यायन, पिता धम्मिल्ल, माता भद्दिल्ला; गृहस्थपणे ५० वर्ष, छद्मस्थ तरीके ४२ वर्ष अने केवली तरीके आठ वर्ष रह्या. निर्वाण वीर पछी २० वर्षे १०० वर्षनी वये पाम्या।

३ जम्बू—जन्म राजगृहीमां, गोत्र काश्यप, पिता श्रेष्ठी ऋषभदत्त, माता धारिणी; गृहस्थ तरीके १६ वर्ष, छद्मस्थ तरीके २० अने केवली तरीके ४४ वर्ष रह्या. निर्वाण वीर पछी ६४ वर्षे ८० वर्षनी वये पाम्या. आ छेल्ला केवली हता।

४ प्रभव—गोत्र कात्यायन, पिता जयपुरना राजा विंध्य, गृहस्थपणे ३० वर्ष, सामान्य व्रती तरीके ४४ वर्ष (कोई ६४ कहे छे) अने आचार्य तरीके ११ वर्ष रह्या. मरण वीरना निर्वाण पछी ७५ वर्षे, ८५ (अथवा १०५) वर्षनी वये थयु।

५ सय्यम्भव—जन्म राजगृही, गोत्र वात्स्य; तेमणे शांतिजिनली प्रतिमानां दर्शन करवाथी जैन दीक्षा लीधी, पोताना पुत्र मनक वास्ते दशवैकालक सूत्र रच्युं, २८ वर्ष गृहस्थाश्रममां, ११ व्रती तरीके, अने २३ वर्ष आचार्य तरीके गाल्यां वीर पछी ९८ वर्षे, ६२ वर्षनी वये पचत्व पाम्या।

६ यशोभद्र—गोत्र तुंगीयायन, गृहस्थ पणे २२ वर्ष, व्रती तरीके १४ वर्ष, अने आचार्य तरीके ५० वर्ष रह्या. वीर पछी१४८ वर्षे ८६ वर्षनी वये मृत्यु पाम्या।

सम्भूति विजय अने तेना लघु गुरु भ्राता भद्रबाहु।

७ सम्भूति—विजय गोत्र माढर, गृहस्थपणे ४२ वर्ष, व्रती तरीके ४०, युग प्रधान तरीके ८ गाल्या अने वीर पछी १५६ वर्षे ९० वर्षनी उमरे गत थया।

८ भद्रबाहु—गोत्र प्राचीन, तेमणे उपसर्गहरस्तोत्र, कल्पसूत्र, अने आवश्यक; दशवैकालिक वगेरे १० शास्त्रो पर निर्युक्तिओ

રચી, ગૃહસ્થપણે વર્ષ ૪૫, વ્રતી તરીકે ૧૭ અને યુગપ્રધાન તરીકે ૧૪ વર્ષ રહ્યા, અને વીર પછી ૧૭૦ વર્ષે ૭૬ વર્ષની વયે પંચત્વ પામ્યા।

૯ સ્થૂલભદ્ર—(સમ્ભૂતિ વિજયના શિષ્ય, અહીં ભદ્રબાહુના શિષ્યો મૂકી દીધા છે) જન્મ પાટલીપુત્ર, ગોત્ર ગૌતમ, પિતા શકડાલ (તપાગચ્છની પટ્ટાવલીમાં શકટાલ) કે જે નવમા નંદના મન્ત્રી હતા, માતા લાછલદેવી (હેમચંદ્રના પરિશિષ્ટમાં લક્ષ્મીવતી) તેઓ કોશ્યાનામની વેશ્યાને જૈનધર્મમાં લાવ્યા, તે ૧૪ પૂર્વના જાણનારમાં છેલ્લા હતા, પણ તેમાં ફેરફાર નીચે પ્રમાણે કરવો જોઈએ :—

દશ પૂર્વાણિ વસ્તુદ્વયે ન ન્યૂનાનિ સૂત્રતોઽર્થતશ્ચપપાઠ અન્ત્યાનિ ચત્વારિ પૂર્વાણિ તુ સૂત્રત એવાધીતવાન્નાર્થત ઇતિ વૃદ્ધપ્રવાદઃ

તે ગૃહસ્થ તરીકે ૩૦ વર્ષ, વ્રતી તરીકે ૨૦ અને સૂરિ તરીકે ૪૯ વર્ષ રહ્યા, વીર પછી ૨૧૯ વર્ષે, ૯૯ વર્ષની વયે મૃત્યુશરણ થયા

વીર પછી ૨૧૪ વર્ષે અવ્યક્ત નામનો ત્રીજો નિન્હવ આષાઢાચાર્યે ઉત્પન્ન કર્યો, વીર પછી ૨૨૦ વર્ષે સમુચ્છેદિક નામનો ચોથો નિન્હવ અશ્વમિત્રે ઉત્પન્ન કર્યો અને વીર પછી ૨૨૮ વર્ષે ગંગ (દ્વિક્રિય) નામનો પાંચમો નિન્હવ થયો।

૧૦–૧૧ આર્યમહાગિરિ અને તેના લઘુગુરુભ્રાતા આર્યસુહસ્તિ

આર્ય મહાગિરિ–ગોત્ર એલાપત્ય; ગૃહસ્થ તરીકે ૩૦ વર્ષ, વ્રતી તરીકે ૪૦ વર્ષ, અને સૂરિ તરીકે ૩૦ વર્ષ રહ્યા। વીર પછી ૨૪૯ વર્ષે (સામાન્ય રીતે ૨૪૫ વર્ષે) ૧૦૦ વર્ષની ઉમરે મૃત્યુ પામ્યા।

સુહસ્તિન્–ગોત્ર વાશિષ્ઠ, ગૃહસ્થ તરીકે ૩૦ વર્ષ, વ્રતી તરીકે ૨૪ વર્ષ અને સૂરિ તરીકે ૪૬ વર્ષ રહ્યા। વીર પછી ૨૬૫ વર્ષે ૧૦૦ વર્ષની વયે મરણ પામ્યા। તેણે વીર પછી ૨૩૫ વર્ષે રાજ્ય કરતા રાજા અને શ્રેણિકની ૧૭ મી પેઢીએ ઉતરી આવેલા સંપ્રતિ રાજાને

पोताना जैनधर्ममां लाव्या, अने त्रिखंडोने प्रसाद, विम्बो आदि थी सुशोभित कर्युं अने अनार्य देशमां विहार करवानी स्थापना करी अवन्तिसुकुमाल अने बीजा घणाओने तेमणे जैन दीक्षित कर्या।

१२, आर्यसुस्थित—(आ सुहस्तिना शिष्य हता। आर्य महागिरिने बहुल अने बलिस्सह नामना बे शिष्यो हता। बलिस्सह ना शिष्योनी टीप आवश्यक अने नन्दीसूत्रनी स्थविरावलिमां आपेल छे) आमने कोटिक अने काकन्दिक नामना बे बिरुद हता। गोत्र व्याघ्रापत्य, गृहस्थ तरीके वर्ष ३१, व्रती तरीके १७ अने सूरि तरीके ४८ वर्ष रह्या अने वीर पछी ३१३ वर्षे ९६ वर्षनी वये पञ्चत्व पाम्या। आमनाथी कोटिकगच्छ जन्म पाम्यो, आमना लघुभ्राता नुं नाम सुप्रतिबुद्ध हतुं।

१३, इन्द्र दिन्न। १४, दिन्न, १५ सिंहगिरि—जातिस्मरण ज्ञानवान्।

आ वखते पादलिप्ताचार्य, वृद्धवादिसूरि अने वृद्धवादिसूरीना शिष्य सिद्धसेन दिवाकर (अपर नाम कुमुदाचार्य) थया। सिद्धसेन दिवाकरे उज्जयिनिना महाकाल मन्दिरमां रुद्रनुं लिंग तोडी तेमांथी पोताना कल्याण मन्दिर स्तवनना प्रभावे पार्श्वनाथनी प्रतिमा प्रगट करी बतावी। तेणे वीरना निर्वाण पछी ४७० वर्षे विक्रमादित्य जैन बनाव्या।

१६, वज्र—गोत्र गौतम पिता धनगिरि, माता सुनन्दा, जन्म तुम्बवनग्राममां वीर पछी ४९६ वर्षे थयो। गृहस्थ तरीके ८ वर्ष व्रती तरीके ४४ वर्ष अने सूरि तरीके ३६ वर्ष रह्या। वीर पछी ५८४ वर्षे ८८ वर्षनी उमरे कालवश थया। तेओ सिंहगिरि पासेथी ११ अङ्ग शिख्या, त्यार पछी तेओ १२ मुं दृष्टिवादांग दशपुर थी अवन्ति (उज्जयिनि) मां भद्रगुप्त पासे शिख्या

गया। १० पूर्व जाणनाराश्मां ते छेल्ला हता (वज्रस्वामितो दशम पूर्व चतुर्थ संहननादि व्युच्छेदः) अने तेणे जैन धर्मनो प्रचार दक्षिण तरफना बौद्ध राज्यमां कर्यो आ वज्र सां थी वज्र-शाखा थइ !

वीर पछी ५२५ वर्ष पछी शत्रुंजय तीर्थने तुटेलुं देखवामां आव्युं अने वीर पछी ५७० मां ते तीर्थनो जावडे पुनरुद्धार कर्यो। वीर पछी ५४४ मां त्रैराशिक नामना छट्ठो निन्हव रोहगुप्ते उत्पन्न कर्यो।

१७ वज्रसेन—गोत्र उत्कोसिक तेमणे सोपारकनां श्रेष्ठी जिनदत्त अने तेनी स्त्री ईश्वरीना चार पुत्र नामे नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति अने विद्याधरके जे चारे चार कुलोना स्थापक हता। तेमने जैन धर्म दीक्षित कर्या।

१८ चन्द्र—गृहस्थी तरीके ३७ वर्ष, व्रती तरीके २३ अने सूरि तरीके ७ वर्ष अेटले बधां मली ६७ वर्ष जीव्या।

तेज समये पुरोहित सोमदेव अने तेनी भार्या रुद्रसोमाना पुत्र आर्य रक्षित दशापुरमां वसता हता, ते पोते वज्र पासेथी। नव पूर्व अने १० मा पूर्वनो अेक खण्ड शीख्या अने ते सर्व पोताना शिष्य दुर्बलिका पुष्प मित्रने शिखाव्या।

वीर पछी ५८४ वर्षे गोष्टामाहिल नामनो सातमो निन्हव उत्पन्न थयो। वीर पछी ६०९ वर्षे दिगम्बरोनी उत्पत्ति थई।

१९ समन्तभद्र—तेनुं वनवासी पण नाम हतुं

२० देव—अपर नाम वृद्ध, २१—प्रद्योतन,

२२ मानदेव—शान्तिस्तवना कर्ता, २३ मानतुङ्ग—भक्तामर अने भयहर स्तोत्रोना कर्ता।

२४ वीर—वीर पछी ९८० वर्षे वल्लभी परीषद्‌मां लोहित्य सूरिना शिष्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमणे (आनुं देववाचक पण

नाम कहे छे अने तेना गुरुनु' नाम दुश्यगणि कहे छे) सिद्धान्तो छेखयद्ध कर्या। देवर्द्धिना समयमां अेकज पूर्व रह्यु हतु।

वीर पछी ९९३ वर्षे कालकाचार्ये भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीमां थी चतुर्थीपर पर्यु'षण पर्व फेरव्यु। अही हस्त लिखीत प्रतो Intercalate थाय छे अेटलेके अेकज नामना वे आचार्यो कालक पहेलां थया। तेमाना अेक नामे श्यामे प्रज्ञापना रची हती अने निगोदोपर टीका करी हती अने बीजाये गर्दभिल्लने वीर पछी ४५३ वर्षे हाकी कहाड्यो।

पछी हस्त लिखित प्रतो वधारे उमरे छे के जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण हता। तेओअे विशेषावश्यकादि भाष्य रच्यु' छे। तेना शिष्य नामे शिलाक अपर नाम कोटयाचार्ये' प्रथम अने द्वितीय अङ्गो ऊपर वृत्ति रची छे।

हरिभद्र—जन्मे ब्राह्मण हता, तेमने जिनभट्टे (उर्फे' जिनभद्रे) जैन धर्मनां दीक्षा आपी हती। हरिभद्रना वे शिष्यो हस अने परमहंसने भोट देशना बौद्धोअे मारी नाख्या हता। तेणे १४४४ (केटलाक १४०० कहे छे जिनदत्तना गणधर सार्द्ध शतक ऊपर थयेली टीकामां हरिभद्रना लगभग ३० ग्रन्थोनी टीप आपी छे तेमाना घणा हस्त लिखित छे) ग्रन्थो लख्या छे जेवां के—अष्टक, पञ्चाशक।

२५ जयदेव, २६ देवानन्द, २७ विक्रम, २८ नरसिंह, २९ समुद्र ३० मानदेव, ३१ विबुध प्रभ, ३२ जयानन्द, ३३ रविप्रभ, ३४ यशोभद्र, ३५ विमलचन्द्र, ३६ देव, सुविहित पक्ष गच्छना स्थापक, ३७ नेमिचन्द्र।

३८। उद्योतन आमना शिष्योथी वर्त्तमानना ८४ गच्छोनी उत्पत्ति थई उद्योतन पोते माथे लीधेली यात्रामा मृत्यु पाम्यां।

आ यात्रा ऋषभने वांदवा माटे मालवक देशथी शत्रुंजय ज-वानी हती।

सुस्थितना मरण अने विक्रमादित्य वच्चेना १५७ वर्षना आंतरामां (१३ थी १५) ए त्रण नामो जाणवा।

३९। वर्द्धमान खरतर गच्छना प्रथम सूरि। ते पहेलां चैत्य-वासी जिनचन्द्रना शिष्य हता पण पाछलथी उद्योतनना थया हता। तेणे सोम नामना ब्राह्मणना शिवेश्वर अने बुद्धिसागर नामना बे पुत्रोने अने कल्याणवती नामनी पुत्रीने दीक्षा आपी हती। दीक्षा वखते शिवेश्वरे जिनेश्वर नाम धारण कर्युं।

तदा त्रयोदश सुरत्राण छत्रोद्दालक चन्द्रावती नगरी स्था-पक पोरवाड ज्ञातीय श्री विमलमन्त्रिणा श्री अर्बुदाचले ऋषभ-देवप्रासादः कारितः

...... तत्राद्यापि विमलवसही इति प्रसिद्धिरस्ति। ततः श्री वर्द्धमान सूरिः संवत् १०८८ मध्ये प्रतिष्टां कृत्वा प्रान्तेऽनशनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः॥

४०। जिनेश्वर पोताना भ्राता बुद्धिसागरने लइ मरुदेशथी गुर्जरदेशमां चैत्यवासी साथे वाद करवा गया। (बुद्धिसागरना सम्बन्धमां श्लोक छे के

श्री बुद्धिसागर सूरिश्चक्रे व्याकरणं नवं।
सहस्राष्टक मानं तत् श्रीबुद्धिसागराभिधं॥

प्रभावकाचार—१९—९१)

गुर्जरदेशमां अणहिल्लपुरना राजा दुर्लभनी राजसभामां सर-स्वतिभांडागारमांथी दशवैकालिक सूत्र लावी साध्वाचार विषय-परनी गाथाओ वांची समजावी। जिनेश्वरे चैत्यवासीनो परा-भव कर्यो। आथी तेमणे 'खरतर' ए नामनुं बिरुद मेलव्युं।

४१। जिनचन्द्र—संवेगरङ्गशाला प्रकरणना कर्ता।

४२ अभयदेव—जिनचन्द्रना लघुभ्राता, पिता धारा नगरीना श्रेष्ठीधन अने माता धनदेवी, तेमनुं मूळ नाम अभयकुमार हतुं, अतिशय आत्मपीडन करवा थी तेने कोढ थयो हतो, हाथ तूटी पड्या हता पण एक चमत्कार थी सर्वरोग नाश पाम्यो हतो, अने ते स्तभनक पासे पार्श्वनी प्रतिमाने 'जयति-हुयण' स्तोत्र थी विनति करी हती, तेमणे नव अङ्ग पर टीकाओ लखी, अने गुर्जर देशमा कप्पडवणिज ग्राममा मृत्यु पाम्या ।

४३ जिनवल्लभ—पहेलां तेओ जिनेश्वरसूरि के जे कूर्चपुरगच्छना चैत्यवासी हता तेना शिष्य थया पछी थी अभयदेवना शिष्य हता, तेना रचित ग्रन्थो आ छे ;—पिंडविशुद्धि द्विप्रकरण, गणधरसार्द्धशतक, षडशीति वगेरे, सवत् ११६७ मा तेमने देवभद्राचार्यें सूरिपद आप्युं अने त्यार पछी छ महिने पचत्वपाम्या ।

तेमना वखतमां मधु खरतरशाखा जुदी थइ अने आथी पहेलो गच्छभेद थयो ।

४४ । जिनदत्त—पिता वाछिग मंत्री, माता विहद देवी, गोत्र हुम्बड, जन्म सवत् ११३२, मूळ नाम सोमचन्द्र, दीक्षाकाळ सवत् ११४१ अने सूरिमंत्र सवत् ११६९ ना वैशाख वदी छट्ठने दिने चित्रकूटमा देवभद्राचार्य पासेथी मळ्यो । तेमणे घणा शहेरोमां चमत्कार दर्शाव्या, आथी जैनधर्म घणो फेलाव्यो। तेमणे सदेहदोलावलि अने बीजाग्रन्थों रच्या (जेवी रीते गणधरसार्द्धशतक जे जिनवल्लभे रच्यो हतो तेज नामनो ग्रन्थ आमणे पण लख्यो हतो) सवत् १२११ ना आषाढ शुदी अेकादशिअे अजमेरमां मरणवश थया ।

सवत् १२०४ मा जिनशेखराचार्य रुद्रपल्ली आगळ रुद्रपल्लीय खरतर शाखा स्थापी, आ बीजो गच्छभेद थयो ।

४५ जिनचन्द्र—जन्म संवत् ११९७ भाद्रपद शुदि अष्टमी पिता शाह रासल अने माता देल्हण देवी, दीक्षाकाळ अजमेरमां सं० १२०३ ना फाल्गुन वदी नवमीने दिने आचार्यपद जिनदत्त विक्रमपुरमां संवत् १२११ ना वैशाख शुदी छट्ठने दिवसे आप्यु' (उमर १४। नी हती) मरण संवत् १२२३ ना भाद्रपद वदी चतुर्दशीने दिने दिल्लीमां थयु' त्यां तेमना नामनो स्तूप करवामां आव्यो, तेमना मस्तकमां मणि होवानु' कहेवाय छे।

४६, जिनपति—जन्म सं० १२१० चैत्र वदी ८, पिता शाह यशोवर्द्धन, माता सूहवदेवी, दीक्षा संवत् १२१८ ना फाल्गुन वदी ८ ने दिने दिल्लीमां लीधी, संवत् १२२३ ना कार्तिक शुदी त्रयोदशीअे तेमनु' पद स्थापन जयदेवाचार्ये कर्यु', अने संवत् १२७७ मां ६७ वर्षनी वये पाल्हणपुरमां मरण थयु'।

संवत् १२१३ मां आंचलिकमतनी उत्पति थई, अने संवत् १२८५ ना मां चित्रावालगच्छना जगच्चन्द्रसूरिअे तपगणनी उत्पति करी।

४७, जिनेश्वर—जन्म मरोटमां संवत् १२४५ मार्गशीर्ष शुदी ११, पिता भांडागारिक नेमिचन्द्र, अने माता लक्ष्मी, मूलनाम अम्बद, खेडानगरमां संवत् १२५५ मां दीक्षा लीधी ते समये वीरप्रभ नाम धारण कर्यु', संवत् १२७८ ना माघ शुदी ६ दिने सर्वदेवाचार्ये तेमनु' जालोर नगरमां पदस्थापन कर्यु', सं० १३३१ ना आश्विन वदी ६ ने दिने मरण थयु'।

तेज वर्षमा जिनसिंहसूरिअे त्रीजो गच्छभेद नामे लघु खरतर शाखा स्थापी (जिनेश्वरना शिष्य धर्मतिलकगणिये संवत् १३२२ मां जिनवल्लभना अजितशान्ति, स्तवपर 'उल्लासिक्कम' थी शरु थती वृति लखी)

४८ जिनप्रबोध—दुर्गप्रबोध व्याख्याना कर्ता, पिता शाह श्रीचन्द, माता सिरियादेवी, जन्म संवत् १२८५ मूलनाम पर्वत, दिक्षा सवत् १२९६ ना फाल्गुन वदी पञ्चमीने दिने थिरापद्र नगरमा लई प्रबोधमूर्ति नाम धारण कर्युं, तेमनो पट्टाभिषेक सवत् १३३१ ना आश्विन वदी पञ्चमीने दिने थयो अने तेज वर्षना फाल्गुन वदी अष्टमीने दिने तेमनो पदमहोत्सव थयो, तेओ सवत् १३४१ मां मरण पाम्या।

४९, जिनचन्द्र—जन्म सवत १३२६ ना मार्गशीर्ष शुदी चतुर्थीने दिने, स्थान समियाणाग्राममां, पिता मन्त्रि देवराज, गोत्र छाजेहड, माता कमलादेवी, मूलनाम शम्भराय दीक्षा जालोरमां स० १३३२ मा पदमहोत्सव स० १३४१ वैशाख शुदी त्रीजने सोमवारे, तेमणे चार राजओने जैनी कर्या, अने कलिकालकेवली नामना विरुदथी प्रसिद्ध थया, मरण सवत् १३७६ ना कुसुमाणग्राममा थयु।

५० जिनकुशल—(चैत्यवन्दन कुलक वृत्तिना रचनार) प्रसिद्ध दादोजी नामथी थया, जन्म स० १३३० समियाणा ग्राममां, पिता मन्त्रि जिल्हागर, माता जयतश्री, गोत्र छाजेहड दीक्षा सवत् १३४७ मा, सूरिमन्त्र राजेन्द्राचार्य्य पासेथी स० १३७७ ना ज्येष्ठ वदी अेकादशी दिने लीधो, मरण देरावरमा स० १३८९ ना फाल्गुन वदी अमावस्याने दिने थयुं।

५१, जिनपद्म—वंश छाजेहड, जन्म पजाबमा, सूरिमन्त्र तरुण प्रभाचार्य पासेथी लीधो अने पाटणमां स० १४०० ना वैशाख शुदी १४ ने दिने मरण थयुं।

५२, जिनलब्धि—नागपुरमां सवत् १४०६ मां मृत्यु थयु।

५३, जिनचन्द्र—स्तम्भतीर्थमां सवत १४१५ ना आषाढ वदि १३ ने दिने मृत्यु थयु।

५४, जिनोदय—पिता शाह रुद्रपाल पाल्हणपुरमां वसता हता, माता धारलदेवी जन्म सं० १३७५, मूलनाम समरो। तेमनुं पदस्थापन स्तम्भतीर्थमां तरुणप्रभाचार्ये संवत् १४१५ ना आषाढ़ शुदि २ ने दिने कर्युं। तेज जग्याए जिनोदये अजितनाथना चैत्यनी प्रतिष्ठा करी। अने शत्रुंजय उपर तेमणे पांच प्रतिष्ठा करी। मरण सं० १४३२ ना भाद्रपद वदि एकादशीने दिने पाटणमां थयुं।

तेमना समयमां सं० १४२२ मां चोथो गच्छभेद नामे वेगड खरतर शाखानी उत्पत्ति थई। तेना स्थापक धर्मवल्लभ गणि हता।

५५, जिनराज—सं० १४३२ ना फाल्गुन वदि ६ ने दिने पाटणमां तेमने सूरिपद मल्युं। मरण देवलवाड (हालनुं देलवाडा आबु पासे) सं० १४६१ मां थयुं।

५६, जिन भद्र—पहेलां जिनवर्द्धन सूरिने सं० १४६१ मां जिनराजनी पाटे स्थापित कर्या हता पण चतुर्थ व्रतनो भङ्ग कर्याथी तेमने अपात्र ठेराव्या अने तेमनी जग्या जिनभद्रने सं० १४७५ ना माघ शुदि पूर्णिमाने दिने आपवामां आवी। जिनभद्रनुं गोत्र भणशालिक हतुं। मूलनाम भादो। तेणे घणी प्रतिमाओ स्थापी, घणा मन्दिरो नी प्रतिष्ठा करी अने घणा पुस्तकालयो स्थाप्यां। अने संवत् १५१४ ना मार्गशीर्ष वदि नवमीने दिने कुम्भलमेरुमां मरण पाम्या उपर्युक्त जिनवर्द्धनसूरिए सं० १४७४ मां पांचमो गच्छ भेद नामे पिप्पलक खरतर शाखा स्थापी।

५७, जिनचन्द्र—पिता शाह वच्छराज माता वाहलदेवी। गोत्र चम्म, जन्म संवत् १४८७, स्थान जेसलमेरुमां, दिक्षा सं० १४९२, सूरिपद सं० १५१४ ना वैशाख वदि २। मरण जेसलमेरुमां संवत् १५३० मां। सं० १५०८ मां लेखक लौंके अहमदावादथी

मूर्त्ति दूर करी अने संवत १५२४ मां पोताना नामथी ओळखातो मत उभो कर्यो। (तद्वारके स० १५०८ अहमदावादे लौङ्काख्येन लेखकेन प्रतिमा उत्थापिता)

५८, जिनसमुद्र—पितादेकाशाह, माता देवणदेवी। गोत्र पारख, दीक्षा, स० १५२१, पदस्थापना स० १५३० माहा शुदी १३ मरण स० १५५५ अहमदावादमां।

५९, जिनहंस—पिता शाह मेघराज माता कमलादेवी, गोत्र चोपडा, जन्म स० १५२४ दीक्षा स० १५३५, पदस्थापना स० १५५५ अहमदावादमां, मरण स० १५८२ पाटणमां थयुं।

स० १५६४ मां मरु देशमां छट्ठो गच्छ भेद नामे आचार्यिक खरतर शाखा आचार्य शान्तिसागरे स्थापी।

६०, जिन माणिक्य—पिता शाह जीवराज, माता पद्मादेवी, गोत्र कुकडाचोपडा, जन्म स० १५४९, दिक्षा स० १५६०, पद स्थापना स० १५८२ ना भाद्रपद वदि ९, मरण स० १६१२ ना आषाढ शुदि पंचमीने दिने थयु।

६१, जिनचन्द्र—पिता शाह श्रीवन्त, माता सिरियादेवी, गोत्र रीहड, जन्म तिमरी नगर पासेना वडली ग्राममां संवत् १५९५, दिक्षा १६०४, सुरिपद जेसलमेरुमां स० १६१२ ना भाद्रपद शुदी नवमीने दिने, तेमणे अकबर बादशाहने जैन धर्मी बनाव्या अेम कहेवाय छे, तेमणे ९५ शिष्यो हता—समयराज, महिमाराज, धर्मनिधान, रत्ननिधान, ज्ञानविमल वगेरेह अने तेमनुं मरण वेनातटे स० १६७० ना आश्विन वदि बीजने दिने थयु।

स० १६२१ मा भावहर्षोपाध्याये ७ मो गच्छभेद नामे भावहर्षीय खरतर शाखा स्थापी।

६२, जिनसिंह—पिता शाह चापसी माता चतुरङ्गादेवी, गोत्र गणधरचोपडा, जन्म खेतर ग्राममा संवत् १६१५ मा

मार्गशीर्ष शुदि पूर्णिमाने दिने, मूल नाम मानसिंह, दिक्षा बीकानेरमां संवत् १६२३ ना मार्गशीर्ष वदि ५, वाचकपद जेशलमेरुमां सं० १६४० माघ शुदि ५, आचार्यपद लाहोरमां सम्वत् १६४९ फाल्गुन शुदि २, सूरिपद वेनातटमां सम्वत् १६७०, मरण मेडतामां सम्वत् १६७४ पौष वदि १३ ने दिने थयुं।

६३, जिनराज—पिता शाह धर्मसी, माता धारलदेवी, गोत्र बोहित्थरा, जन्म सं० १६४७ वैशाख शुदि७, दिक्षा बीकानेरमां सं० १६५६ ना मार्गशीर्ष शुदि ३, दीक्षा नाम राजसमुद्र, वाचकपद सं० १६६८ अने सूरिपद मेडतामां सं० १६७४ ना फाल्गुन शुदि ७ ने दिने मल्युं, तेमणे घणी प्रतिष्टाओ करी। दाखला तरीके सं० १६७५ ना वैशाख शुदि १२ ने शुक्रवारे शत्रुंजय ऊपर तेणे ऋषभ अने बीजा जिनोनी ५०१ मूर्तिओ नी प्रतिष्ठा करी, तेणे नैषधीय काव्य पर जैनराजी नामनी वृत्ति लखी अने बीजा ग्रन्थों लख्या छे; मरण पाट्टणमां सं० १६९९ ना आषाढ़ शुदि ९ ने दिने थयुं।

सं० १६८६ मां आचार्यजिनसागर सूरिअे आठमो गच्छभेद नामे लघ्वाचार्यिय खरतर शाखा उत्पन्न करी अने समय सुंदरना शिष्य हर्षनन्दने वधारी, (हर्षनन्दन ऋषिमंडल टीकाना कर्ता हता)

सं० १७०० मां रंगविजयगणीअे नवमो गच्छभेद नामे श्री रंगविजय खरतर शाखा उत्पन्न करी, अने आ शाखामांथी श्री सारोपाध्याये १० मो गच्छभेद नामे श्री सारीय खरतर शाखा उत्पन्न करी। एकादशस्तु वृहत्खरतर मूलगच्छ एवमेकादशभेदः खरतरगच्छः॥ इत्यादि।

यह उपरोक्त पट्टावली मुंबईसे प्रगट होने वाला 'सनातन जैन' नामा मासिक पत्रके दूसरे पुस्तकके अंक १२ वें में सन्

१९०७ के जुलाई मासमें प्रकाशित हुई थी (ऊपरमें ३०५ पृष्ठकी २२ वीं पंक्ति में १९०८ लिखा गया सो भूलसे समझना) और हस्त लिखित प्रतोसे अमेरिकन देशके बर्लिन नगरके डाक्टर जह।न्नेस कलाट्ट पी० एच० डी० ने अंग्रेजीमें पट्टावली लिखी थी उसको गुजराती भाषामे उपरोक्त मासिक पत्रमें प्रकाशित करी उसमें कितनी जगह नामोका गोत्रोका शब्दोका रूपान्तर हो गया है सो अन्य पट्टावलियोंसे मिलान कर लेना और इसके बाद सन् १९०८ डीसेंबर फेब्रुआरीके अंक ५-६, पुस्तक तीसरेमें तपगच्छकी पट्टावली प्रकाशित उपरोक्त मासिकमें हुई हैं।

१४ चौदहवां और भी ऊपर मुजब ही खास न्यायांभोनिधिजी (श्रीआत्मारामजी) ने अपने बनाये "जैनमत वृक्षमें" श्री खरतरगच्छकी पट्टावलीमें नीचे मुजब लिखा है यथा—श्री नेमिचन्द्र सूरिजी १, श्रीउद्योतनसूरिजी २, श्री वर्द्धमान सूरिजी ३, श्री अष्टक वृत्ति पचलिंगी प्रकरणकर्त्ता श्रीजिनेश्वरसूरिजी और इन्होंके गुरु भाई "बुद्धिसागर" व्याकरण कर्त्ता श्री बुद्धिसागर सूरिजी ४, संवेगरंगशाला कर्त्ता श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ५, श्रीनवांगी वृत्तिकर्ता तथा श्रीस्थंभन पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रगटकर्ता श्रीअभयदेवसूरिजी ६, पिंड विशुद्धि १, भवारिवारण २, वीरचरित्र ३, संघपट्टक प्रमुख ग्रन्थकर्ता श्री जिनवल्लभ सूरिजी ७, संदेह दोलावली, गणधर सार्द्ध शतककर्ता श्री जिनदत्त सूरिजी ८, इत्यादि इसी तरहसे श्री जिनचन्द्र सूरिजी ९ श्री जिनपति सूरिजी १० वगैरह वर्तमान समय तक खरतरगच्छकी पट्टावलीमें उपरोक्त पूर्वाचार्यों के नाम लिखे हैं सो छपा हुआ "जैनमत वृक्ष" प्रसिद्ध है।

और भी इसी ही तरहसे अनेक ग्रन्थोंमें, अनेक पट्टावलियोंमें, अनेक प्रशस्तिओंमें, तथा अनेक ऐतिहासिक कथानक

ग्रन्थोंमें, चरित्रोंमें, और यावत् श्री आबुजी, विजापुर वगैरहके जैन मन्दिरोंके शिला लेखोंमें भी ऊपर मुजब ही पूर्वाचार्यों की परम्परा लिखी है परन्तु यहां विस्तारके कारणसे सब पाठ नहीं लिख सकता जिसके देखनेकी इच्छा होवे तो "सामाचारी शतक" तथा "शुद्ध समाचारी प्रकाश" और "जैन इतिहास" वगैरह ग्रन्थोंको देख लेवें ;—

और कितनी ही जगह तो श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजको अणहिलपुर पट्टणमें संवत् १०८४ में श्री दुर्लभ राजाने चैत्यवासियोंको जितनेसे 'खरतर' विरुद दिया ऐसा भी लिखा है परन्तु ऊपरके प्रमाणोंमें तो १०८० लिखा है। और ऊपरके बहुत प्रमाणोंमें तो दुर्लभ राजा लिखा है परन्तु श्री तपगच्छके सोमधर्मगणिजीने "उपदेश सत्तरि" नामा ग्रन्थमें तथा "सोहन चरित्रमें" और कितनी ही पट्टावलियोंमें भीमराजा भी लिखा है, इस लिये संवत् १०८० का, या, १०८४ का, और दुर्लभ राजा था, या भीमराजा, इन दोनों बातोंके पाठांतर मतभेदका निर्णय तो श्री ज्ञानीजी महाराजके सिवाय वर्तमान कालमें होना कठिन है, और कितनी जगह श्री जिनेश्वरसूरिजीके संसारी नामोंमें और चरित्रोंमें भी मतभेद मालूम होता है जिसका निर्णय तो श्री ज्ञानी जाने और कितनी जगह तो श्री जिनेश्वरसूरिजी अपने गुरु भाई श्री बुद्धिसागरजीको साथ लेकर पाटण गये थे ऐसा लिखा है और कितनी ही जगह श्री वर्द्धमान सूरिजी वगैरह १८ साधुओंके साथ पाटण गये थे ऐसा भी लिखा है।

परन्तु चाहे जो हो यह बात तो सभी प्रमाणोंसे अच्छी तरहसे सिद्ध होती है कि श्री जिनेश्वरसूरिजीसे सुविहित (खरतर) सन्तती अर्थात खरतर (सुविहित)

गच्छके नामकी परंपरा शुरू हुई है सो तो श्री तपगच्छादिके सभी पूर्वाचार्यों को भी मान्य है। और दृढतर शास्त्र प्रमाणोंसे भी सिद्ध होता है इसलिये कोई निषेध भी नहीं कर सकता तथापि कोई कदाग्रहसे निषेध करनेका आग्रह करे तो अन्धपरम्परा और शास्त्र प्रमाण शून्य होनेसे मान्य नहीं हो सकता, इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं।

और कितनी ही जगह तो संवत् १०८० या १०८४ कुछ भी नहीं लिखा इसलिये दुर्लभ राजाने अपने राज्यासनके समयमें किसी वर्ष श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद तो अवश्यमेव दिया होगा परन्तु संवत् नहीं लिखनेके कारण यदि श्रीजिनेश्वर सूरिजीने संवत् १०८० में श्रीहरिभद्र सूरिजी कृत श्री अष्टकजी नामा ग्रन्थकी वृत्ति रची थी उससे भी १०८० का संवत् चल पड़ा होवे तो भी श्रीज्ञानीजी महाराज जाने।

अब विवेकी पाठक गणसे मेरा यही कहना कि उपरोक्त शास्त्र प्रमाणानुसार श्रीजिनेश्वरसूरिजीने राज्य सभामें शास्त्रार्थ करके चैत्यवासियोंको हराये और आप साधुके वर्तावमें सच्चे रहे तबसे 'खरतर' 'सुविहित' वसति मार्ग प्रकाशक कहलाने लगे इसलिये श्रीतपगच्छवाले वगैरह सब कोई श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजसे खरतरगच्छ और श्रीनवाङ्गीवृत्ति कारक श्रीअभयदेव सूरिजी खरतरगच्छीय ऐसा मानते हैं और पट्टावली वगैरह अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणभी इस बातमें मिलते हैं मौजूद है जिसपर भी न्यायांभोनिधिजीने 'जैन सिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तक में और धर्मसागरजीने प्रवचन परीक्षा वगैरहमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीमे खरतर विरुदका निषेध करनेके लिये मायावृत्तिसे एकांत हठवाद करके कल्पित अवलम्बनोंसे जो परिश्रम किया है उससे

उनमें मृषा वादका त्यागरूपी दूजा महाव्रत कैसे माना जावे सो विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

और अब इन दोनों महाशयोंके झूठे विकल्पोंका निर्णय आगे करनेमें आता है उससे सबको निःसन्देह हो जावेगा।

और श्रीन्यायांभोनिधिजीने 'प्रबन्ध चितामणी' 'गुर्जरदेश भूपावली' 'वनराज चावड़ा प्रबन्ध' और फारबस साहिबकी रची 'रासमाला' वगैरह इतिहास पुस्तकोंका प्रमाण बतलाकर संवत् १०७७ में दुर्लभ राजाकी मृत्यु होनेका ठहराके संवत् १०८० में श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद देनेका निषेध किया सो भी एकान्त हठवाद रूप अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण ही मालूम होता है क्योंकि ऊपरके इतिहासिक पुस्तकोंमें अनेक जगह परस्पर विरुद्धताकी बातें वहुत जगह लिखी हुई हैं और एक ही बातमें अनेक तरहके मतभेद लिखे हुए हैं तो भी 'रासमाला' वगैरह इतिहासिक पुस्तकोंसे भी श्रीदुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको 'खरतर' विरुद दिया ऐसा सिद्ध होता है सो उसका लेख नीचे दिखाता हूं।

प्रथम फारबस साहिबकी रची 'रासमाला' नामकी गुजरातके इतिहासकी पुस्तक दूसरी आवृत्ति पृष्ठ १०५ में नीचे लिखे मूजिब लेख है।

"दुर्लभ राजे राज्य सारी रीते चलाव्युं अखुरोने तेणे बहादुरी थी जीत्या देरां बांध्यां अने घणां धर्मनां काम कर्यां अणहिल वाड़मां तेणे एक दुर्लभ सरोवर बांध्युं श्रीजिनेश्वरसूरि पासे ते भणतो हतो तेथी जैनधर्मनो बोध पामी जीवता प्राणियो ऊपर दया करवाना सारा मार्गमां चालतो" इत्यादि।

दूसरा और भी गुजरात देशका इतिहाश मराठी भाषामें मुम्बई निर्णयसागर छापाखानामें छपा है जिसमें भी नीचे मूजिब लिखा है।

"दुर्लभ राजाने ही आपलें राज्य फार चांगल्या चालविलें होतें यानें देवळें वगैरह बांधवून आपल्या राज्यात पुष्कल धार्मिककार्मे केलीं होतीं अन्हिलवाड ये थें दुर्लभ सरोवर नावाचा एक मोठा तलाव आहे, तो याच राजाने बांधविला असल्याची साक्ष त्या सरोवराचें नांव देत आहे। दुर्लभ सेनाने चोर्शोंची वर्षे राज्य केलें । त्यानें आपला गुरु श्रीजिनेश्वर सूरिजी म्हणून होता त्याचे उपदेशानें जैनधर्मांची शिक्षा स्वीकारून त्या धर्मान्त तो मोठा प्रवीण झाला होता त्याने जीव दया उत्तम प्रकारें पालिली" इत्यादि।

अब इन इतिहासिक लेख पर भी विवेक बुद्धिसे विचार करके देखा जावे तब तो श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको दुर्लभ राजाने खरतर विरुद दिया जिसका निषेध करना कदाग्रहका सूचक व्यर्थ मालूम होता है क्योंकि जैनधर्मके इतिहासिक ग्रन्थोंसे और श्रीजिनेश्वर सूरिजीके चरित्रोंसे यह तो खुलासा ही मालूम पड़ता है कि अणहिलपुर पट्टणमें चैत्यवासियोंने राजासे करार करवा लिया था कि हम लोगोंके सिवाय अन्य जैनमुनि इस नगरमें रहने न पावे, इसलिये उस नगरमें शुद्ध संयमियोंका आना नहीं होता था, अब श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजने इस अनर्थको तोड़नेके लिये पाटण पधारे तब चैत्यवासियोंने अपने आदमियोंको भेजकर इन महाराजको नगरमेंसे बाहिर चले जानेको कहलाया नगरमें ठहरने भी नहीं देते थे अब महाराजने राज्य सभामें शास्त्रार्थसे चैत्यवासियोंको पराजय किये उससे इन महाराजको खरतर विरुद राजाने दिया तबसे शुद्ध संयमियोंका आना जाना विहार होने लगा और इन महाराजका भी वहां ठहरना हुआ।

अब विचार करनेकी बात है कि यदि श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजने उन चैत्यवासियोंका पराभव करके वहां शुद्ध संयमी मुनियोंका विहार खुला करानेके लिये वहां राजासे परिचय न किया होता तो राजा महाराजका भक्त होकर महाराजके पास जैन शास्त्रोंका अभ्यास कैसे करता और जैन धर्मानुरागी होकर विशेष न्यायवान् दयावान् कैसे वनता इससे भी साबित होता है कि यह बात अवश्य बनी होगी तभी तो रासमालामें और मराठी इतिहासमें श्रीजिनेश्वर सूरिजीको दुर्लभराजाके गुरु लिखे हैं और राज्यसभामें शास्त्रार्थ होनेसे जितने वाले विद्वान्को राजाकी तरफसे उनको सत्कार रूप पदवी मिलती है सो यह तो अनेक राजाओंकी सभामें अनेक विद्वान् जैनाचार्यों ने अनेक तरहके विरुद प्राप्त किये हुए शास्त्रोंमें सुननेमें आते हैं इसी तरहसे रासमाला और मराठी भाषाके इतिहाससे भी दुर्लभराजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया सिद्ध हो जाता है अन्यथा जहां अणहिलपुर पट्टणमें संयमियोंका जाना और ठहरना नहीं होता था तहां श्रीजिनेश्वर सूरिजीके पास राजाके शास्त्राध्ययन करनेका और जैनधर्मकी शिक्षा पाकर दयावान् होना यह कैसे बन सके सो विवेकी स्वयं विचार लेंगे।

और 'प्रबन्ध चिन्तामणी'के नामसे दुर्लभ राजाकी मृत्यु सं० १०७७ में होनी ठहराई सो तो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि 'प्रबन्धचिन्तामणी'में तो १०७७ में दुर्लभ राजाके पाटणसे काशीकी यात्रा जानेको लिखा है परन्तु मृत्यु होनेका संवत नहीं लिखा इसलिये 'प्रबन्धचिन्तामणी'के नामसे सं० १०७७ में मृत्यु होनेका ठहराना सो भद्रजीवोंको भरममें डालकर अपने दूजे महाव्रतमें हानि पहुंचाना उचित नहीं है।

और रासमाला वगैरह गुजरातके इतिहासिक पुस्तकोंके आधारसे सं० १०७७ में मृत्यु होनेका ठहरानेका आग्रह किया सो भी बड़ी भूल है क्योंकि रासमालादि इतिहासिक पुस्तक किसी सर्वज्ञके कथन किये हुए तो नहो हैं किन्तु अर्वाचीन जैन व अन्य कथानक इतिहासोंके आधारसे और चारण भाटादिकोकी परम्परागत कथा कहानियोंके आधारसे रासमालादि इतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये हैं इसलिये इन पुस्तकोंकी सब बातोपर निश्चय विश्वास करना उचित नहीं है और जो बात जैनधर्मके इतिहासिक वगैरह बहुत पुस्तकोंके प्रमाणानुसार होवे सो तो मानना चाहिये और जो बात बहुत शास्त्रोंके विरुद्ध होवे उसको भी माननेका आग्रह करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण बनता है, जैसे श्रीजिनेश्वरसूरिजीको सवत् १०८० में दुर्लभराजाने 'खरतर' बिरुद दिया सो यह बात बहुत शास्त्रोंके प्रमाणोंसे सिद्ध है इसलिये चारण भाटादिकोकी कथा कहानिया वगैरहोके आधारसे 'रासमाला' वगैरहमें स० १०७७ में दुर्लभराजाकी मृत्यु लिखी उसको निश्चय मान लेना और बहुत शास्त्रानुसार तथा श्रीतप गच्छादिके पूर्वाचार्यों के सम्मत उपरोक्त बिरुदका निषेध करना सो वर्त्तमानिक गच्छ कुदाग्रहकी अज्ञानताकी तुच्छ बुद्धिके सिवाय क्या होगा।

और यद्यपि रासमाला वगैरह गुजरातके इतिहासोंमें तथा इतिहासोंके ही आधारसे किसी अन्य जगह जैनोके इतिहासिक पुस्तकोंमें भी १०७७ का लिखा देखनेमें आता है परन्तु इससे श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको चैत्य वासियोंके जितनेसे जो दुर्लभ राजाने स० १०८० या १०८४ में खरतर बिरुद दिया इसका निषेध नहीं बन सकता। क्योंकि देखो ऐसे तो श्रीस्थूलभद्रजीके जन्म दीक्षा स्वर्ग गमनके वर्षोंमें च्यार २

वर्षों का मतभेद देखा जाता है, श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजीके स्वर्गगमनमें ४।४ वर्षों का मतभेद देखा जाता है, तथा कलिकाल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीहेमचन्द्राचार्यजीके दीक्षा और आचार्य पदमें भी ४।४ वर्षों का मतभेद है और श्रीभद्रबाहु स्वामीजी, श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीमल्लवादीसूरिजी, तथा धनपाल पण्डित वगैरहके चरित्रोंमें भी पाठांतर मतभेद देखा जाता है और इसी तरह तपगच्छकी पट्टावलीमें भी यावत् श्रीहीरविजयसूरिजी तकको पाटानुपाटमें कोई कितने पाटपर और कोई कितने पाटपर, कोई कितने पाटपर मतांतरोंसे मानते हैं सो "सेन प्रश्न" देख लेना और इसी तरहसे 'सम्यक्त्वसल्योद्धार' वगैरहमें लिखे मूजिब सूत्रोंमें भी पाठान्तर देखा जाता है और भी कितने ही चरित्रादिकोंमें और इतिहासिक बातोंमें मतभेद पाठान्तर देखने सुननेमें आता है और श्रीउद्योतन सूरिजीसे ८४ गच्छकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भी ३।४ मतान्तर होगये हैं और ओसवाल पारवाल श्रीमाल श्रीश्रीमाल वगैरह जैनी श्रावकोंकी उत्पत्ति, गौत्र, कुल, स्थापनमें भी कितने ही वर्षों का मतभेद देखा जाता है इत्यादि। इन बातोंमें, सो यदि कोई हठवादी एकान्त एक बातको पकड़कर मतभेद पाठान्तरकी दूसरी बातका निषेध करनेके आग्रहमें पड़नेवालेको अभिनिवेशिक मिथ्यात्वीके सिवाय और क्या कहा जावेगा क्योंकि मतभेदकी बातोंका पूरा निर्णय तो श्रीज्ञानीजी महाराजोंके सिवाय वर्त्तमानमें अल्पज्ञ हठवादी कदापि नहीं कर सकते हैं।

तैसे ही यदि संवत् १०८० पाठान्तरे १०८४ में दुर्लभ राजा विद्यमान होनेसे श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया हो तो क्या इतिहासिक पुस्तकोंमें १०७७ में मृत्युके लिखनेको देख कर ऊपरकी बातका निषेध करना योग्य है सो तो कदापि

नहीं क्योंकि इन उपरोक्त बातोका पूरा स्पष्ट खुलासे निश्चयके साथ निर्णय तो श्रीज्ञानीजी महाराजके सिवाय और कोई भी नहीं कर सकता इसलिये १०७७ के मृत्युके इतिहासिक लेखको आगे करके अनेक शास्त्रोंमें और तप गच्छके ही पूर्वजोने अपने ग्रन्थोमें श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छ, और श्रीनवांगी वृत्ति-कारक श्रीअभयदेव सूरिजी तथा श्रीजिनवल्लभ सूरिजी श्रीजिन-दत्तसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्य खरतर गच्छमें हुए ऐसा लिखा है इसको झूठा ठहरानेका उद्यम करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका ही कारण मालूम होता है अन्यथा कदापि ऐसा एकान्त हठवादका साहस न होता खैर ;—

और नवीन या पुरानी जीर्ण पुस्तकोका उतारा करनेमें ब-हुत भूले भी हो जाती हैं इसलिये अक्षर और अकोंका नम्बर लिखनेमें दृष्टि दोषसे यदि दुर्लभ राजाकी मृत्यु १०८७ में हुई होवे उसके लिखनेकी जगहपर भूलसे १०८७ के १०७७ लिखे गये होवे उसमें ८ का ७ बन गया होवे तो भी ज्ञानी जाने। अथवा १०७० या १०७४ में दुर्लभ राजाने श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद दिया होवे उसके लिखनेकी जगहमें भी ७ की जगह ८ लिखा गया होवे उसमें १०७०। वदसे १०८० बन गये होवे या १०७४ की जगह १०८४ बन गये होवे और वोही परम्परा चल पड़ी होवे तो भी श्रीज्ञानीजी महाराज जाने। परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीने दुर्लभ राजाकी सभामें चैत्य वासियोका पराभव किया और संयमियोकी विहार खुला कराया तबसे वसतिवासी सुविहित खरतर कहलाने लगे यह बात तो सवत् ११३९ में बना हुआ श्रीवीरचरित्र श्रीअभयदेव सूरिजीके सन्तानीय श्रीगुणचन्द्रगणिजी कृतसे, तथा दादाजी श्रीजिनदत्त सूरिजीकृत ११८० के अनुमान श्रीगुरुपारतन्त्र और श्रीगणधर

सार्द्धशतक वगैरह प्राचीन ग्रन्थोंसे भी सिद्ध है तथा अन्य इतिहासिक ग्रन्थोंसे और परम्परासे भी सिद्ध है इसलिये थोड़ेसे वर्षों के मतभेदके देखनेसे मूल बातका निषेध करना सो बड़ी भूल है इसको निष्पक्षपाती विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं ;—

और १०८४ में भीमराजाने खरतर विरुद दिया यह माना जावे तब तो इतिहासिक पुस्तकोंसे भी कोई विरोध नहीं आ सकता सो यह बात भी तो पाठांतरसे लिखी हुई देखनेमें आती है इसलिये भीमने दिया या दुर्लभने सो तो श्रीज्ञानीजी जाने परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुद मिला यह सब प्रकारसे सिद्ध होता है ।

और जब श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह जैनाचार्य्यों के सम्बन्धमें भी वर्षों का भेद देखा जाता है तो फिर दुर्लभ राजाके सम्बन्धमें निश्चय कैसे कह कसते हैं जिसपर भी निश्चय कहनेवाले प्रत्यक्ष हठवादी ठहरते हैं सो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे ।

और धर्मसागरजीने भी विवेकशून्यतासे 'प्रबन्धचिन्तामणि' 'बनराज चावड प्रबन्ध' वगैरह इतिहासिक पुस्तकोंके प्रमाणोंसे दुर्लभ राजाकी १०७७में मृत्यु होनेका ठहरानेका एकान्त हठवाद करके श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करनेका परिश्रम उठाया और उसी अंधपरम्परासे वर्त्तमानिक कदाग्रही जन आग्रह करते हैं सो उपरोक्त लेखसे सब व्यर्थ ठहरता है इसका विशेष निर्णय सत्यग्राही जन स्वयं कर सकते हैं ।

शङ्का—अजी आप पूर्वोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे श्रीजिनेश्वरजीने चैत्यवासियोंके साथ दुर्लभ राजाकी सभामें शास्त्रार्थ करके राजसभामें खरतर विरुद प्राप्त किया ऐसा सिद्ध करते हो परन्तु "गुरु पारतंत्र्य" तथा "गणधर सार्द्धशतक" मूल और

उसकी व्याख्यामें तो शास्त्रार्थ करके चैत्यवासियोंको पराजय करनेका लिखा है परन्तु दुर्लभ राजाने खरतर विरुद दिया ऐसा तो नही लिखा तो फिर कैसे माना जावे।

समाधान—भो देवानुप्रिय ! तेरेको श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयकी गुरुगम्यतासे या अनुभवसे मालूम होती तो ऐसी शङ्का कदापि नहीं उठाता क्योंकि जैनशास्त्रोंमें किसी जगह किसी नय आश्रयि पूर्व कारण रूपकी बातको लिखी होवे वहां सम्बन्धसे उत्तर कार्य रूपकी बातका ऊपरसे अध्याहार करनेमें आता है और किसी जगह उत्तर रूपमें कार्यकी बात लिखी होवे वहां सम्बन्धानुसार पूर्व कारणकी बातका ऊपरसे अध्याहार करनेमें आता है और किसी जगह थोड़ेसे प्रसङ्ग मात्रका दर्शाव किया होवे वहा सम्बन्ध पूर्वक पूर्व और उत्तरका सब विवरण ऊपरसे करनेमे आता है। देखो ! जैसे—किसी जगहपर अमुक तीर्थंकर भगवान्‌के उपदेशसे अमुक राजा दीक्षा लेता भया इतना लिखा होवे तो वहां-तीसरे भवमें तीर्थंकर गोत्र बांधनका, जन्म होनेका, दीक्षा लेनेका, केवल ज्ञान प्राप्त करनेका, ग्रामानुग्राम विचरनेका, समवसरणकी रचना होनेका, चौसठ इन्द्रादिकोंके आनेका, और राजाको बधाई जानेसे भक्ति पूर्वक परिवार सहित वन्दनाको जानेका, भगवानके देशना देनेका, देशना सुनकर वैराग्य उत्पन्न होनेका, दिक्षा लेनेका, और शास्त्रार्थका अध्ययन करनेका, निरतिचार संयम पालनेका, यावत् तपश्चर्यादि पूर्वक आयु पूर्ण करके मोक्षगमन पर्यन्तका सब वृत्तान्त सम्बन्ध पूर्वक कहा जासकता है।

तथा दूसरा और भी सुना जैसे किसी जगह अमुक राजाने अमुक सूरिजीको शास्त्रार्थके लिये बुलाये सिर्फ इतनाही

लिखा होवे तथा अन्य जगह वही अमुक सूरिजी अमुक विरुद धारक थे इन्हीं महाराजके सन्तानीये अमुक गच्छवाले कहलाते हैं एसा लिखा होवे तो वहां राजसभामें विद्वानोंसे शास्त्रार्थ होनेका आप विजय प्राप्त करनेका राजाने खुश होकर उनके सत्कार रूप विरुद (पदवी) देनेका और अमुक विरुद धारक अमुक आचार्यके परम्परावाले उस पदवीके कारण पदवीके नामका गच्छवाले कहलाने लगे इत्यादि सब सम्बन्ध पूर्वक माना जाता है ।

तैसेही श्रीजिनेश्वरसूरिजीने भी राज्यसभामें शास्त्रार्थ करके लिङ्गधारियोंका पराजय किया यह बात तो पूर्वोक्त शास्त्रोंमें खुलासाही लिखी हुई है तथा राज्यसभामें या विद्वानोंकी सभामें शास्त्रार्थमें विजय पानेवालेको राजाओंकी तरफसे या विद्वानोंकी तरफसे उनको पदवी मिलति थी और मिलति भी है इस बातके तो शास्त्रोंमें भी अनेक प्रमाण मिलते हैं और वर्त्तमानमें प्रत्यक्षपनेमें भी अनेक प्रमाण विद्यमान है। और अन्य शास्त्रोंमें तथा पट्टावलियोंमें, शिलालेखोंमें, चरित्रोंमें, चैत्यवासियोंके जीतनेसे राजाने खरतर विरुद दिया ऐसा खुलासा लिखा है उसके कितनेही प्रमाण तो ऊपरमें भी छप चुके हैं और उपरोक्त शास्त्रोंमें जब शास्त्रार्थका कारण लिख दिया तो विजय प्राप्तिसे सत्काररूप राजाकी तरफसे खरतर विरुदके कार्यका तो ऊपरसे भी सम्बन्ध जोड़ना चाहिये सो इसका दृष्टान्त ऊपरमें लिखा गया है इसलिये उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणोंसे भी कारण कार्य भाव ग्रहण करके खरतर विरुदकी प्राप्ति मानना चाहिये।

और पहिली बार जो कार्य होता है वही प्रधानरूपसे गिना जाता है परन्तु पीछे तो कईवार वैसा कार्य होवे तो भी

पहिले जैसा नहीं गिना जाता इसलिये यद्यपि पीछे तो चैत्य-वासियोंको बहुत आचार्यादिकोने हटाये थे परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीनेही पहिली वार प्रगटपने राज्यसभामें चैत्यवासियोंको हटाये थे इसलिये इन महाराजकी विशेषता मानी जाती है और पहिली वारका कार्य परम्परागतसे चिरकाल तक स्मर-णीय रहता है इसलिये इन महाराजका पहिलाही कार्य खरतर विरुदका परम्परा करके आज तक स्मरणीय हो रहा है और आगे होता रहेगा उसी कारणसे भी इन महाराजसे खरतर विरुद निषेध नहीं हो सकता है।

अथवा कितनेहो ऐसा भी कहते हैं कि दुर्लभ राजाकी सभामें जब चैत्यवासियोंसे शास्त्रार्थ हुआ था तबसे ही स० १०८० में सुविहित (खरतर) कहलाने लगे और राजाने इन महाराजको अपने नगरमें ठहरनेकी आज्ञा दी पीछे काला-न्तरमें भीम राजाकी सभामें १०८४ में बड़े बड़े विद्वानोको-शास्त्रार्थमें जीतनेसे "खरतर" विरुदकी विशेष प्रसिद्ध हुई और इन महाराजका समुदायवाले खरतर गच्छके कहलाने लगे हैं सो ऐसा माना जावे तो भी दुर्लभ या भीम और १०८० या १०८४ का पाठान्तर ऊपरमें लिखा गया है सो इस बातसे भी श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे सुविहित (खरतर) गच्छकी उत्पत्ति होना परम्परा चलना तो अवश्यमेव मानना चाहिये जिसपर भी हठवादसे कुविकल्प करना सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे संसार बढ़नेका कारण है सो भवभीरू आत्मार्थी सत्यग्राही निष्पक्षपातियोंको करना उचित नहीं है और अन्ध परम्पराके कदाग्रहको छोड़कर उपरोक्त सत्य बातको ग्रहण करनाही श्रेयकारी है।

और जैसे पूर्वाचार्योंके दीक्षा, स्वर्गवास वगैरहके कालमानमें कितनेही वर्षोका मतभेद हो रहा है तथा कितनेही चरित्रोंमें,

कितनेही सूत्रोंमें और भावी चौवीशीके वर्त्तमानिक जीवोंके गतिके नामोंमें और युगप्रधान गंडिकाओंमें और इतिहासिक कथाओंमें इत्यादि अनेक बातोंमें ज्ञानी महाराजोंके अभावसे और काल दोषादि कारणोंसे जूदेजूदे मतभेद पाठान्तर हो गये हैं परन्तु उन बातोंमेंसे एक बातको पकड़के दूसरीको निषेध नहीं कर सकते हैं तैसेही खरतर विरुद प्राप्तिमें भी कालदोषादि कारणोंसे मतभेद हो गया है परन्तु श्रीजिनेश्वर सूरिजीको खरतर विरुदको प्राप्ति होनेरूप यह मूल बात सत्य होनेसे १०७७ में दुर्लभ राजाके मृत्यु होने सम्बन्धी, अन्यपरम्पराके अर्वाचीन इतिहासिक पुस्तकोंको आगे करके श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर परम्पराकी मूल सत्य बातका निषेध करनेका आग्रह करना सो आत्मार्थियोंका काम नहीं है।

और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छकी परम्परा शुरू होने सम्बन्धी यहांपर प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिखाता हूं सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाकरके विचार लो देखो—जैसे श्रीजगच्चन्द्र सूरिजीको 'तपा' विरुद मिला इससे इन महाराजके परम्परा वाले तप गच्छके कहलाने लगे और उन्हीं तप गच्छमें से वृद्ध-पौशालिये तथा लघुपौशालिये वगैरह अनुक्रमसे वर्त्तमान समय तकमें करण योगोंसे १३। १४ भेद होगये सो १३। १४ गद्दी तो प्रसिद्ध ही हैं।

तैसे ही श्रीजिनेश्वर सूरिजीके परम्परावाले खरतर गच्छके कहलाने लगे सो उन्हीं खरतर गच्छमें से श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके समयमें अनुमान ११७० के लगभगमें श्रीअभयदेव सूरिजीके अन्य दूसरे शिष्यकी तरफसे 'मधुकर खरतर' नामा खरतर गच्छकी प्रथम शाखा निकलि और श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके समय संवत् १२०४ में श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके शिष्य

श्रीजिनशेखर सूरिजी "रुद्रपल्लीय खरतर" नामा खरतर गच्छकी दूसरी शाखा निकाली सो इस तरहसे अनुक्रमे कारणका योगोंसे (तप गच्छकी तरह) खरतर गच्छमें भी वर्त्तमान समय तक में १२। १३ भेद होगये हैं सो १२। १३ गद्दी प्रसिद्ध हैं इस मुजब खरतर तप इन दोनो गच्छोंके १२। १३ भेद दोनों गच्छ-वाले प्राय. सब कोई मान्य करते हैं यह तो प्रत्यक्ष ही प्रमाणकी बात है।

और जैसे तपगच्छकी वृद्धपौशालिक शाखामें श्रीविजय-चन्द्र सूरिजी श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजी हुए हैं तथा लघुपौशालिक शाखामें श्रीदेवेन्द्र सूरिजी श्रीधर्मघोषसूरिजी वगैरह आचार्य हुए हैं और रुद्रपल्लीय शाखामें श्रीजिनशेखर सूरिजी वगैरह आचार्य हुए हैं और मूल वृहत्खरतर गच्छमें श्रीजिनवल्लभ सूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी श्रीजिनपति सूरिजी वगैरह बड़े बड़े शासन प्रभावक आचार्य हुए हैं सो तो आज तक भी प्रसिद्ध है और इसीलिये न्यायांभोनिधिका विशेषण धारण करनेवाले श्रीआत्मारामजी भी "चतुर्थस्तुति निर्णय" की पुस्तकमें श्रीजिनपति सूरिजीको वृहत् खरतरगच्छ के लिखे हैं सो पुस्तक तो छपी हुई प्रसिद्ध ही है। इस बातमें किसीको सन्देह होवे तो उक्त पुस्तक देख लेना

अब यहांपर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि—जब श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी महाराजके शिष्योंसे ही खरतर गच्छकी शाखा अलग हो गई तो इन महाराजके पहिलेसे ही खरतर गच्छ तथा इन महाराजके खरतर गच्छमें होनेका स्वयं ही सिद्ध हो चुका इसलिये खरतर गच्छके १३ भेदोंका प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुद् सिद्ध होता है इसलिये इन महाराजसे खरतर विरुद्का निषेध

करना और श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजीको खरतर गच्छमें न होनेका ठहराना सो प्रत्यक्ष महामिथ्या है इसको विशेषतासे तो निष्पक्षपाती विवेक बुद्धिजन स्वयं विचार लेवेंगे।

अब मेरेको बड़े आश्चर्य सहित खेदके साथ लिखना पड़ता है कि न्यायांभोनिधिजीका विशेषण धारण करनेवाले श्रीआत्मारामजी जैसे भी धर्मसागरजीकी धर्म धूर्त्ताईकी ठगाई के अन्ध परम्परामें गड्डरीह प्रवाहकी तरह फंस गये और विवेक बुद्धिकी शून्यतासे विना विचारे ही कुविकल्प और जूठे आलम्बनोंका सहारा लेकर व्यर्थ द्वेप बुद्धिसे अपने दूसरे महाव्रतके भङ्गका भय न करके श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे खरतर परम्परा चलनेका निषेध करते थोड़ासा कुछ भी विचार क्यों नहीं किया, क्योंकि देखो भला जब श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजके सन्तानीय श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी के शिष्योंसे ही गच्छ भेदसे जुदी शाखा होगई और संवत् १२०४ तक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजके समय तक तो खरतर गच्छकी दूसरी शाखा भी जुदी हो गई और मूल वृहत् खरतर गच्छ सहित दो शाखा अलग होकर तीन भेद भी होगये तो फिर श्रीजिनदत्तसूरिजीसे १२०४ खरतर गच्छकी उत्पत्ति कहना लिखना बालकपनके सिवाय और क्या होगा।

और जब 'मुधकर' तथा 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों शाखा खरतर गच्छकी आज तक इतिहासोंमें और पट्टावलियोंमें प्रसिद्ध है तो फिर सं० १२०४ में खरतर उत्पत्ति कहने लिखने माननेवालोंको १२०४ के पीछे 'मधुकर' और 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों खरतर गच्छकी शाखा न माननेका हठ करनेवालोंको भी 'मधुकर' और 'रुद्रपल्लीय' यह दोनों शाखा किस गच्छकी है और

किस २ आचार्यसे किस २ वर्ष उत्पन्न हुई इसका भी तो खुलासा अवश्यमेव करना पड़ेगा क्योंकि इन दोनो शाखाओंका प्रत्यक्ष प्रमाण खरतर गच्छमें मिलता है इससे इन दोनो शाखाओंसे भी खरतर गच्छ पहिलेका ही सिद्ध होता है जिसपर भी कितने ही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे इस प्रत्यक्ष प्रमाणकी सत्य बातको भी नहीं मानकर इनका निषेध करनेका आग्रह करनेवालोंको ऊपरकी दोनो शाखाओंका खुलासा अवश्य दिखलाना पड़ेगा अन्यथा जिस गच्छके आचार्यों के शिष्य प्रशिष्यादि परम्परामें मूल गच्छकी शाखा प्रशाखा भी जिसके पहिले अलग हो चुकी उस गच्छको शाखा प्रशाखाओके पीछे उत्पन्न होनेका ठहरानेका साहस करना सो तो पोता प्रपोताकी उत्पत्ति पहिले, और उनके दादाकी उत्पत्ति पीछे मानने जैसी न्यायाभोनिधिजी वगैरहोंका कथन बाललीला समान ठहरता है उसको विवेकी तत्वज्ञजन अच्छी तरहसे विचार सक्ते हैं।

तथा और भी न्यायाभोनिधिजीके समुदाय वालोको इस बातपर भी विचार करके निर्णय दिखाना पड़ेगा कि खास न्यायांभोनिधिजीने 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' की पुस्तकमें श्रीजिनपति सूरिजीको वृहत् खरतर गच्छके लिखे हैं और "जैनतत्वादर्श" तथा "जैनसिद्धान्त समाचारी" को पुस्तकमें १२०४ में खरतर गच्छकी उत्पत्ति लिखते हैं तो १२०४ पीछे किस वर्ष किस आचार्यसे किस कारण किस ग्राममें खरतर गच्छकी कौन कौन शाखा अलग अलग जुदी २ निकली उससे वृहत खरतर लघु खरतर वगैरह कहलाने लगे क्योंकि लघुके विना तो वृहत् नही हो सकता है और न्यायाभोनिधिजी श्रीजिनपति सूरिजीको 'चतुर्थस्तुतिनिर्णय' की पुस्तकमें वृहत् खरतर गच्छके लिख चुके हैं इसलिये लघु होनेका और मधुकर रुद्रपल्लीय वगैरह गद्दी

अलग होनेका कारण खुलासा पूर्वक बतलाना होगा, नहीं तो हम ऊपरमें लिख आये हैं उस मुजब मानना पड़ेगा अन्यथा अन्तर मिथ्यात्वियोंमें अन्याय रूप अधर्म रहता ही है सो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और खरतर गच्छ वालोंके लिखे मूजब वृहत् खरतर लिखा मानो तो उनके लिखे मूजब इस गच्छकी उत्पत्ति और गच्छभेद भी मान लो अन्यथा एकको मानोंगे एकको नहीं यह तो प्रत्यक्ष अन्यायकी बात है।

और कलिकाल सर्वज्ञ समान श्रीहेमचन्द्राचार्यजी, वादिवेताल श्रीशान्ति सूरिजी, न्यायविशारद श्रीयशोविजयजी, श्रीखरतर गच्छकी रुद्रपल्लीय शाखाके वादीसिंह श्रीअभयदेव सूरिजी, वगैरह अनेक प्रभावक पुरुषोंको विरुद मिलने सम्बन्धी कारण, कार्य, सभा, विषय, राजा, विद्वानोंका समुदाय, संवत, वगैरह कितनीही बातोंका प्रमाण नहीं मिलता है तो भी वे सब विरुदतो माननेमें आते हैं और श्रीजिनेश्वर सूरिजी सम्बन्धीअनेक शास्त्रोंके, पट्टावलियोंके, चरित्रोंके, प्रमाण मिलते हैं और श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य मान्य करते हैं और १३ भेद वगैरह प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिलते हैं जिसपर भी व्यर्थ कुयुक्तियोंकी आड़ लेकर सत्य बातके निषेध करनेके आग्रहमें फसना सो तो प्रत्यक्ष ही अभिनिवेशिकका कारण मालूम होता है क्योंकि सब विरुदोंको तो मानना और एकको नहीं मानना यह अन्याय आत्मार्थियोंसे कदापि नहीं हो सकता. इसको विशेषतासे विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे।

शङ्का—अजी आप श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर गच्छकी परम्परा शुरू होनेका मानते हो और श्रीनवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजीको खरतर गच्छके कहते हो तो इन महाराजने

तो श्रीनवांगी वृत्ति और पञ्चाशक वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोकी रचना करी है और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे अपनी परम्परा भी मिलाई है परन्तु इन महाराजको खरतर विरुद धारकका विशेषण तथा मैं खरतर गच्छमें हू ऐसा किसी भी ग्रन्थमें नही लिखा तो फिर इन महाराजको खरतर गच्छके कैसे माने जावे सो बतलाओ।

समाधान—भो देवानु प्रिय ? तेरेको उन महापुरुषोंके अभिप्रायकी मालूम नहीं है इसलिये ऐसी शङ्का करता है परन्तु अब हम तेरे तथा अन्य सत्य ग्राही विवेकी भद्र पाठक गणके सन्देहको दूर करनेके लिये उन महापुरुषोंके अभिप्रायको दिखाते हैं सो निरपक्षपातसे विवेक बुद्धिको हृदयमें स्थिर करके देखो जैसे ? प्राचीन समयमें श्रीशीलागाचार्यजी, श्रीमलयगिरिजी, १४४४ ग्रन्थकर्ता श्रीहरिभद्रसूरिजी, ५०० ग्रन्थकर्ता श्रीउमा स्वातिवाचकजी, श्रीजिनभद्रगणी क्षमाश्रमणजी, श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाश्रमणजी, श्रीश्यामाचार्यजी, पूर्वधर चूर्णिकार श्रीजिनदास गणी महत्तराचार्यजी, श्रीशान्तिसूरिजी श्रीयशोदेवसूरिजी वगैरह अनेक महापुरुषोंने, किसीने तो अपने बनाये ग्रन्थमें अपने गच्छका नाम नहीं लिखा, किसीने अपने गुरु तकका भी नाम नहीं लिखा, तो भी अन्य ग्रन्थोके आधारसे उन पुरुषोंको उनके गच्छके माननेमें आते हैं।

तैसेही श्रीअभयदेव सूरिजीने भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें खरतर नाम नहीं लिखा तो भी न्यायानुसार तो अन्य ग्रन्थोंके प्रमाणसे और परम्परा पट्टावलीके प्रत्यक्ष प्रमाणसे इन महाराजको खरतर गच्छमें मानने चाहिये।

और उपरोक्तादि अनेक महापुरुषोंने अपने गुरुका और गच्छका नाम नहीं लिखा तो भी उसी मुजब मान लेना और

श्रीअभयदेवसूरिजीके न लिखनेकी आड़ लेकर नहीं मानना, यह तो प्रत्यक्षही कदाग्रहका कारण दिखता है सो आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और यदि श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर गच्छ न लिखनेकी आड़ लेकर न मानोंगे तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने, श्रीधर्मघोषसूरिजीने, श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीने, भी तो श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको श्रीवड़गच्छके नहीं लिखे हैं, और अपनी परम्परा भी वड़गच्छसे नहीं मिलाई है, और श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको तपा विरुद धारक भी नहीं लिखे हैं, तो फिर श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखनेके आड़की तरह तो वर्त्तमानिक सब तपगच्छवालोंको भी श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह अपने पूर्वजोंके वड़गच्छ तथा तपाविरुद न लिखनेको भी नहीं मानना चाहिये सो तो नहीं किन्तु विशेष रूपसे मानते हैं। सो यह तो प्रत्यक्षही अन्याय रूप अधर्म ठहरता है क्योंकि अपने पूर्वाचार्योंके न लिखनेको भी मान लेना और दूसरोंके पूर्वाचार्योंके न लिखनेकी आड़ लेकर निषेध करना यह बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो विवेकीजन स्वयं विचार लेवेंगे।

और श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखनेकी आड़ लेकर इन महाराजको खरतरगच्छमें नहीं होनेका मानते हो तो इसीके अनुसार तो श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीदेवभद्रसूरिजी, श्रीवर्द्धमानसूरिजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी, श्रीविबुद्धप्रभसूरिजी, श्रीजिनदत्तसूरिजी, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह खरतरगच्छके बहुत आचार्योंने अपने बनाये ग्रन्थोंमें अपना खरतरगच्छ नहीं लिखा है तथा ऐसेही तपगच्छवालोंने भी कितनेही ग्रन्थोंमें अपना तपगच्छ नहीं लिखा है। और दूसरे भी प्राचीन तथा थोड़े कालके कितनेही ग्रन्थोंमें ग्रन्थकारोंने

अपना गच्छ नहीं लिखा है ऐसे बहुतही ग्रन्थ दृष्टिगोचर आते हैं तो क्या उन सबी ग्रन्थकारोंको उनके गच्छके न मानोगे सो तो कदापि नहीं तो फिर व्यर्थका हठ वादमें क्या सार निकलेगा सो विवेक बुद्धि हृदयमें लाकरके स्थिर चित्त पूर्वक न्याय दृष्टिसे विचारनेकी बात है।

और जैसे श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीको तपाविरुद मिला था सो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तथा श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी जानते थे, तो भी (इन महाराजकी इसी ग्रन्थके पृष्ठ ६५६ से ६७६ तकमें छपेमुजब बड़गच्छको छोड़कर चैत्र वालगच्छसे ही परम्परा मिलाई) तपाविरुदको नही लिखा।

तैसेही श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी भी अपने गुरुजी श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुदकी प्राप्ति और चैत्यवासियोंके साथ शास्त्रार्थ वगैरह सब बाते जानते थे तो भी खरतर विरुद न लिखा और चन्द्रकुलादिसे अपनी श्री-जिनेश्वरसूरिजीकी परम्परा मिलाई है।

और श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीजिनदत्त-सूरिजी, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनपतिसूरिजी, श्रीसुमतिगणी श्रीजयन्तविजयत काव्यकर्त्ता वादीसिंह विरुद धारक श्रीअभयदेव सूरिजी वगैरह इन महाराजोंको तो खरतर विरुदका आग्रह नही था इसलिये वर्त्तमानिक समयवत् आप लोगोंकी तरह अपने गुरुको लम्बी चौड़ी पदवी लिखते चले जावे परन्तु इन महा-राजोंको तो अशुद्ध प्रवृत्तिको हटाके, शुद्ध मार्ग प्रकाश करनेका आग्रह था, इसलिये 'आगम अठोत्तरी' "संघ पट्टक" सन्देह दोला वली, संघ पट्टककी और इसीकी वृहत् तथा लघु दोनों वृत्ति, गणधर सार्धशतक वृहत् तथा लघु दोनों वृत्ति, पट्स्थान-कप्रकरणवृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें द्रव्यलिङ्गी शिथिलाचारी उत्सूत्र-

भाषियों सम्बन्धी क्या क्या लिखा है सो तो उपरोक्त महाराजोंके रचे हुए ऊपरके ग्रन्थोंको देखनेसे मालूम हो जावेगा और तुमारी शङ्का मुजब तो यह सभी महाराज खरतरगच्छके तथा श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह तपगच्छके नहीं ठहरेंगे सो कदापि नहीं हो सकता और बहुतसे ग्रन्थकारोंने तो अपना चान्द्रकुलादि भी नहीं लिखा परन्तु तुमारी शङ्का मुजब तो उनोंके चान्द्रकुलादि भी नहीं मानने चाहिये ऐसा कभी नहीं हो सकता सो इसलिये अज्ञानतासे ऐसी शङ्का करना व्यर्थ है इसको विवेकी पाठकगण विशेषतासे तो स्वयं विचार लेवेंगे ।

और श्रीनवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह इन महाराजोंने अपना खरतर गच्छ नहीं लिखा जिसका कारण तो यही है कि इन महाराजोंको इस खरतर विरुदके लिखने ऊपर इतना आग्रह अभिमान नहीं था क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने चैत्यवासियोंकी अविधि उत्सूत्रता शिथिलताका निषेध करके संयमियोंका शुद्ध व्यवहार विधि मार्गको भगवान्‌की आज्ञानुसार प्रगट किया था सो ऐसे करना तो सभी आत्मार्थी जैनी आचार्य उपाध्याय साधुका कर्त्तव्य रूप मुख्य धर्म ही है सो वोही श्रीजिनेश्वरसूरिजीने किया परन्तु विशेष कोई नवीन आश्चर्यकी अपूर्व बात नहीं करी थी, तो भी इस पञ्चमकालमें उस समय लिङ्गधारी चैत्यवासियोंका उपद्रव बढ़ गया था शिथिलताका प्रचार बहुत हो गया था और अपने नगरमें संयमियोंको आने भी नहीं देते थे और किसी किसी क्षेत्रमें संयमी अल्प रह गये थे इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीने अपने शुद्ध संयमका वर्त्ताव पूर्वक चैत्यवासियोंके उपद्रवका भय न करते हुए साहस करके अणहिलपुरपट्टणमें आये और उन्होंको हटाने पूर्वक संयमी मुनि

योंका विहार कराना शुरू किया उससे वहां विधि मार्ग और संयमी साधुओका प्रकाश होने लगा इसलिये इन महाराजके इस कर्त्तव्यको विशेष रूपसे भी मान सकते हैं इसलिये इन महाराजका इस कर्त्तव्यको श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी श्रीसुमतिगणीजी दूसरे श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्य अपने ग्रन्थोमें विस्तारसे लिखते आये हैं परन्तु खरतर विरुद पर इतना आग्रह न होनेसे इसको जगह जगह नहीं लिखा तो भी इसीका कारण लिखा हुआ है सो कार्यका सम्बन्ध जोड़कर मान सकते हैं इसलिये उपरोक्त महाराजोने खरतर विरुद नहीं लिखा तो भी कोई हरजा नही है।

और श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके तो श्रीजिनेश्वरसूरिजीने चैत्यवासियोंको जीते उसको तथा खरतर विरुदको लिखनेका प्रसङ्ग भी नहीं था क्योंकि प्रशस्तियोके लेखोंमें कथानकरूपकी बातको नहीं भी लिखे तो कोई हरजा नहीं है और कर्मोंकी विचित्रताके कारणसे चैत्यवासी होगये थे, परन्तु वे लोग भी तो श्रीवीरप्रभुकी परम्परावाले तथा सूत्रवृत्ति आदि पञ्चाङ्गी और प्रकरणादि माननेवाले थे और श्री अभयदेवसूरिजीने श्रीनवांग वृत्ति वगैरह जैनीमात्र सबगच्छवालोंके माननेके लिये बनाई थी किन्तु किसी एक पक्षके माननेके लिये नही और खरतर विरुद सम्बन्धी बात तो चैत्यवासियोको और अन्य शिथिलचारियोंको मान्य नही थी इसलिये यदि श्रीनवांग वृत्तिमें श्रीअभयदेवसूरिजी खरतर विरुदकी बात लिखते तो चैत्यवासियोके और अन्य शिथिलाचारियोके तथा खरतर विरुदके द्वेषी अन्य गच्छ वालोके श्रीनवांग वृत्ति वगैरह इन महाराजके बनाये शास्त्रोको मान्य करनेमें बाधा खड़ी हो जाती, और श्रीनवाङ्ग वृत्ति सबगच्छवाले शिथिलाचारी चैत्यवासी या

संयमी सबके एकसमान उपगारी होनेसेही तो इन महाराजने सर्व मान्य चान्द्रकुल लिखा परन्तु खरतर न लिखा सो तो इन महापुरुषोंने बहुतही अच्छा किया जो गच्छके आग्रहके निमित्त कारणकी जड़कोही नहीं लिखा अन्यथा जैसे वर्त्तमानकालमें कितनेही विवेक शून्य गच्छकदाग्रही जैनी नाम धरानेवाले, किसी गच्छवालेने अपने गच्छके नामसे कोई अच्छा भी पुस्तक बनाया होवे तो भी उसको नहीं मानते हैं। सो मानना तो दूर रहा हाथमें लेकर वांचनेमें भी सङ्कोच करते हैं, और कितनेही आदमी उस पुस्तककी बातों सम्बन्धी सत्यासत्यका निर्णय किये बिना ही बोलने लगते हैं कि इसमें क्या है यह तो अमुक गच्छ वालेने बनाया है सो अपनी बातें लिखी होगी इसलिये इसको नहीं बांचना चाहिये सो ऐसे दृष्टान्त वर्त्तमानमें बहुत देखनेमें आते हैं सो ऐसा न होनेके लियेही तथा भाष्यचूर्णिकारोंकी और हरिभद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी तरह इन महाराजने भी स्वभाविकसे खरतर विरुद न लिखा परन्तु आप खरतर विरुदमें ही थे सो स्वयं अच्छी तरहसे जानते थे।

और दूसरा यह भी कारण है कि श्रीअभयदेवसूरिजी श्री-जिनवल्लभसूरिजी वगैरह उपरोक्त महाराज अपने अपने बनाये शास्त्रोंमें अपना खरतरगच्छको जगह जगह पर लिखते आवे और उस समयके चैत्यवासियोंकी तरह गच्छरूप वाड़के आग्र-हका बन्धनको दृढ़ होनेका कारण करें, ऐसा उन महाराजोंसे कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि देखो—उस समय चैत्यवासी लोग अपने अपने भक्तोंको अपने दृष्टिरागमें फसानेके लिये अपने अपने गच्छकी परम्पराका नाम लेकर विवेक शून्य भोले जीवोंको अपनी मायाजालमें फसाते थे और आराधक, विरा-धक, सम्बन्धी शुद्ध वर्तावके विचारोंको भूलाकर अपनी स्वार्थ

सिद्धता करनेके लिये, ब्राह्मण चारण भाट और कुलगर (गृहस्थ लोगोंके वंश परम्परा सुनानेवाले) वगैरहोंकी तरह चैत्यवासियोंने भी गच्छ परम्पराके बहाने भोले जीवोंको अपने वाड़ेमें रख छोड़े थे इसलिये ही तो श्रीसङ्घपट्टककी व्याख्या वगैरह शास्त्रकारोंने गच्छोंके पक्षपात परम्परा रूप वाड़ेके बन्धनको तोड़नेके लिये और दृष्टिराग छोड़कर शुद्ध विधि मार्ग श्रीजिनाज्ञा अङ्गिकार करनेके लिये बहुत लिखा है सो तो छपा हुआ सङ्घपट्टक प्रसिद्धही है इसलिये श्रीअभयदेवसूरिजी श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह महापुरुषोंने गच्छ बन्धनके वाड़ेके कारणभूत पिछाड़ी परम्परागतमें न होनेके लिये अपने खरतर बिरुदको अलग करके न लिखा और चन्द्रकुलके अन्तरगत उस समयके सर्व-मान्यचन्द्रकुलादिको लिखते रहे हैं, आत्मकल्याण और परो-पकार तो श्रीजिनाज्ञा पूर्वक सत्योपदेशमें है किन्तु गच्छके पक्षपातके बन्धनरूपवाड़ेमें नहीं है।

अब मेरेको बड़े ही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छमें बड़े बड़े विद्वान् कहलाते हैं परन्तु धर्मसागरजी आत्मारामजी वगैरहोंकी अन्धपरम्परामें फसकर गड्डरीह प्रवाहकी तरह एक एककी देखादेखी विवेक बुद्धिसे कारण कार्यको तथा उन महापुरुषोंके भाष्यचूर्णिकारा पूर्व-धरादि पूर्वाचार्यों के अभिप्रायको और उस समयके चैत्य-वासियोंकी गच्छके नामसे अपना अपना वाड़ा बांधनेकी खोटीप्ररूपणावगैरहका विचार किये बिना और श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी श्रीधर्मघोषसूरिजीके बनाये ग्रन्थोंकी प्रश-स्तिके लेख रूप अपने घरको देखे बिनाही श्रीनवाङ्गी वृत्ति-कारक श्रीअभयदेवसूरिजीने 'खरतर न लिखा' 'खरतर न लिखा'

ऐसे लिखते कहते चले जाते हैं और आपसमें कदाग्रह बढ़ाते हैं उन्हींकों उपरोक्त लेख बांचकर लज्जित होना चाहिये और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके हठवादको छोड़कर सरलता पूर्वक सत्य बात ग्रहण करनी चाहिये।

और अपना घर भी तो देखना चाहिये कि श्रीदेवेन्द्रसूरिजी श्रीक्षेम कीर्त्तिसूरिजी वगैरहोंने वड़गच्छको छोड़कर चैत्रवालगच्छ को खुलासा पूर्वक लिखा है जिसको तो माननेमें न मालूम किस कारणसे लज्जा करते हो और इन पूर्वाचार्यों के लिखे चैत्रवाल गच्छसे परम्परा मिलाना छिपाकर श्रीजिनाज्ञा और अपने पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रत्यक्ष विपरीत वड़गच्छसे परम्परा मिलाते हो सो "अकरंतोगुरुवयणं, अणन्त संसारीओ, भणिओ" इस वाक्यानुसार आप लोगोंका कितना संसार माना जावे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और अपने घरमें तो बिना लिखे भी मनमाना चाहे जैसा विपरीत वर्तावको भी मान बैठना और दूसरे महापुरुषोंके अभिप्रायको समझे बिना कुविकल्प उठाना सो बाल लीलाके सिवाय और क्या होगा। इसलिये दूसरेके वास्ते कुयुक्ति करना वोही अपने सिरपर गिरने लगे वैसे कदाग्रहको छोड़नाही आत्मार्थी अल्पकर्मियोंका काम है।

शङ्का—अजी आप तो उपरोक्त पूर्वाचार्यों ने अपनी अपनी गच्छ परम्पराके पक्षपातरूप बन्धनके वाड़े का कारण न होनेके लिये अपना खरतर विरुद नहीं लिखा ऐसा कहते हो तो फिर १४००।१५०० से तो खरतर गच्छके बहुत आचार्य अपना खरतर गच्छ लिखने लगे थे और वर्त्तमानिक समयमें तो बड़े जोर शोरसे लिखते हैं जिसका क्या कारण है।

उत्तर—भोदेवानु प्रिय? संवत् १४००।१५००से तथा वर्त्तमानमें खरतर लिखनेका तो यही कारण है कि—यद्यपि श्रीजिनेश्वर-

सूरिजीने प्रहिलेही पहिले राजसभामें चैत्य वासियोंका पराभव किया था, तबसेही उन्होंका जोर दिनो दिन कमती होने लगा, सो जैसे जैसे-संयमियोंने चैत्यवासियोंके अनुचित वर्तावके भेद खोलकर भव्य जीवोको शुद्ध मार्गमें लानेका खूब प्रचार किया तैसे तैसेही-वे चैत्यवासी जन अपने अनाचारोंका विचार करके उनोंको छोड़ तो नही सकते थे, परन्तु विशेष रूपसे संयमियोंके द्वेषी बनते थे, और जबसे श्रीजिनवल्लभ सूरिजीने, तथा श्रीजिनदत्तसूरिजीने, उन चैत्यवासियोंकी अविधि उत्सूत्रता शिथिलताको बड़े जोर शोरसे निषेध करी और भव्य जीवोंके उपकारके लिये भगवान्की आज्ञानुसार शुद्ध विधिमार्गको प्रकाशित किया, और कठिन क्रियाके वर्तावसे शिथिलाचारियोंको लज्जित किये, और चमत्कारोसे तथा उपदेशसे हजारों लाखों अन्यमत वालोंको प्रतिबोध देकर जैनी ओसवाल वगैरह श्रावक बनाये, और विशेष रूपसे चैत्यवासियोंकी मायाजाल उखेड डालनेके लिये अनेक ग्रन्थों की भी रचना करी, और चारो तरफसे श्रीजैनशासनकी बहुत बड़ी भारी उन्नति करके दूसरे उदयको प्रकाशमान किया, तबसे चैत्यवासी लोग और अन्य गच्छवाले भी शिथिलाचारीजन इन महाराजोंसे बहुत द्वेष रखने लग गये थे, (सो तो छपा हुआ श्रीसङ्घपट्टक वांचनेसे मालुम हो जावेगा) उससे इन महाराजोकी अनेक तरहसे निन्दा करके अवर्णवाद बोलने लगे, तथा खरतर (सुविहित) विरुदसे बहुत द्वेष हो गया, परन्तु खरतर विरुद धारकोंकी बनाई हुई श्रीनवाङ्गसूत्र वृत्ति वगैरह शास्त्रोंको मान्य किये बिना काम भी नही चल सकता था, इसलिये उन द्वेषी लोगोंने १३०० के लगभग श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजको खरतर विरुदकी प्राप्ति होनेका निषेध

करना शुरू किया, और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज खरतर गच्छमें नहीं हुए ऐसा कहते हुए? नवाङ्ग वृत्ति मानने रूप अपना अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये, और श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजपर झूठे कल्पित दोषोंका अव-लम्बन लगाके १२०४ में खरतरगच्छकी उत्पत्ति कहने लगे, तबसे १३००।१४०० सौ से शिथिलाचारको हटानेके मूल कारण भूत और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतर याने सुविहित गच्छमेंही हुए ऐसा सबको विशेष रूपसे मालुम होनेके लिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुदकी प्राप्तिके लिखनेका कारण बन गया। अन्यथा पूर्वे तो जैसे प्राचीनाचार्योंके गच्छ लिखनेका रूढी नहीं थी, तैसेही श्रीजिने-श्वरसूरिजीसे खरतर विरुद लिखनेकी प्रवृत्ति भी नहीं थी, जिस का विशेष खुलासा तो श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतर न लिखने सम्बन्धी शङ्काके समाधानमें ऊपरमेंही छप चुका है।

और जैसे जैसे द्वेषी लोगोंने श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध सम्बन्धी विवाद बढ़ाया, तैसे तैसेही खरतर विरुदके लिखनेकी प्रवृत्ति भी बढ़ती चलती गई है?

और जबसे कालदोषादि कारणोंसे श्रीतपगच्छकी समुदायमें भी कितनीही बातोंमें शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्ति होने लगी, तबसे खरतर विरुदधारकोंने उसका निषेध करना शुरू किया, उसी समयसे इन दोनों गच्छोंके आपसमें द्वेषका कारण होने लगा, और जैसे जैसे आपसमें खण्डन मण्डन वादविवाद बढ़ने लगा, तैसे तैसेही एक एकके-थाप-उत्थापसे निन्दा-ईर्षा भी बढ़ने लगी; जिसमें भी तपगच्छके कितनेही आचार्यादि महाराजोंने तो श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक, तथा अधिक मासकी गिनति पूर्वक दूसरे श्रावणमें पर्युषण पर्वका आराधन, और सामायिका-

धिकारे पहिले करेमिभन्ते पीछे इरियावही, और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुदकी उत्पत्ति, और श्रीनवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्रीजिनदत्तसूरिजी वगैरह शासन प्रभावकाचार्य्य श्रीखरतरगच्छमें हुए इत्यादि बहुत सत्य बातें मान्यकरी थी और अपने अपने बनायें ग्रन्थोंमें खुलासा पूर्वक इन बातोंको लिखते रहे, इन्होंसे खरतर वालोंका पूर्ण प्रीति भाव सहित संपसे वर्ताव होता था और आपसमें एक एकको वन्दना स्तुति-गुण गान-करते रहते थे, परन्तु जबसे उपरोक्त बातोंमें भी चैत्यवासियोंका अनुकरण होने लगा, तबसे विशेष विरोध भाव बढ़ गया, जब खरतर गच्छवाले भी उपरोक्त बातोंको बड़े जोर शोरसे शास्त्रप्रमाणानुसार सिद्ध करने लगे, तब तपगच्छवाले भी कितनेही कदाग्रहीजन तो चैत्यवासियोंकी तरह कुयुक्तियोंका और कदाग्रहका साहरासे अपना इष्ट स्थापन करने लगे, परन्तु नवाङ्ग वृत्ति वगैरह माने बिना काम नहीं चल सकता था, इसलिये श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुद निषेध करके-नवाङ्गवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीको खरतर गच्छकी परम्परासे अलग करनेका परिश्रम करने लगे, और कालान्तरमें चैत्यवासियोंकी और अपने गच्छके कदाग्रहियोंकी अन्धपरम्परामें पड़कर श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापनसे संसार बढ़नेके भयको छोड़कर अपने पूर्वाचार्योंके कथनको भी उन्मूलन करके-धर्मसागरजीने-षट्कल्याणक, अधिकमास, दूसरे श्रावणमें तथा प्रथमभाद्रवमें पर्युषणा,सामायिकमें प्रथम करेमिभन्ते, श्रीजिनेश्वर सूरिजीसे खरतर विरुद वगैरह शास्त्रानुसार आज्ञानुकूल सत्य बातोंको निषेध करनेके लिये और उत्सूत्रोंसे तथा कुयुक्तियोंसे इन बातोंके विरुद्ध प्रत्यक्ष मिथ्या झूठी बातोंको

स्थापन करनेके लिये खरतर गच्छके प्रभावक युग प्रधान पुरुषों-की निन्दा पूर्वक खूब दूढ़तर कदाग्रह बढ़ानेका परिश्रम किया। और उत्सूत्रोंके भण्डार तथा कुयुक्तियोंकी अन्धखाडरूप कितनेही ग्रन्थोंकी भी रचना करके तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके कथनको छोड़कर अपनी अन्धपरम्परामें चलनेवाले पञ्चमकालके गुरुकर्मी कदाग्रहियोंके संसारको वढ़ानेके कारण रूप प्रगट किये सो यद्यपि उस समयके कितनेही आचार्यादि महाराजोंने इनके कदाग्रही वचनोंका अनादर करके उन ग्रन्थोंको जलशरण करा दिये, जिससे भविष्यतमें कदाग्रह बढ़ने नहीं पावे, तो भी कलयुगी महिमाके कारण कितनेही भारी कर्मे उन बातोंको पकड़ने लगें, और कालान्तरमें-जयविजयजी, विनयविजयजी, वगैरहोंने भी उसी मुजब-कल्पदीपिका, सुखबोधिका, वगैरहमें षट्कल्याणक, अधिक माससे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा सम्बन्धी लिखा, उसकी समीक्षा इसी ग्रन्थमें हो चुकी हैं। और वर्त्तमान समयमें न्यायाम्भोनिधिजी नाम धारक श्रीआत्मारामजीने भी धर्मसागरजीको मानो अपने परम गुरुमान करके उनकी बातोंके फेरमें भद्रजीवोंको गेरनेका खूब विशेष रूपसे परिश्रम किया और भोले जीवोंको श्रीजिनाज्ञाके शत्रु बना दिये, उसी मुजब वर्त्तमानमें उन्होंके समुदायवाले-न्यायरत्नजी, वल्लभ विजयजी-वगैरह भी वर्तावकर रहे हैं, सो तो इस ग्रन्थको पूर्ण वांचनेवाले स्वयं समझ लेवेंगे

और खासकरके-वल्लभविजयजीके कर्त्तव्य परही मेरेको इस ग्रन्थकी रचना करनी पड़ी है।

और खास न्यायाम्भोनिधिजीके तथा धर्मसागरजीके परम पूज्य श्रीतपगच्छनायक श्रीसोमसुन्दरसूरिजीके सन्तानीय श्री-सोमधर्मगणीजीने संवत् १४१२ के वर्षमें "श्रीउपदेश सत्तरी" नामा

ग्रन्थ बनाया है। उसमें श्रीभीमराजासे श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद, श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी खरतर गच्छमें हुए, ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा है, जिसका पाठ भी इसी ग्रन्थके ६८० में छप चुका है, उस पाठको मान्य करना छोड़ करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके कदाग्रहसे अपने पूर्वजो की तथा अपने पूर्वजोंके कथनकी अवहिलना करते हुए, उनपर अनाभोगका दूषण लगाते है, अर्थात् तपगच्छाचार्य श्रीसोम-सुन्दरसूरिजीके सन्तानीय (प्रक्षिप्त) ने संवत् १४१२ मे 'उपदेश सत्तरी'में श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे-खरतरगच्छ श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छमें हुए, ऐसा लिखा है उसको झूठा ठहरा करके किसीकी देखादेखी विना उपयोगसे लिखा होगा-ऐसा उपरोक्त धर्मसागरजी तथा न्यायाम्भोनिधिजी दोनों महाशयोंने लिखा है, अन्य भी कदाग्रहीजन ऐसा कहते हैं, सो बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर-गच्छकी उत्पत्ति सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण मौजूद हैं, तथा परम्परागतसे १३ भेद-वगैरह प्रत्यक्ष प्रमाण भी देखनेमें आते हैं, इसलिये अपने पूर्वजके सत्यकथनको विना उपयोग-अनाभोग-अनादरनीय कहके-पूर्वजकी आशातना और झूठा कदाग्रह करना सर्वथा अनुचित है,। जिसपर भी अनाभोग कहनेका आग्रह करोगे, तो, अनाभोगका कारण भी बतलाना होगा, यदि कहोगे, कि-श्रीजिनेश्वरसूरिजीको भीमराजाने खरतर विरुद नहीं दिया, तो यह भी कहना सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि न देने सम्बन्धी आप कोई शास्त्रीय दृढ प्रमाण देखा सकते हो, सो तो नहीं। तो फिर आपके मति कल्पनाका आग्रहमात्रको कौन मान्य करेगा, अपितु कोई भी नहीं। और १०८०, या पाठान्तरे १०८४ में, श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीभीम

राजा दोनों विद्यमान थे, और श्रीजिनेश्वरसूरिजीकी परम्परामें अनुक्रमें-श्रीजिनचन्द्रसूरिजी;तथाश्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभय देवसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी श्रीजिनदत्तसूरिजी;वगैरह महा पुरुषोंकी परम्परा आजतकचलरहीहैतथाश्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद सम्बन्धी प्राचीन शास्त्रोंके प्रमाण भी मिलते हैं; उसीके अनुसार आपके पूर्वजने भी लिखा है इसलिये संवत् १०७७ में दुर्लभ राजाके परलोक जाने सम्बन्धी बालकी आड ले करके श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करना चाहो सो भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि-कितनी जगह दुर्लभराजा लिखा है और कितनी जगह भीमराजा लिखा है यह दोनों नाम पाठा-न्तरसे माननेमें आते हैं और आपके पूर्वजने भीमराजा लिखा है इसलिये सं॰१०७७में मृत्युकी आड़से, १०८० या १०८४ की बातका निषेध नहीं हो सकता। उसी समय भीमराजा मौजूद था।

तथा और भी यहां पर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि—जब आपके पूर्वजने १४०० में श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर गच्छ लिखा तो इसके पहिले १२००।१३०० सौ में यह बात जैनमें प्रगटपने प्रसिद्ध होनी चाहिये, तथा उसी समयके शास्त्रोंमें भी लिखा हुआ होना चाहिये और तपगच्छके आचार्यादि भी इसी बातको मान्य करनेवाले होंगे, तभी तो सं॰ १४०० में आपके पूर्वजने यह बात लिखी होगी अन्यथा कैसे लिखते, और उस समयके किसी भी पूर्वजने इस बातका निषेध भी नहीं किया इसलिये अभी थोड़े कालके धर्मसागरजी जैसे कदाग्रहियोंकी कल्पनाको पकड़के प्राचीन सत्य बातको अस्वीकार करना और अपने पूर्वजको अनाभोगका दोष लगाना आत्मार्थियोंका काम नही है।

और भी धर्मसागरजी तथा न्यायाम्भोनिधिजी इन दोनों

महाशयोंने, खरतरगच्छकी पाच पट्टावली लिखके उसमें पूर्वाचार्यों के नामोंका पाठान्तर सम्बन्धी आक्षेप करके अपनी विद्वत्ता दृष्टि रागियोंको दिखाई है, परन्तु विवेकी विद्वान् तो उनकी कुटिलताही समझते हैं, क्योंकि-श्रीमहावीर-स्वामीके शासनमें-अनेक गच्छ, कुल, शाखा, अलग अलग निकली, जिसमें किसीका समुदाय बहुत बढ गया, किसीका कम हो गया और किसीकी बहुत काल तक परम्परा चली, किसीकी थोडे काल तक, और कालदोषादि कारणोंसे किसीकी तो पट्टावली मिलती भी नही, किसीकी त्रुटक मिलती है, किसीकी पाठान्तरसे मिलती है, और यद्यपि परम्परागतसे-आचार्य, साधु, होते चले आते हैं, परन्तु पूरी पट्टावलीके अभावसे उनको कोई दोष नही लग सकता, और अपने अपने हाथोंसे अपना अपना नाम पट्टावलीमें पूर्वाचार्यों के लिखनेकी रूढी भी नहीं है और पिछाड़ी पट्टावली लिखनेवाले सर्वज्ञ भी नही होते हैं, किन्तु जैसे जैसे परम्परासे वा, दूसरोंसे सुननेमें आवे वैसीही पट्टावली बनानेवाले लिख देतेहै,इसलिये पट्टावलीके पाठान्तर सम्बन्धी दोनों महाशयोका आक्षेप करना सो गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका कारण ठहरता है, इसको विवेकीजन स्वय विचार सकते हैं।

और खास दोनों महाशयोने जो अपनी पट्टावली लिखी है, सो भी तो कोई सर्वज्ञके कथनसे नहीं लिखी, और श्रीहीर-विजयसूरिजीके पाठान्तर सम्बन्धी २१३ मतान्तर "सेन प्रश्न" नामा ग्रन्थमें लिखे हैं और जहां गच्छ भेद-आपसमें विरुद्धता हो जाती है, वहां अपनी मूल पट्टावली वगैरह पुस्तक एक दूसरेको नहीं देते हैं, और कुसप-अभिमानादि कारणोंसे दूसरे के पास कोई मांगनेको भी नही जाता, और जैसा सुननेमें

आया याद होवे वैसाही लिख रखते हैं, इत्यादि कारणोंसे वर्त्तमानिक तपगच्छ खरतरगच्छ वगैरहोंकी पट्टावलियोंमें पाठान्तर देखनेमें आता है। खास मैंने तपगच्छकी ३।४ पट्टावलियोंमें ३।४ मतान्तरसे पाट परम्पराके नामोंका भेद देखा है और पहिलेके समयमें, मुसलमानी राजाओंके भयसे जिसके पास जो पुस्तक पट्टावली-आदि होते वो भण्डारादिमें बन्ध करके रखते थे उससे किसी अन्यको देना भी मुश्किल था और प्राचीन पुस्तक पट्टावली वगैरह हजारों लाखों शास्त्रोंको धर्मद्वेषी मुसलमानादिकोने नष्ट भी कर दिये थे, उस समयमें पट्टावली लिखनेमें प्राचीन शास्त्रोंके अन्तकी प्रशस्ति देखनेको नहीं मिल सकती थी, इत्यादि कारणोंसे जैसा याद आया वैसा लिखके पट्टावली बनाते थे इसलिये पाठान्तर होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है जिसपर कोई आक्षेप करे तो उनकी अज्ञानताके सिवाय और क्या कहा जावे सो विवेकीजन स्वयं विचार सकते हैं।

और वर्त्तमानिक तपवा खरतरकी पट्टावलीके मतभेदका तो कहनाही क्या परन्तु पहिले पूर्वधरादि प्राचीनाचार्योंकी तो पट्टावली बिलकुल नहीं मिलती तो क्या वे महाराज श्रीवीरप्रभुकी परम्परावाले नहीं माने जावेंगे, या उन महाराजोंपर किसी तरहका आक्षेप कर सकते हैं, सो तो कदापि नहीं तो फिर वर्त्तमानिक मतभेदकी व्यर्थ झूठी आड़ लेकर श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर उत्पत्तिका निषेध करना यह क्या विवेकियोंका काम है सो कदापि नहीं जिसपर भी दोनों महाशयोंने खरतरगच्छकी परम्परावालोंपर बड़ा भयङ्कर आक्षेप किया तो फिर इनोंकी बुद्धि मुजब तो चरित्र प्रकरणादिकोंमें पाठांतर मतभेद हैं वे भी चरित्र प्रकरणादि सब दोषी ठहर जावेंगे,

धन्य है ऐसी कदाग्रहकी कुटिल बुद्धिको, अब विवेकी सत्यग्राही पाठकगणसे मेरा यही कहना है, कि वर्त्तमानकालमें सर्वज्ञके अभावसे पाठान्तरकी बातको झूठी कहना या एकको मान्य, दूसरीका खण्डन, वगैरह न करके मध्यस्थ विचारसे वर्ताव करनाही उचित है इसलिये चरित्र प्रकरण पट्टावली वगैरहोंके पाठान्तरोंको देखके वितर्क करना और कदाग्रह बढाना सर्वथा अनुचित है। महान् कर्मबन्धका कारण है।

और इन दोनो महाशयोंने पट्टावलीके पाठान्तरपर आक्षेप किया तो श्रीकल्पसूत्रकी थिवरावलीके व्याख्याकारोंके लेखक दोषादि भेदभावके अभिप्रायको तथा चरित्र प्रकरणादिकोंके पाठान्तरोंको देखके दोनों महाशयोंकी अन्धपरम्परामें चलनेवालोंको लज्जित होना चाहिये और कदाग्रहको छोड़कर सरलतासे न्यायपूर्वक सत्यको मान्य करना चाहिये,—

और पट्टावलियोंमें पूर्वाचार्योंके नामोका मतभेद है, परन्तु सभी पट्टावलियोंमें श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद् तथा श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीको खरतरगच्छमें लिखे है, इसलिये पाठान्तरकी पट्टावलियोंसे खरतर विरुद्का तथा श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके खरतरगच्छमें होनेका निषेध कदापि नही हो सकता सो तो निष्पक्षपाती विवेकीजन स्वय विचार सकते है,—

और कितनेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजसे खरतर गच्छकी उत्पत्ति होनेका कहते हैं सो भी मिथ्या है, क्योंकि इन महाराजसे खरतर गच्छकी नवीन उत्पत्ति होने सम्बन्धी कोई भी कारण नहीं बना, किन्तु इन महाराजसे खरतर गच्छकी विशेष प्रसिद्ध होनेसे, और शिथिलाचारी द्रव्यलिङ्गी गच्छ कदा-

ग्रहियोंके साथ खरतर गच्छवालोंसे विशेष द्वेष बुद्धि होनेके कारण तो बन गये सोही दिखाता हूं ।

देखो जब पहिलेसे श्रीजिनेश्वरसूरिजीने प्रगटपने राज्य सभामें चैत्यवासियोंका पराभव किया, और शुद्ध क्रिया पूर्वक अणहिलपुर पट्टणमें संयमियोंका विहार खुला कराया तबसेही वसतिवासी (खरतर) कहलाने लगे उससे चैत्यवासियोंका कपट क्रियाका भेद खुला होने लगा, जिससे वे लोग संयमियोंसे विरोध भाव रखने लगे, इसके बाद श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीमहाराजने भी चैत्यवासी वगैरहोंकी शिथिलता और उत्सूत्रता श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध वर्त्तावको "आगमअठोत्तरी" नामा ग्रन्थमें, चैत्यवासियोंका प्रगट नाम न लेते हुए गुप्त नाम से (मोगम) खूब खण्डन किया, परन्तु प्रगट नाम न लेनेके कारण इन महाराजसे चैत्यवासियोंने इतना विशेष विरोध न किया, परन्तु इन्हीं महाराजके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने तो चैत्यवासियोंका प्रगट नाम लेकर देश देशान्तरोंमें खूब जोर शोरसे खण्डन किया तथा उस विषय सम्बन्धी 'सङ्घपट्टक' वगैरह ग्रन्थ भी बनाये, और कठोर (कठिन) क्रिया तथा विद्वत्ता हिम्मत और चमत्कारोंसे बहुत भद्रजीवोंको चैत्यवासियोंकी अन्ध परम्परा और अविधिकी मायाजालसे छोड़ाके शुद्ध मार्गमें लाये, उसीसे इन महाराजसे खरतर वसतिवासी सुविहित नाम की बहुत प्रसिद्धि हुई है और चैत्यवासियोंसे बहुत विरोध भाव हो गया सो भी छपा हुआ 'सङ्घपट्टक'के देखनेसे मालूम हो जावेगा, परन्तु इन महाराजसे खरतरकी नवीन उत्पत्ति नहीं हुई थी क्योंकि खरतरकी उत्पत्ति तो इन महाराजसे पूर्व तीसरी पिढ़ीमें श्रीजिनेश्वरसुरिजी महाराजसे हो गई थी उसका विशेष निर्णय पहिले छप चुका है ।

और श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पहिले वाचनाचार्यगणीपदमें, कूर्चपुरीय गच्छके चैत्यवासी अपने गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजीके पास एक समय कल्पसूत्रवाचते "तेणं कालेणं तेणं समयेणं समणे भगव महावीरे पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था" तथा "साइणापरिनिव्वुडेभयव" इस पाठके अर्थमें श्रीवीरप्रभुके पांचकल्याणक हस्तोत्तरेमें और छठा स्वाति नक्षत्रमें मोक्ष हुआ, इसतरह भगवान्‌के छ कल्याणक कहने लगे तब गुरुने मना किया सो न मानके क्रोधसे लड़ाई करके अपने चैत्यवासी गुरुको छोड़कर निकल गये और छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा करने लगे तबसे इसी कारणसे "कोहाओ खरहरो जाओ" अर्थात् क्रोधसे खरतर कहलाने लगे इस तरहसे धर्मसागरजी वगैरहोंने अपने कदाग्रही उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहवाले ग्रन्थोंमें लिखा है और ऐसेही कितनेही अन्ध परम्परावाले मानते हैं सो अज्ञानतासे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे प्रत्यक्षही महामिथ्या अन्ध परम्परा चल रही है क्योंकि चैत्यवासी श्रीजिनेश्वरसूरिजीने इनकों न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द शास्त्रादि और ज्योतिषादि पढाये बाद अपनी राजी खुशीसे वाचनाचार्यगणीपदमें स्थापन करके श्रीनवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके पास जैनशास्त्रोंका गुरुगम्यतासे अध्ययन करानेके वास्ते भेजा था सो इन महाशयने भी उनको पूरण विद्वान् और शासनप्रभावक विनयादिगुण युक्त जानके थोड़ेही समयमें शास्त्राध्ययन करा दिया, और संसारवृद्धिकारक तथा दुर्गति देनेवाला चैत्यवास छोड़कर क्रिया उद्धार (पुनर्दीक्षा) से शुद्ध संयममें वर्ताव करने सम्बन्धी उपदेश दिया, उसको अङ्गिकार करके अपने चैत्यवासी गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पासही पुनर्दीक्षासे क्रिया उद्धार किया था, और गुरु गम्यतासे शास्त्राध्ययनकी धारणा

मुजब श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके कथन किये प्रमाण श्रीकल्पसूत्रके पाठार्थसे श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक भाष्यचूर्णिवृत्त्याद्यनुसार कथन किये थे, इसलिये गुरुसे लड़ाई करके क्रोधसे चैत्यवास त्यागनेसे खरतर कहलानेका और नवीन छ कल्याणकोंकी प्ररूपणा करनेका कहने तथा लिखने और माननेवाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी हैं, इसको विशेषतासे तो इस ग्रन्थको निष्पक्षपातसे सम्पूर्ण पढ़ करके सत्यग्रहण करनेवाले विवेकी आत्मार्थी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और धर्मसागरजीने तथा न्यायाम्भोनिधिजीने श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे खरतर विरुद निषेध करनेके लिये, अनेक तरहकी कुयुक्तियों करके भद्रजीवोंको भरममें गेरे हैं, उन सब कुयुक्तियोंकी समीक्षा यहांपर करके पाठकगणको दिखानेकी दिलमें बहुत है, परन्तु कितनेही कारण योगोंसे नहीं कर सकता हूं, तो भी कितनीही कुयुक्तियोंकी समीक्षा तो "आत्मभ्रमोच्छेदनभानु" में छप चुकी है, और सब कुयुक्तियोंका विशेष निर्णय "प्रवचन परीक्षा निर्णय" नामाग्रन्थमें विस्तारसे करनेमें आवेगा ;—

और धर्मसागरजीने श्रीजिनदत्तसूरिजीसे खरतर उत्पत्ति ठहरानेके लिये, इन महाराजपर अनेक तरहके आक्षेप करके चामुण्डीक, औष्ट्रिक, खरतर लिखके कल्पित बातोंसे भद्रजीवों को भरमाये हैं, और मिथ्यात्वके साथ वाहीका काम किया है, वही अन्ध परम्परा विवेक शून्य कदाग्रही गुरुकमें लोग चला रहे हैं, जिसका निर्णय "आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः" की पीठिकामें छप चुका है, और यहां पर भी विस्तार पूर्वक लिखनेका दिल था, परन्तु मेरे शरीरकी व्याधियोंके, और शिरके दर्दके कारणसे नहीं लिख सकता हूं, सो जिसके देखनेकी

इच्छा होवे सो "आत्मभ्रमोच्छेदनभानु" को देख लेना, उससे सब निर्णय हो जावेगा ;—

और श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुदका निषेध करना, तथा श्रीजिनदत्तसूरिजीसे खरतर उत्पत्ति ठहराना सो प्रत्यक्ष मिथ्या है। क्योंकि श्रीजिनेश्वरसूरिजी सम्बन्धी अनेक प्रमाण मौजूद है। सो शास्त्र प्रमाण और युक्ति पूर्वक उपरमेंही सब खुलासा छप चुका है। और श्रीजिनदत्तसूरिजी सम्बन्धी तो द्वेषी निन्दक लोगोंके अन्ध परम्पराका गड्डरीह प्रवाही मिथ्या प्रलापरूप कथनके सिवाय अन्य कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिये श्रीजिनेश्वरसूरिजीसे खरतर विरुद निषेध करनेका और श्रीजिनदत्तसूरिजीसे स्थापन करनेका प्रत्यक्ष मिथ्या कदाग्रहको छोड़ देनाही श्रेयकारी है। नहीं तो सत्य बातका निषेधसे और युगप्रधान शासन प्रभावकाचार्यको झूठे दूषण लगाके मिथ्या बातके स्थापनके लिये भद्रजीवोंको महापुरुषोंकी निन्दामें गेरनेसे संसार वृद्धि और दुर्लभ बोधिके कारणसे संसारका पार होना मुश्किल है। आगे इच्छा आपकी—

अब सत्य ग्रहण करनेवाले आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा इतनाही कहना है, कि अपने अपने गच्छकी अन्ध परम्पराके हठवादके दृष्टि रागको, और समुदायकी मान पूजा प्रतिष्ठाके लोभको, और लज्जाको, छोड़ करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करो। इस अनादि अनन्त संसार भ्रमणमें वारम्वार मनुष्य जन्ममें जैनधर्मकी योगवाई प्राप्त होना अतीव मुश्किलीसे है। इसलिये गच्छ कदाग्रहकी तुच्छ बातोंके विचारमें चिन्तामणीरत्नसे भी अधिक श्रीजिनाज्ञाको ग्रहण करनेमें किञ्चित् भी कदापि विलम्ब नहीं करना चाहिये।

और उपरोक्त लेखोंसे सत्यके भेदोंको तो निष्पक्षपाती विवेकीजन स्वयं समझ सकेंगे। इसलिये श्रीवीरप्रभुके छठे कल्याण-

कको। तथा-अधिक मासकी गिनतीसे दूसरे श्रावण या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणपर्वाराधनको। तथा सामायिकाधिकारे प्रथम करेमि-भन्ते पीछे इरियावहीको। और श्रीजिनेश्वरसूरिजीको खरतर विरुद मिला था, उससे श्रीनवाङ्गीवृत्ति कारक श्रीअभय-देवसूरिजी खरतरगच्छमें हुए उसको। और वड़गच्छके नहीं किन्तु चैत्रवालगच्छके श्रीजगचंद्रसूरिजीसे तपगच्छ हुआ। इत्यादि इन सत्य बातोंको निषेध करनेके लिये जो जो कुयुक्तिये कोई अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी गुरुकर्मी भद्रीकजीवोंको अपने कदाग्रहमें फँसानेके वास्ते उत्पन्न करें, तो वे सब जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे, सर्वथा व्यर्थ समझकर उनको कदापि ग्रहण नहीं करना। और इस ग्रन्थमें उपरोक्त बातें शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक दिखानेमें आई है। उसको ग्रहण करके अपनी आत्म कल्याणके कार्यमें उद्यम करना। तथा अन्य भव्य जीवोंको भी सत्य ग्रहण करवाके सत्यकाही उपदेश द्वारा विशेष प्रकाश करना। और अपने मनुष्य जन्ममें जैनधर्मकी प्राप्तिको सफल करना, परन्तु जमालि आदि निन्हवोंकी तरह संसार वृद्धि और दुर्लभ बोधिके निमित्त भूत उत्सूत्री होकर देशविरती और सर्वविरतीको हानी करके सम्यक्त्वको उन्मूलन करना उचित नहीं है।

इति—न्यायाम्भोनिधिपदधारकस्य षट्कल्याणकादि प्रतिषेध
विषयी लेखस्य श्रीमत् परमपूज्य गुरुवर्य श्रीसुमतिसागर
महाराजस्य लघुशिष्य मुनिमणीसागरनेयं
समीक्षा सम्पूर्णा कृता।

अब न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षाके अनन्तर प्रसङ्गसे धर्मसागरजीके लेखकी भी समीक्षा करना उचित समझ कर करता हूं। जिसमें अब यह ग्रन्थ बहुत बड़ा हो गया, तथा सुखबोधिकाके और जैन सिद्धान्त समाचारीके लेखकी समीक्षामें विशेष रूपसे वर्त्तमानिक सब सन्देहोंका निवारण हो गया है। इसलिये इनके लेखकी समीक्षामें तो श्रीतपगच्छकी उत्तमताको उठाकर उत्सूत्र प्ररूपणाका हर वर्ष प्रचार करनेके लिये जो पर्युषणाजीके व्याख्यानमें प्रथमही षट्कल्याणकोंका खण्डन करके मिथ्यात्वकी वृद्धि करते हुए श्रीजिनाज्ञाका नाश करके भद्रजीवोंको कुयुक्तियोंके विकल्पोंमें फसाकर उन्होंके सम्यक्त्वरूपी शुद्ध श्रद्धाके धनको उन्मार्गके उपदेशरूपी तस्कर वृत्तिसे हरण करनेवाले गाढ अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका अज्ञानतासे धर्मसागरजीने जो जो शास्त्रविरुद्ध बातें लिखी हैं। जिसका नमूना मात्र दिखाता हुआ संक्षिप्तसे थोड़ासी दिग्दर्शन मात्र समीक्षा करता हू। उससे भी तत्वज्ञजन तो सब पाखण्डकी मायाजालके परदोंके भेदको अच्छी तरहसे समझ लेंगे, सो प्रथम तो श्रीकल्पसूत्रकी किरणावली नामा अपनी बनाई टीकामें श्रीवीरप्रभुका चरित्र कथन करने सम्बन्धी धर्मसागरजीने लिखा है कि—

[साम्प्रतन्तीर्थाधिपतित्वेन प्रत्यासन्नोपकारित्वादादावेव श्रीभद्रबाहुस्वामिपादास्तद्भव व्यतिकरावास पंच कल्याणकनिबंध बधुर श्रीवीर चरित्र सूत्रयन्त उद्देश निर्देश सूचक प्राय जघन्य मध्यम वाचनात्मक प्रथम सूत्रमादिशन्ति "तेण कालेण तेण समयेण समणे भगव महावीरे पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था-तंजहा-हत्थुत्तराहि चुए चइत्ता गब्भं वक्कंतो ॥ १ ॥ हत्थुत्तराहि गब्भाओ गब्भं साहरिये ॥२॥ हत्थुत्तरा हि जाए ॥ ३ ॥ हत्थुत्तरा हि मुंडेभविता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ४ ॥ हत्थुत्तरा हिं

अणन्ते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल वर णाण दंसणेसमुपन्ने ॥५॥ साइणा परिनिव्वुडे भयवमिति ॥६॥" अत्र यत्तदोर्नित्योक्तसम्बन्धात् यत्राऽसौस्वामि दशम देवलोकात् पुष्पोत्तर प्रवर विमानाद्देवानन्दा कुक्षाववातरदिति । तेणन्ति, तस्मिन्, णमितिवाक्यालङ्कारे, कालेवर्त्तमाना वसर्पिणाश्चतुर्थार कलक्षणे, णङ्कारपूर्ववत् । अथवाऽर्षत्वात् सप्तम्यर्थे तृतीयामधिकृत्य, तेणं कालेणन्ति, तस्मिन् काले, तेणं समयेणन्ति, तस्मिन् समये । परं समयोजीर्णशाटकस्फालन दृष्टान्तेन प्रागुक्त कालान्तर्गत एव परमनिकृष्टं कालविशेषः यद्वा हेतौ तृतीया ततश्च पूर्वन्यायादेव-यौकालसमयौ श्रीऋषभादिजिनैः ॥ श्रीवीरस्यषण्णां च्यवनादीनां वस्तूनां हेतु तया प्रतिपादितौ न च च्यवनादीनां कल्याणकत्वेन व्याख्यात मनागमिकं चूर्ण्यादिषु तथैव व्याख्यानात् ॥ यतः ॥ जो भगवता उसभ सामिणा सेसतित्थगरेहिय भगवतो वद्धमाण सामिणो चवणादीणं छण्हंवत्थुणं कालोणातो दिठोवागरइओअ, तेण कालेणं तेण समयेणन्ति, इति पर्युषणा कल्पचूर्णौ]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं, हे सज्जन पुरुषों प्रथम तो धर्मसागरजीने साम्प्रत वर्त्तमानकालमें तीर्थके नायक श्रीवर्द्धमान प्रभुको नजीक उपकारी जान कर श्रीभद्रबाहु स्वामीजीने जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक श्रीवीर भगवान्‌का चरित्र कथन करनेका लिखा सो मूल सूत्रमें तो सूत्रकार महाराजने 'पञ्च हत्थुत्तरे' 'साइणापरिनिव्वुडे, ऐसा करके च्यवनगर्भापहार जन्मादि छहों कल्याणकोंका कथन किया हुआ है तिसपर भी इसीही मूल पाठकी व्याख्या करते हुए धर्मसागरजीने "पंचकल्याणक निबन्धं बन्धुरं श्रीवीरचरित्रं" ऐसा लिखकर च्यवन जन्मादि पांच कल्याणकोंवाला श्रीवीर

प्रभुका चरित्र ठहराके छठे गर्भापहारके मूलपाठको उड़ा दिया सो गर्भापहारके मूल पाठके उत्थापन रूप उत्सूत्रताकी तस्कर वृत्ति करके संसार वृद्धिका कारणभूत भद्रजीवोंको अपनी माया जालमें फंसाना उचित नही था।

और "पञ्चकल्याणक निबन्ध बन्धुरं श्रीवीर चरित्र" इस वाक्यसे धर्मसागरजीने श्रीकल्पसूत्रमें कहे हुए श्रीवीरप्रभुके च्यवनादिकोंको कल्याणकत्वपना ठहरा करके फिरभी अभिनिवेशिककी अज्ञानतासे भगवान्के गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याण कत्वपनेका निषेध करने के लिये "यौकाल समयौ श्रीऋषभादि जिने। श्रीवीरस्य च्यवनादीनां वस्तूनां हेतुतया प्रतिपादितौ न च च्यवनादीनां कल्याणकत्वेन व्याख्यात" ऐसा लिखकर उसी समय कालको श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थङ्कर महाराजोंने श्रीवीर भगवान्के च्यवनादि छ वस्तुओंके हेतु रूप कथन करनेका ठहराते हुए च्यवनादिकोंको वस्तु कहके फिर उसी च्यवनादि सबको सर्वथा कल्याणकत्वपने रहित ठहरा दिये। और श्रीदशाश्रुत स्कन्धकी पर्युषणा कल्पचूर्णि कारके पाठका वस्तु कल्याणक एकार्थसम्बन्धी अभिप्रायको समझे विनाही उसी चूर्णिका थोड़ासा पाठ लिखकर च्यवनादि छहोंको वस्तु सिद्ध करके कल्याणकत्वपनेका अभावही दिखा दिया सो भी विवेक शून्यतासे गच्छकदाग्रहकी ममत्वरूप अज्ञानताके अन्धकारमें पड़कर शास्त्रकारके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र प्ररूपणाके विपाकोंका बोझा सिरपर धारण करते हुए भद्रजीवोंको शुद्ध श्रद्धासे भ्रष्ट करके उन्मार्गके मिथ्यात्वमें गेरनेका और अपनी विद्वत्ताकी हंसी करनेवाला वृथाही प्रयास किया है क्योंकि वस्तु शब्दका अर्थ प्रसङ्गानुसार कल्याणकपनेका होनेसे श्रीवीरप्रभुके च्यव-

नादि छ वस्तु कहो अथवा छ कल्याणक कहो दोनों शब्दों का तात्पर्य एकही है उसका विशेष खुलासा श्रीविनय विजय जीके और न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें विस्तारसे ऊपरमेंही छप चुका है इसलिये धर्मसागरजीने वस्तु शब्दके अर्थ में कल्याणकपनेका निषेध करनेके लिये अज्ञानताके अन्धकार का साहससे श्रीवीरप्रभुके च्यवनादि छहोंको वस्तु ठहरा कर छहोंमें कल्याणकपनेका अभाव दिखाया सो कदापि नहीं हो सकता है।

तथा और भी देखो खास धर्मसागरजीनेही अपनी बनाई श्रीकल्पसूत्रकी इसी कल्पकिरणावलीनामा टीकामें जहां स्थिविरावलीकी व्याख्या करी है वहां खास आपनेही श्रीजम्बू स्वामीका मोक्षगमन हुए बाद—"मनः पर्यव ज्ञान १, परमावधि २, पुलाकलब्धी ३, आहारक शरीर लब्धी ४, क्षपक श्रेणी ५, उपशम श्रेणी ६, जिनकल्प ७, परिहार विशुद्धि वगैरह तीन संयम ८, केवल ज्ञानकी उत्पत्ति ९, और मोक्ष गमन १०"—यह दश वस्तुओंके विच्छेद होनेका लिखा है सो इसमें—परमावधिको मनः पर्यवको केवल ज्ञानोत्पत्तिको और मोक्षगमनको वस्तु कहा और—"कारणगुणाकार्यं गुणा भवन्ति"—इस व्यवहारिक न्यायके अनुसार कारणके अनुसार कार्यकी उत्पत्ति मानना सो प्रसिद्ध बात है इसलिये भगवान्के केवल ज्ञानकी उत्पत्ति तथा मोक्षगमनको वस्तु कहनेमें क्या हरजा है अपितु कुछ भी नहीं और जब धर्मसागरजीके कथन करने लिखने मुजब भगवान्के केवल ज्ञान की प्राप्तिको तथा मोक्षगमनको वस्तु कहना सिद्ध हुआ तथा इसी केवल ज्ञानकी प्राप्तिको और मोक्षगमनको सब कोई कल्याणक भी कहते हैं वैसेही धर्मसागरजी भी केवल ज्ञान

की प्राप्तिको और मोक्षगमनको कल्याणक भी मानते हैं लिखते हैं कथन भी करते है इससे तो धर्मसागरजीके कथन करने लिखने माननेके अनुसारही केवल ज्ञानकी प्राप्ति और मोक्षगमन रूप वस्तु सोही कल्याणक अर्थात् वस्तु कल्याणक दोनोंका भावार्थ एकही धर्मसागरजीके कथनसे सिद्ध हो गया तो फिर वस्तु करके कल्याणकपनेका निषेध करना सो अभि॰ निवेशिक मिथ्यात्वके वा "ममवदनेजिह्वानास्ति" की तरह बाल लीलाके सिवाय और क्या कहा जावे। और अब इस प्रकार धर्मसागरजीके अन्धपरम्परामें चलकर वस्तु करके कल्याणकपनेका निषेध करनेवाले गच्छकदाग्रहियोको भी लज्जित होना चाहिये और अबी भी गच्छाग्रहका मिथ्या पक्षपात छोड़कर श्रीजिनाज्ञानुसार इस ग्रन्थको बांचकर सत्यको अङ्गिकार करना चाहिये ;—

तथा फिर यहांपर यह भी विचार करने योग्य बात है कि— अनादि कालसे सभी तीर्थङ्कर महाराजोंके च्यवनादिकोंको कल्याणकपना अनन्त तीर्थङ्कर महाराज कहते आये हैं और अविसंवादी केवली भाषित जैन प्रवचनमें श्रीऋषभदेवजी आदि २३ तीर्थङ्कर महाराज श्रीवीरभगवान्के च्यवनादिकोंको वस्तु कहके कल्याणकपने रहित कथन कर देवें ऐसा तो कदापि न हुआ, और न हो सकेगा, इसलिये इससे भी वस्तु कहनेसे कल्याणकपनेका परमार्थ सिद्ध होता है तिसपर भी धर्मसागर जीने सभी अनन्त तीर्थङ्कर महाराजोंके विरुद्ध होकर च्यव॰ नादिकोंको वस्तु ठहरा कर कल्याणकपने रहित बनाये सो विवेक शून्यतासे अन्धपरम्परा रूप कदाग्रहकी भ्रमजालमें गिरने वालोंके सिवाय आत्मार्थी तो कदापिकाल मान्य नहीं करेंगे।

अब। इसी तरहसे प्रथम च्यवनवत् गर्भहरण रूप दूसरे च्यव-

नमें भी त्रिशलामाताके १४ स्वप्न देखने वगैरह सब गुण लक्षणोंका विस्तारसे खुलासा पूर्वक शास्त्रकारोंने कथन किया हुआ होनेपर भी गच्छकदाग्रहके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसे धर्मसागरजीने प्रथम च्यवनको कल्याणकपना और दूसरे च्यवनको कल्याणकपणा नहीं ठहरानेके लिये शास्त्रकारोंके कथनका रहस्यको समझे बिना उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंसे अपना संसार वढ़नेका भय न रखके भोले जीवोंकी शुद्धश्रद्धा भ्रष्ट करनेके लिये अनेक तरहके उत्सूत्रोंकी कुयुक्तियोंसे कितनेही कुविकल्प उठाकर लिखे हैं उन सबोंको तत्वज्ञजन तो स्वयंहि व्यर्थ समझ लेवेंगे। तो भी अल्प वुद्धिवाले पाठकगणको फिर भी विशेष निस्सन्देह होनेके लिये थोड़ासा नमूना दिखाता हूं सो देखो।

"उसभेणं अरहा कोसलिए पंचउत्तरासाढ़े अभिइ छट्ठे होत्थत्ति सूत्रवत् समणे भगवं महावीरे पञ्चहत्थुत्तरे साइणा छट्ठे होत्थत्ति सूत्रं वक्तुं युक्तं तथापि सूत्रकाराणां विचित्रगतिरिति नाधृतिर्विधेया" इस लेखमें धर्मसागरजीने गर्भापहारके पाठको राज्याभिषेकके पाठके समान ठहरा करके अपनी अज्ञानतासे सूत्रकार महाराज पर भी आक्षेप किया और संसार बढ़नेके भयको न करते हुए गर्भापहारके दूसरे च्यवन कल्याणकको निषेध करनेके लिये लिखा सो सबही भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरने रूप मिथ्यात्वका कारण है क्योंकि ऊपरके लेखमें श्रीकल्पसूत्रके श्रीमहावीर स्वामी सम्बन्धी "समणे भगवंमहावीरे पञ्चहत्थुत्तरे" के पाठके समान श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके श्रीऋषभदेवजी सम्बन्धी "उसभेणं अरहा कोसलीए पञ्च उत्तरा साढ़े" के पाठको भी कथन करना युक्त ठहराया सो नहीं बन सकता क्योंकि कल्पसूत्रके पाठकी तरह जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचना पूर्वक उन्होंके मास पक्ष दिवसका

खुलासा सहित कथन श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिके पाठका किसी भी शास्त्रमें खुलासा न होनेसे तथा गर्भापहारकी तरह राज्याभिषेकको कल्याणककल्पना प्राप्त न होनेसे दोनों पाठोको समान बनाना अज्ञानताका कारण है और पहिले इसका विशेष निर्णय श्रीविनयविजयजी तथा श्रीन्यायाम्भोनिधिजी इन दोनो महाशयोंके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थमें छप चुका है

और ऊपरके दोनो पाठोके कथन करनेमें "सूत्रकाराणां विचित्र गतिरिति नावृति विधेया" इस तरहका लिखके दोनो सूत्रकार महाराजों पर आक्षेप रूप लिखा सो भी इनके दीर्घ संसारीपनेका लक्षण मालूम होता है अन्यथा दोनों सूत्रकारो के भिन्न भिन्न विषय सम्बन्धके अभिप्रायको समझे विना अपनी कुबुद्धिकी विकल्पनासे सूत्रकारोपर ऐसा आक्षेप कदापि न करता खैर—

और अनादि अनन्तकालसे सर्वदा हमेशा सभी श्रीतीर्थङ्कर महाराजोके च्यवनादि पाच पांच कल्याणकही होते हैं परन्तु इन पाचोंके सिवाय अन्य कोई भी छठा कल्याणक नही हो सक्ता और श्रीवीरप्रभुके तो कर्मानुसार कालानुभावसे आश्चर्यजनक दो वार च्यवन होनेसे दो अलग अलग भव गिने गये और दो माता तथा दो पीता भी अलग अलग गिने गये और प्रथम च्यवनकी तरह दूसरे च्यवन रूप गर्भापहारमें भी च्यवन कल्याणकके सभी कर्त्तव्य हुए सो तो प्रसिद्ध है इसीलिये श्रीवीर प्रभुके दो च्यवन नाम परसेही दो च्यवन रूप दो कल्याणकोंकी गिनतीसे छ कल्याणक ठहरते हैं परन्तु श्रीऋषभदेव स्वामीके राज्याभिषेकके कर्त्तव्यमें तो पांचो कल्याणकोंमेंसे किसी भी कल्याणकके कर्त्तव्य नही बने और पाचो कल्याणकोंमेंसे किसी भी कल्याणके लक्षण राज्याभिषेकमें न

होनेसे श्रीकल्पसूत्रादिमें प्रगटपने राज्याभिषेकको अलग करके "चउ उत्तरा साढ़ अभिइपञ्चमें" ऐसा खुलासा पाठकहके राज्याभिषेकके बिना शेष च्यवनादि पांच कल्याणक कथन किये हैं इसलिये राज्याभिषेककी आड़ लेकर गर्भापहारके कल्याणकत्वपनेको निषेध करना पूरी अज्ञानता है इसको विशेष तत्वज्ञजन स्वयं समझ सकते हैं।

और गर्भापहारको इन्द्र महाराजका कार्य समझके कल्याणकपना नहीं मानते क्योंकि इन्द्र तो अन्य भी अनेक कार्य करता है परन्तु सब कार्यों में कल्याणकपना नहीं माना जाता (जैसे श्रीआदि नाथजीकी वंशस्थापना, पाणी ग्रहण, राज्याभिषेक इत्यादि) किन्तु गर्भापहारमें तो च्यवन कल्याणकके गुण लक्षण स्वभाव होनेसे कल्याणकपना माननेमें आता है इसका विशेष खुलासा इस ग्रन्थको पढ़नेवाले विवेकी स्वयं समझ लेवेंगे।

और फिर भी धर्मसागरजीने गर्भापहारका कल्याणकपना निषेध करनेके लिये नक्षत्र सामान्यताका तथा असङ्गतिका बहाना लिया सो भी अज्ञानता है क्योंकि श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रमें तो नक्षत्र सामान्यता तथा असङ्गतिका कुछ भी प्रसङ्ग (कारण) नहीं है क्योंकि वहां तो सामान्य व्याख्यासे श्रीपद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थङ्कर महाराजोंके च्यवनसे यावत् मोक्ष गमन पर्यन्त पांच पांच कल्याणक बताये हैं उसी मुजब विशेष रूपसे श्रीवीरप्रभुके भी च्यवनसे यावत् गर्भापहारको कल्याणकपनेमें सामिल ले करके केवल ज्ञान पर्यन्त पांच कल्याणक दिखाये हैं और वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीने छठा कल्याणक स्वाति नक्षत्रमें मोक्ष गमन खुलासा अलग बतलाया है तथा श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रवृत्तिमें गर्भापहारको अलग भवमें

गिना है उसी मुजब "लोक प्रकाश" में भी देवलोकके च्यवनको और देवानन्दामाताकी कूक्षिसे त्रिशलामाताकी कूक्षिमें जाने रूप गर्भापहारको इन दोनोंको अलग अलग भव गिने हैं, और प्रथम च्यवनके तथा गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनके दोनों जगहों पर खास श्रीकल्पसूत्रकार श्रीभद्रबाहु स्वामीजीने जघन्य मध्यम उत्कृष्ट वाचनापूर्वक अलग अलग व्याख्या विस्तारसे करी है इसलिये नक्षत्र सामान्यता तथा असङ्गतिका बहाना लेना सो अज्ञानतासे भद्र जीवोंको व्यर्थही भ्रमानेसे संसारका कारण है इसको विशेष विवेकी तत्वज्ञजन स्वय विचार सकते है।

और यदि नक्षत्र सामान्यताका हठ किया जावे तो तुमारी कल्पना मुजब तो श्रीआदिनाथजीके राज्याभिषेकको भी तुम लोग नक्षत्र सामान्यता करते हो तो फिर श्रीपद्मप्रभुजी आदि तीर्थङ्कर महाराजोंके पांच पांच कल्याणकोंके साथ श्रीवीर प्रभुके भी पांच कल्याणक दिखाये उसी तरहसे श्रीआदिनाथ-जीके भी पांच श्रीस्थानांगजी सूत्रमें क्यों नही दिखाये तथा जैसे श्रीवीरप्रभुके चरित्रोंमे सभी जगहों पर पांच पांचका व्याख्यान है वैसे श्रीआदिनाथजीके भी कल्पसूत्रादिमें एक नक्षत्रमें पांचका व्याख्यान सूत्रकारने क्यों नहीं किया और "चउ उत्तरासाढे" ऐसा क्यों कहा और वीर चरित्रमें तो ४ हस्तो त्तरामें किसी जगह नहीं कहे और विशेषतासे श्रीसमवायांगजी तथा लोकप्रकाश वगैरहमें अलग अलग भव गिनेहैं और स्थानांग आचारांग कल्पसूत्रादिमे पांच हस्तोत्तरमें छठा स्वातिमें खुलासा कह दिया है इसलिये नक्षत्र सामान्यता करना व्यर्थ है इसका विशेष खुलासा विनय विजयजीके लेखकी समीक्षामे पढ़िले छप चुका है।

तथा और भी सुनो जब खास सूत्रकारनेही च्यवन गर्भहरण जन्मादिका भिन्न भिन्न व्याख्यान विस्तारसे कथन कर दिया तथा इस विषयमें पूर्वाचार्योंने वीर चरित्रादिमें तथा कल्पसूत्र की टीकाओंमें हजारों श्लोकोंकी विस्तार पूर्वक व्याख्या करी है और राज्याभिषेक सम्बन्धी विशेष खुलासा किसी जगह पर किसी भी पूर्वाचार्यने नहीं किया इसलिये गर्भहरणके समान राज्याभिषेकको ठहराना कदाग्रहके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है और गर्भहरण सम्बन्धी हजारों श्लोकोंकी व्याख्या प्रसिद्ध होनेसे असङ्गति रूपी शङ्काके गन्धकी भी सम्भावना नहीं हो सकती इसलिये असङ्गतिका कहना भी व्यर्थ है क्योंकि असङ्गति तो जब कह सकते थे कि—१४ स्वप्न त्रिशलामाताने आकाशसे उतरते और अपने मुखमे प्रवेश करते वगैरह च्यवन कल्याणकके लक्षण गर्भापहारमें न होते तथा सूत्रकारने "छ हत्थुत्तरे" कहके च्यवन देवानन्दा जन्म त्रिशला कह देते और इस विषयमें किसी तरहका खुलासा न करते तब तो असङ्गति रूपी शङ्काका कहना बन सकता और इस विषयमें टीकाकारोंको समाधान करनेकी जरूरत पड़ती सो तो नहीं किन्तु खास सूत्रकारादिकोंनेही "पञ्चहत्थुत्तरे" कहके विस्तारसे कथन किया है तथा उसमें कल्याणकत्वपनेके लक्षण प्रत्यक्षही देखनेमें आते हैं इसलिये असङ्गति वगैरह कुविकल्पोंकी कुयुक्तियोंको छोड़कर सत्यग्रहण करनाही श्रेयकारी है इसका भी विशेष निर्णय विनयविजयजीके लेख की समीक्षामें पहिले छप चुका है।

और "सन्देहविषौषधी" में गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेमें गिनकर छ कल्याणक प्रतिपादन किये जिसका निषेध करनेके लिये धर्मसागरजीने गर्भापहारको कल्याणकत्वपनेमें किसी

आगममें कथन नहीं करनेका कहके आगम में बाधा ठहराया और आचाराङ्गजीमें 'पञ्चहत्थुत्तरे'की व्याख्यामें (पञ्चसुस्थानेषु-गर्भाधान, संहरण, जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति लक्षणेषु) इत्यादि यहांपर पाच स्थान कहे परन्तु पांच कल्याणक नही कहे ऐसा लिखके 'सन्देहविषौषधी' से विसवाद दिखाया सो भी पूरण अज्ञानता प्रगट करी है, क्योंकि स्थानाङ्गादि अनेक आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, वृत्ति वगैरह शास्त्रोमें छ कल्याणक प्रगटपने कथन किये है, इसलिये 'सन्देहविषौषधी'कारका छ कल्याणको सम्बन्धी कथन आगमानुसार होनेसेर्ह्रिआगम बाधा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या है। और श्रीआचाराङ्गजी सूत्रकी दूसरी चूलिकाकी आदिमें वीरचरित्राधिकारे कल्पसूत्रकी तरहही "पञ्चहत्थुत्तरे" तथा "साइणा परिनिव्वुडे" कहके च्यवन, गर्भहरण, जन्मादि प्रगटपने छही कल्याणक दिखाये है और टीकाकारने च्यवन गर्भहरण जन्मादिकोंको स्थान कहे सो स्थान कहो अथवा कल्याणक कहो दोनों एकार्थवाची हैं इसलिये स्थान शब्द देखके टीकाकार महाराजके अभिप्रायको समझे बिना तीर्थङ्कर महाराजके चरित्रको कल्याणरूपने रहित ठहरानेका परिश्रम किया सो उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे आत्मार्थी कोई भी मान्य नहीं कर सकते। और स्थान शब्दका कल्याणकार्य प्रसङ्गानुसार अरिहन्त सिद्धादि वीश (२०) स्थानक, तथा १४ गुणस्थानकोंकी तरह एकही है इस बातका विशेष निर्णय न्यायांभोनिधिजीके लेखकी समीक्षामे पहिले छप चुका है इसलिये आचाराङ्गजीके और सन्देहविषौषधिके विसवाद नही हो सकता, इस बातको विवेकी जन स्वय विचार सकते है।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने पञ्चाशकजीके पाठसे पाच कल्याणक दिखाके छ का निषेध किया सो भी विवेक शून्यताकी

अज्ञानतासे मायाचारीकी ठगाई है क्योंकि वहां तो "पञ्चमहा-कल्लाणा सव्वेसिं जिणाणं होंति णियमेण" इत्यादि पूर्व भागके सम्बन्धकी ३ गाथा छोड़ दी है तथा "अहिगय तित्थ विहाया भगवन्ति णिदंसिया इमेतस्स। सेसाणवि एवंचियणियणिय तित्थेसु विणेया इत्यादि पिछाड़ीके सम्बन्धकी भी गाथा छोड़ दी है और पूर्वापर सम्बन्ध सहित उन गाथाओंकी टीकाका पाठ भी छोड़ दिया है और पूर्वापर सम्बन्ध रहित बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ दिखाया और मूलग्रन्थकर्त्ता श्री-हरि भद्रसूरिजीके तथा वृत्ति (टीका) कारक श्रीअभयदेवसूरिजी के अभिप्रायको छुपा करके इन महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध हो करके अधूरे पाठसे मायाचारी करके भद्रजीवोंको भर-मानेका काम किया है क्योंकि यदि पूर्वापर सम्बन्ध सहित सम्पूर्ण पाठ लिख दिखाते तब तो सामान्य विशेषके भेदको और शास्त्रकारोंके अभिप्रायको विवेकी जन स्वयं समझ लेते, और मायाचारीकी तस्कर वृत्तिके सब भेद खुल जाते खैर इस विषय सम्बन्धी शास्त्रकारोंके अभिप्राय सहित सम्पूर्ण पाठ पूर्वक हमने विस्तारसे समाधान न्यायरत्नजी तथा विनय विज-यजी और न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें लिख दिखाया है इसलिये पञ्चाशकजीके सामान्य पाठको बाल-जीवोंके आगे करके कल्पसूत्रादिके विशेष पाठोंमें छ कल्याणक कथन किये है उसका निषेध करना सो अज्ञानता और गच्छक-दाग्रहके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है इसका विशेष निर्णय हमारे पूर्वोक्त लेखोंसे विवेकी जन स्वयं समझ लेवेंगे ;—

देखिये कितने बड़े आश्चर्यकी बात है कि—श्रीतपगच्छमें वर्त्तमानिक समयमें अनेक विद्वान् नाम धराते हैं तिसपर भी शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझे विना अनन्त तीर्थङ्कर महा-

राजों सम्बन्धी पञ्चाशकजीके सामान्य पाठको आगे करके श्रीकल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें विशेष रूपसे प्रगटपने वीर प्रभुके छ कल्याणक लिखे हैं उसको निषेध करनेके लिये "यदि वीर प्रभुके छ कल्याणक होते तो पञ्चाशकमें उसके मास पक्ष दिन दिखलाते" ऐसी कुयुक्ति मायाचारी करने वालोंको लज्जित होना चाहिये। क्योंकि विशेष रूपसे श्रीकल्पसूत्रमें तथा उसकी ११ व्याख्याओमें और आवश्यक निर्युक्ति चूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोमें छहों कल्याणकोके भिन्न भिन्न मास पक्ष तिथि नक्षत्रका व्याख्यान शास्त्रकारोंने खुलासे कर दिया है उसको छोड़ देना और पञ्चाशकमें छ लिखनेका प्रसङ्ग न होनेसे वहां छ न लिखे जिसपर तर्क करना क्या ऐसी मायाचारीमें विद्वत्ता है यही शर्मकी बात है, खैर।

और भी देखो विशेष व्याख्यामें सामान्य पाठ आवे उसका खुलासा टीकाकार करते हैं जैसे वीर प्रभुकी माताके १४ स्वप्नाधिकारे प्रथम हस्तीका वर्णन किया परन्तु वीर प्रभुकी माताने प्रथम सिंह देखा था उसका खुलासा टीकाकारोंने किया परन्तु सामान्य पाठमें विशेष पाठ आवे उसका खुलासा करनेकी विशेष आवश्यक नही रहती क्योंकि देखो जैसे २४ तीर्थङ्कर महाराजोंके नाम, गोत्र, माता, पिता, दीक्षादि कल्याणक तिथि और साधु साध्वीयोंके प्रमाण वगैरहके यन्त्रों (कोष्टकों) में तथा २४ वीशीके स्तवन वगैरहोंमें १९वें भगवान्को स्त्रीत्वपनेमें न लिखके सामान्यपनेसे पुरुषत्वपनेमें लिखते हैं। तैसेही यद्यपि वीरप्रभुके छ कल्याणक होनेपर भी पञ्चाशकमें छ न लिखके सामान्यतासे पांच लिखे तो उसमें कोई हरजा नहीं, तथा इससे छ निषेध भी नहीं हो सकते इस बातको भी विवेकी सज्जन स्वयं विचार सकते हैं।

तथा और भी देखो श्रीआदिनाथजीको दीक्षा लिये बाद १ वर्ष पर्यन्त आहार न मिला यह बात सामान्यतासे कहनेमें आती है परन्तु विशेषतासे तो चैत्र कृष्ण अष्टमी (गुजराती फागण वदी ८) को दीक्षाके दिनके हिसाबसे वैशाख सुदी ३ के दिने पारणेको १३ मास और ऊपर ११ दिन होते हैं तो भी सामान्यतासे वर्ष कहनेमें आता है इसी तरहसे तीर्थङ्कर महाराजोंके गर्भ स्थिती वगैरह सामान्यता विशेषताके हजारों दृष्टान्त शास्त्रोंमें देखनेमें आते हैं इसलिये अक्षरार्थको न पकड़के भावार्थको देखना चाहिये उसके बिना समझे व्यर्थ झगड़ा करके कर्मबन्धक और उत्सूत्री न होना चाहिये।

और फिर कुलमण्डनसूरिजीने कल्पावचूरिमें छः कल्याणक लिखे हैं उसको धर्मसागरजीने बिना उपयोगसे और सन्देह-विषौषधिके अनुसार लिखनेका ठहराया सो भी गच्छकदाग्रहकी अभिनिवेशिकतासे व्यर्थही मिथ्या प्रलाप किया है क्योंकि सर्वशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक छ कल्याणक लिखे हैं इसलिये बिना उपयोगसे नहीं किन्तु जान बूझकर शास्त्रानुसार लिखे हैं और सन्देहविषौषधि के अनुसार लिखे हैं ऐसा धर्मसागरजीको कोई ज्ञान नहीं था इसलिये सन्देहविषौषधिका अनुसरणका कहना व्यर्थ है और सत्य बातमें एक एकके कथनका पूर्वाचार्य अनु-सरण करतेही हैं इसमें कोई हरजकी बात नहीं है इसलिये उपरोक्त सत्य बातमें यदि अनुसरण किया माना भी जावे तो उससे छकल्याणकका निषेध नहीं हो सकता इसका विशेष निर्णय न्यायाम्भोनिधीजीके लेखकी समीक्षामें पहिले छप चुका है।

और जिस विषयका वादविवाद चलता हो उस विषयमें जो लिखेगा सो विचारकेही लिखेगा इसके न्यायानुसार छ कल्या-णक सम्बन्धी विवाद तो श्रीकुलमण्डनसूरिजीके पहिलेसेही चला

आता था उनके समयमें भी चलता था जिसपर भी उनोंने ६ क० लिखे उससे सिद्ध होता है कि—उन्होंने जानबूझ करके ही छ कल्याणक लिखे हैं नतु विना उपयोग। और उस समय इनके कथनका किसीने निषेध भी नहींकिया इससे उस समयकी तपगच्छ समुदाय व उनके पूर्वज सब छ माननेवाले सिद्ध होते हैं।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने अपने मिथ्यात्वके उदयसे श्रीगणधरसार्द्धशतकके पाठका तथा उसकी वृहद्वृत्तिके पाठका और श्रीजिनवल्लभसूरिजीके कथनके भावार्थको समझे विना इन महाराज पर छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका मिथ्या दूषण लगानेके वास्ते पूर्वापरका सम्बन्धको छोड़कर बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके फिर उसका विपरीत उलटा अर्थ करके अन्धपरम्परामें चलनेवाले विवेक शून्योंको तथा भद्रजीवोंको अपने भ्रममें गेरनेका काम करके मिथ्यात्वके सार्थवाहीका काम किया है उसकी भी समीक्षा करके पाठकगणको दिखाता हूं सो धर्मसागरजीका लेख नीचे मुजब है।

"षष्ट कल्याणक प्ररूपणा मूल तावत् चित्रकूटे चर्चिडका गृहस्थितौ नवीनमतव्यवस्थापनहेतवे जिनवल्लभवाचनाचार्य एव यत आह। तत्र कृतचातुर्मासिकानां श्रीजिनवल्लभवाचनाचार्याणामाश्विनमासस्य कृष्णपक्षस्य त्रयोदश्यां श्रीमहावीरगर्भापहार कल्याणकमागतं, तत श्राद्धानां पुरो भणितं जिनवल्लभगणिना भो श्रावका अद्य श्रीमहावीरस्य षष्टगर्भापहार कल्याणकं समागत। तत श्राद्धानां पुरोभणितं षष्टगर्भापहार कल्याणक 'पञ्चहत्थुत्तरेहोत्था-साइणापरिनिव्वुडेभयवमिति' प्रगटाक्षरैरेव सिद्धान्ते प्रतिपादनात् अन्यच्च तथाविध किमपि-विधिचैत्यंनास्ति ततो अत्रैव चैत्यवासि चैत्येगत्वा यदि देवा-

वन्द्यंते तदा शोभनं भवति गुरुमुख कमल विनिर्गत वचनाराधकैः श्रावकै रूक्तं भगवन् यद्युष्माकं सम्मतं तत् क्रियते ततः सर्वश्राव-का निर्मलशरीरा निर्मलवस्त्रा गृहीतनिर्मलपूजोपकरणा गुरुणा सह देवगृहे गन्तु प्रवृत्ता। ततो देवगृहस्थितयार्यकया गुरुश्रावक समुदायेनागच्छतो गुरुन्दृष्ट्वा पृष्टको विशेषोद्य केनापि कथितं वीरगर्भापहार कल्याणक करणार्थमेते समागच्छन्ति तयाचिन्तितं पूर्वं केनापि न कृतमेतदधुना करिष्यंतीति न युक्तं पश्चा-त्संयती देवगृहद्वारे पतित्वास्थिता द्वारमाहात्न् प्रभूमक्लो-कयोक्तमेतयादुष्टचित्तया मया मृतया यदि प्रविशत तादृगप्रीतिकं ज्ञात्वा निवर्त्य स्वस्थानंगताः पूज्या-इत्यादि जिनदत्ताचार्य कृतगणधरसार्द्धशतकस्य वृत्तौ ॥ तथा ॥ असहाएणा विवहो पसाहिओ जो न सेसपूरीणां। लोयणपहेविवच्चइ पुणजिण-मयणूणं—इति गणधरसार्द्धशतकेद्वाविंशतिशततमी गाथा तद्वृ-त्तिर्यथा—ततो येन भगवता असहायेनाप्येकाकिनापि परकीय सहाय निरपेक्ष अपिविधिसमये अतोवाश्चर्यमेतत् विधिरागमोक्तः षट्कल्याणकरूपश्चेत्यादि विषयः पूर्वं प्रदर्शितश्चप्रकारः प्रकर्षेणो दमित्यमेवभवति योऽत्रार्थेऽसहिष्णुः सवादयात्विति स्कन्धा-स्फालनपूर्वकं साधितः सकललोक प्रत्यक्षकं प्रकाशितः। यो न शेष सूरीणामज्ञातसिद्धान्तरहस्यानामित्यर्थः। लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गेऽपि आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति। उच्यते पुनर्जिनमत ज्ञैभगवत्प्रवचनवेदिभिरिति गाथार्थः॥तथा॥ पूणइ सूल पडिसंपि साविआ चिडनिवासि सम्मतं। गब्भापहार कल्लाणगंपि नहुं होइ वीरस्स ॥ १ ॥ इति जिनदत्ताचार्य कृतोत्सूत्रपदोद्घाटन कुलके इत्यादि वचो व्यञ्जिता, श्रीहरिभद्रसूरि श्रीअभयदेवसूर्या-दिनां पञ्चकल्याण वादीनां क्वचिदज्ञानोद्भावनेन क्वचिच्चोत्सू-त्रभाषणेन हीलनां कुर्वन् प्रागुक्तरीत्यार्यिकया निवार्यमाणोपि

निजमताविष्करणार्थं षट्कल्याणक व्यवस्थां स्थापयत् ।"

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके आत्मार्थी सत्यग्रहणभिलाषी निष्पक्षपाती सज्जनोको दिखाता हूं, सो देखो-ऊपरके लेखमें धर्मसागरजीने शास्त्रकारके उपरोक्त पाठोंका अभिप्रायको समझे बिना विवेक शून्यतासे मिथ्यात्वकेउदयसे भद्रजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेके लिये शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर पूर्वापर सम्बन्ध रहित अधूरा थोड़ासा पाठ लिखके व्यर्थंही निजपरके संसार बढ़ानेका कारण किया है क्योंकि श्रीगणधरसार्द्धशतकको बृहद्वृत्तिके उपरोक्त पाठसे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन छठे कल्याणककी प्ररूपणा करनेवाले ठहरा कर श्रीहरिभद्रसूरिजी श्रीअभयदेवसूरिजीकी आशातना हीलना करनेवाले उत्सूत्र प्ररूपक ठहराये सो निःकेवल बड़ी भारी अज्ञानतासे अपनी बाचालता प्रगट करी है, क्योंकि श्रीजिनवल्लभसूरिजीने छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा नही करी किन्तु श्रीऋषभदेव आदि २३ तीर्थङ्कर महाराजोके तथा श्रीगणधरपूर्वधर पूर्वाचार्यों के कथन मुजबही आगमोक्त रीतिकी प्राचीन सत्य बातोको प्रगट करी है नतु शास्त्र विरुद्ध अपनी कल्पनासे, इस लिये नवीन प्ररूपणा कहना प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका हेतु भूत संसारका कारण है इसका विशेष निर्णय ऊपरमें न्यायाम्भोनिधिजीके लेखकी समीक्षामें इसी ग्रन्थके पृष्ट ५६१ से ५७२ तक तथा ६१० से ६३७ तकमें छप गया है उसको विवेक बुद्धिसे पढनेवाले तत्वार्थी पाठकगण सत्यासत्यका निर्णय स्वयं कर सकेंगे ।

और ऊपरमें धर्मसागरजीने श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन मत स्थापन करनेके लिये चीतोड़में चयहीकाके मन्दिरमें ठहरनेका लिखा सो भी अज्ञानता व द्वेष बुद्धिसे जिनाज्ञा प्रकाशको

उन्मार्ग ठहरानेरूप मिथ्यात्वका कारण किया है, क्योंकि श्री-अभयदेवसूरिजीने इन महाराजको शास्त्राध्ययन कराये बाद क्रिया उद्धारका उपदेश दिया उसी मुजब चैत्यवासी अपने गुरु की आज्ञासे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पास क्रिया उद्धारसे शुद्ध संयम अङ्गिकार किया और कितनेही काल गुजरातमें विहार करते हुए विशेष लाभ जानकर मेवाड़ देशमें विहार किया यहां चितोड़में अविधिमें पड़ेहुए चैत्यवासियोंके भक्तोंको श्रीजिनाज्ञानुसार शास्त्रोक्तविधि मार्गमें स्थापन किये थे नतु अपने कल्पित मार्गमें जिनाज्ञा विरुद्ध—इसलिये जिनाज्ञाका प्रकाश करनेको धर्मसागरजीने द्वेष बुद्धिसे नवीन मत व्यवस्था स्थापनका लिखा सो प्रत्यक्ष मिथ्या है इसका विशेष खुलासा इस ग्रन्थके पढ़नेवाले विवेकी जन स्वयं कर लेवेंगे।

और चितोड़में श्रीजिनवल्लभसूरिजीने चौमासा किया तब आश्विन वदी १३ को श्रीमहावीरप्रभुके छठे गर्भापहाररूप दूसरे च्यवन कल्याणकका दिन आया उसकी आराधना करनेके लिये श्रावकोंके साथ चैत्यवासियोंके मन्दिरमें देववन्दन करनेको जाने लगे, उसको देखके चैत्यवासिनी आर्या (जतनी) ने विचारा कि—पूर्वे किसीने नहीं किया तो यह कैसे करेंगे ऐसा विचारके चैत्य (मन्दिर) के दरवाजे आडि गिर गई और महाराजको चैत्यके दरवाजेपर आये हुऐ देखकर वो चैत्य-वासिनी जतनी साध्वी बोली कि, मेरे जीवते हुए तो मेरे मन्दिरमें न जाने दूंगी, परन्तु मेरेको मारकर मेरे—मरे पीछे जावो तो तुमारी खुसी तब महाराज उसका ऐसा क्रोधयुक्त दुष्ट अध्यवसायका क्लेश बढ़ानेवाला अप्रीतिका बचन सुन कर पीछे लौट आये। इसपर धर्मसागरजीने चैत्यवासिनी साध्वीके कहने मुजब छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा

और चीतोड़ नगरमें श्रीजिन वल्लभ सूरिजी महाराजने चातुर्मास किया उस समय चीतोड़नगरमें चैत्यवासियोंने अपने अपने गच्छ परंपरा रूप वाड़ेके दृष्टिरागका अंध परं. परामें भोले जीवोंको फसा लिये थे तथा मंदिरों (चैत्यों) के मालिक बन बैठे थे और चैत्यादिमें रहते हुए चैत्योंका चैदास पूजारी सेवक गोठीकी तरह खाते थे और अविधिसें सावद्यानुष्ठान पूर्वक संयम मार्गको छोड़ कर भ्रष्टाचारसे पड़े थे इस लिये चीतोड़में उस समय जितने मंदिर थे वह सब पक्षपाती कदाग्रही चैत्य वासियोंके हाथमें होनेसे अविधि चैत्य थे परन्तु पक्षपात रहित विधि मार्गका एक भी मन्दिर वहां नहीं था इस लिये महाराजने श्रावकोंको कहा कि— "अन्यद्द तथा विधकिमपि विधि चैत्य नास्ति ततो अत्रैव चैत्यवासी चैत्येगत्वा देवावद्यतेसदाशोभन भवति" अर्थात् इस 'नगरमें चैत्यवासियोंके अविधि चैत्योंके सिवाय विधि चैत्य कोई नही' है इसलिये चैत्यवासी चैत्यमें जाकर देव वंदन करना अच्छा है तब महाराजके साथमें अन्य भी बहुत श्रावक लोग पवित्र वस्त्रादि धारण करके मन्दिरमें लेजाने योग्य पूजा की सामग्री लेकरके देव वंदनके लिये चले इस तरहसे महाराज को श्रावकोंके साथमें श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार दूसरे च्यवन रूप छठे कल्याणक सबन्धी देव वंदन करनेको किसीके मुखसे अपने चैत्यमें आते हुए सुनकर चैत्यवासीनी साध्वीने विचारा कि—" पूर्वकेनापिनकृतअधुना करिस्यतीति न युक्त पश्चात्सं• यतो देव गृहद्वारे पतित्वाहियता द्वार प्राप्तान् प्रभूनव लोक्योक्त मेतया दुष्टाषितया मया मृतया यदि प्रविशत तादृगप्रीतिक ज्ञात्वा निवर्त्य स्वस्थानंगता पूज्या " अर्थात् मेरे मंदिर में पहले किसीने (वीर प्रभुके गर्भापहार कल्याणक सबन्ध

देव वंदनादि विधान किया नहीं और यह अभी करेंगे सो युक्त नहीं है इस लिये इनको मेरे मन्दिरमें ऐसा नहीं करने देना चाहिये ऐसा विचार करके अपने मन्दिरके दरवाजेके अगाड़ी आड़ी गिर गई और महाराजको श्रावकोंके साथ मन्दिरके दरवाजे पर आये हुए देखकर वो चैत्यवासीनी साध्वी दुष्टचित्त से कोप युक्त होकर बोलने लगी कि मेरे जीवते हुए तो मेरे मंदिरमें आपको न जाने दुंगी परन्तु मेरेको मारो मेरे मरे बाद पीछे यदि मंदिरके अन्दर प्रवेश करो तो तुमारी खुशी तब महाराज उस चैत्यवासीनीका एसा क्रोध युक्त दुष्ट अध्यवसायका क्लेश बढ़ाने वाला अप्रीतिका वचन सुनकर जानकरके वहांसे पीछे स्थान पर आगये।

इस प्रकारसे चैत्यवासीनीने (पूर्वं केनापि न कृतमेतदधुना करिस्यतीति नयुक्तं) ऐसा विचार किया और पीछे (पश्चात् संयती देवगृह द्वारेपतित्वास्थिता द्वारप्राप्ता प्रभूनवलोक्योक्त मेतया दुष्टचितया मंयामृतया यदि प्रविशत) इस तरह का अपना कदाग्रह करके दिखाया इस बात पर भी जो छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा कहते हैं सो बड़ी अज्ञानता है क्योंकि यह चैत्यवासीनी अपने गच्छ परंपरा रूप वॅडिमें बन्धी हुई सावद्यानुष्टानकी करनेवाली आगमार्थको जिनाज्ञा को नहीं जाननेवाली थी और चीतोड़में उस समयके चैत्यवासी आचार्यादि लोग भी अपने अपने गच्छका द्रव्य परंपरा रूप वाड़ाके दृष्टि रागमें बंधे हुए अपने अपने गच्छ वासीयोंके सिवाय अन्य दूसरे गच्छ वालोंको अपने चैत्यमें अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करने देते थे और खास आपही उन चैत्योंके मालिक बने हुए बैठे थे इस लिये उस समयके वहांके

बर्ताव मुजब उस चैत्यवासीनीने भी अपने चैत्यमें महाराजको प्रवेश न करने दिया।

और (पूर्वकेनापि न कृतमेतदधुना करिष्यतीति नयुक्त) इस का अर्थ तो सिद्ध इतना होता है कि-पूर्व अर्थात् पहले किसी ने भी मेरे चैत्यमें एसा न किया और यह अभी करेंगे सो युक्त नहीं है, ऐसा उस चैत्यवासीनीने अपने चैत्य संबंधी विचारा था परन्तु सर्व जगह सर्व देशों तथा शास्त्रोंमें भी यह बात नहीं है इस तरहका नहीं विचारा था सो तो ऊपरके पाठसे प्रगटपने दिखता है इसलिये उसने सर्वत्र नही किन्तु चैत्य संबंधी विचारा था तबही तो इस तरहका विचारके अपने चैत्यके दरवाजेके आडिगिरी थी सो यह तो उन चैत्यवासीनीने अपने गच्छ कदाग्रहके क्रोधके उदयकी अज्ञानतासे बिन विचारा वर्ताव किया था और जब उस समयके वहांके चैत्य वासि आचार्य नाम धराने वाले विद्वान् कहलाते थे तोभी छठे कल्याणकका स्वरूप नहि जानतेथे (जिसका खुलासा न्यायाम्भोनिधि जीके लेखकी समीक्षामें पहले छपचुका है) तोफिर यह तो बिचारी स्त्री जाति तुच्छ बुद्धि वाली अज्ञानि चैत्यवासिनी उसका स्वरूप कैसे जान सक्तीथी और जिसका स्वरूप नहि जान सके उस विषय में प्राणि अज्ञानतासे चाहे जैसा अनुचित वर्तावभि करे तो क्या उसका ज्ञानीके वर्तावसे शास्त्रोक्त मूल सत्य बात झूठी हो सक्ती है सो तो कदापि नहि और यह अज्ञानि प्राणि उसका स्वरूपनहीं जानने से तथा अपना कदाग्रहके क्रोध उदयसे विपरीत वर्ताव करे तो क्या उसका देखा देखी विवेकी विद्वानोंको भी वैसा वर्ताव करना चाहिये सो भी कदापि नहीं तो फिर उस अज्ञानी चैत्यवासीनी गच्छ कदाग्रही स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धिकी अपने चैत्य सबन्धी अनुचित वर्तावका

विचारणेकी देखा देखी वर्त्तमानिक विद्वान् नाम धराने वाले होकरके भी सत्यासत्यका निर्णय किये विना शास्त्रोक्त छठे कल्याणककी सत्य बातको झूठी ठहरानेके लिये उपरोक्त चैत्य वासिनीका अनुचित वर्तावको आगे करके गच्छ कदाग्रहसे महान् पुरुषोंको मिथ्या दूषण लगाते हैं जिन्होंको उपरोक्त लेख बांचकर लज्जित होना चाहिये और अपनी विद्वत्ताकी हांसी कराने वाला अंध परंपराका हठवादको छोड़कर सत्य ग्रहण करना चाहिये इसका विशेष निर्णय निष्पक्षपाती विवेकी तत्त्वज्ञजन स्वयं समझ लेवेंगे—

और आज उपरोक्त विषयमें सत्य ग्रहणाभिलाषी पाठक गणको विशेष निस्संदेह होनेके लिये यहां पर प्रत्यक्ष दृष्टान्त दिखाता हूं सो देखो—आज काल वर्त्तमानमें जितने ही विवेक शून्य कदाग्रही मत वासियोंमें उन चैत्यवासियोंके जैसा दुष्टाग्रहका वर्ताव देखनेमें आता है जो जैसे कितने ही शहरों में कितने ही अज्ञानी ढूंढिये लोगोंने " जिनेश्वर भगवान्की रथ यात्राका वर घोड़ा वाजित्रादि सहित गीत गान पूर्वक " अपने स्थानकके आगेसे होकर नहीं जाने देनेका मान रक्खा है उन शहरोंमें कोई आचार्यादि मुनिराज पधारे हों वे वहांके आत्म कल्याणार्थी भक्त श्रावकोंको धर्मोपदेश द्वारा अठाई उच्छव जिन पूजन रथ यात्रादिसे शासनका प्रभावना करने वाले को बोधिबीजकी प्राप्ति सम्यक्तकी शुद्धि और अनंत लाभका कारण वतलाया होवे उसको सुनकर हृदयमें धारके कितने ही भक्त श्रावकोंने श्रद्धा पूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवान्की भक्तिके लिये और शासन प्रभावनाके वास्ते अठाई उच्छवमें रथ यात्राका वर घोड़ा वाजित्रादि सहित भगवानके गुणोंका कीर्तन पूर्वक जय ध्वनिसे निकालना शुरू किया होवे वहां बाजार या

गलीके रास्तामें ढूंढियोंका स्थानक आजावे तब ढूंढिये लोग वाजिन्त्रादि गीतगान जय ध्वनी सहित रथ यात्राका वर घोड़ा (भगवानकी असवारी) को अपने स्थानकके आगेसे जाने सम्बन्धी विरोध करें और बहुत कहने सुनने पर भी नहीं माने तो अपने हठवाद रूपी मतकदाग्रहके कारण अभिमानसे क्रोध कदाग्रह करके मार पीट लड़ाई दंगा भी करने लगजावे और बकवाद करने लगजावे कि-हमारे स्थानकके आगेसे रथ यात्रा वर घोड़ा वाजिन्त्रादि गीत गान जय ध्वनी पूर्वक आज तक भी नहीं निकला तो आज कैसे जाने देवेंगे इस प्रकार क्लेशसे कर्म बंधनका कारण जानकर विवेकी बुद्धिमान् शांत स्वभावी आत्मार्थी भक्त जनोंने उस भगवान् की असवारीको वाजिन्त्रादि ध्वनि पूर्वक ढूंढियोंके स्थानकके आगेके रस्तेके बदले दूसरे रस्तासे ले जावे तो क्या वह रथ यात्रा भगवान्की असवारी अठाई उच्छव पूजन कल्पित शास्त्र विरुद्ध हो सकता है सो तो कदापि नहीं तथापि कोई अज्ञानी मत कदाग्रही ढूंढक कहने लगे कि देखो उस दिन रथ यात्राका वर घोड़ा हमारे स्थानके आगे होकर नहीं जाने पाया इस लिये यह रथ यात्रादि सब झूठे ढङ्ग हैं तो क्या वह अज्ञानी ढूंढकका कहना सत्य कदापि हो सकता है सो तो कभी नहीं और उस अज्ञानी ढूंढकके अनुयायियोंकी अन्ध परम्पराका कथन भी सत्य नहीं होसकता तथा रथ यात्रा अठाई उच्छव जिन पूजन वगैरहका उपदेश और कर्त्तव्य कल्पित शास्त्र विरुद्ध नवीन प्ररूपणा नहीं ठहर सकती किन्तु शास्त्रानुसार जिनाज्ञा मुजब आत्म कल्याण कारक प्राचीन ही माननेमें आते हैं तिस पर भी कोई कदाग्रही भारी कर्मा अपना झूठा हठवादको नहीं छोड़े तो उसके कर्मोंका दोष परन्तु आत्मार्थी जन तो ऐसा

कल्पित झूठा कदाग्रह कदापि नहीं कर सकते हैं इसी तरहसें उस समय उन चैत्यवासियोंने अपने अपने गच्छममत्व रूप वाड़े बन्धनमें अपने अपने दृष्टि रागियोंको फंसा लिये थे तथा अपने गच्छके अविधिसें मंदिर बनवाये और भ्रष्टाचारमें पड़कर आजिवीका करते हुए काल व्यतीत करते थे और अपनी २ कल्पित कल्पनाके माने हुए मन्तव्यके विरुद्ध चाहे वो जिनाज्ञा मुजब शास्त्रानुसार होवे तो भी अपने अधिकारके मंदिर (चैत्य) में दूसरे गच्छ वाले किसीको भी कोई भी कार्य नहीं करने देते थे इस लिये उन चेत्यवासीनी जतनीने भी अपने गच्छके मन्दिरमें श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजको देव वन्दनादि नहीं करने दिये तथा गच्छ कदाग्रहसे मन्दिरके दरवाजे आडी गिर गई और अविचारसे क्रोध युक्त अनुचित वर्ताव करके आगमार्थको समझे बिना स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धिसे अपनी कल्पना मुजब कहने लगी कि-पहिले किसीने भी मेरे मन्दिर में एसा नहीं किया तो यह कैसे करेंगे; इस तरहसे उस चैत्य वासीनी गच्छ कदाग्रही अज्ञानी जतनी (साध्वी) का कथन सत्य नहीं हो सकता तथा श्रीजिनवल्लभ सूरिजीका भी वीर प्रभुके छठे कल्याणक संबन्धी कथन तथा उसीके लिये मन्दिर में देव वन्दनाके लिये जाना भी शास्त्र विरुद्ध कल्पित नहीं हो सकता किन्तु इन महाराजका कथन तो आगमानुसार जिनाज्ञा मुजब ही समझना चाहिये। तिस पर भी उस चैत्य वासीनी अज्ञानि जतनिका कदाग्रही कथनको विवेक बुद्धि गुरुगम्यआगमार्थसे सत्यासत्यका निर्णय किये बिना गड्डरीह प्रवाहकी तरह अन्ध परंपराका गच्छ कदाग्रहसे आगे करके उसी तरहका दृढ़ कदाग्रहसे आगमोक्त छठेकल्यणक संबंधी श्री जिनवल्लभ सूरिजीके सत्य कथनको झूठा ठहरानेका उद्यम करने वाले

धर्म सागरजी व उनके अनुयायियोंको गच्छ कदाग्रही अज्ञानियों के सिवाय और क्या कहा जावे सो इस बातको निष्पक्षपाती आत्मार्थी विवेकी जिनाज्ञाभिलाषी पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं—

तथा दूसरा और भी सुनो वर्तमानमें गच्छ वासी यति तथा श्री पूज्य लोगोंमें अपने २ गच्छके मंदिरोंमें स्नात्र पूजाका पढ़ाना सतरह भेदी पूजन तथा शांतिक पूजन प्रतिष्ठा उजमणादि कर्तव्य को जो यति लोग कराते हैं वहां दूसरे गच्छवाले यतिको स्नात्र पूजा प्रतिष्ठादि क्रिया कभी नहीं करने देते जिस पर भी दूसरे गच्छ वाला यति करने जावे तो वे लोग बोलने लगते हैं कि ऐसा कभी हुआ नही होने भी नहीं देवेंगे यह बात भी प्रत्यक्ष देखनेमें आती है इससे दूसरा गच्छ वालेका स्नात्र पढ़ानादि क्रिया करवाना शास्त्र विरुद्ध नहीं हो सकती परन्तु निषेध करने वालोंका गच्छ कदाग्रह अन्ध परंपरा ही समझनी चाहिये और कितने ही संवेगी नाम धराने वाले साधु लोग तथा उन्होंके दृष्टिरागी श्रावक लोग भी दूसरे गच्छ वाले साधू साध्वियोंको अपने गच्छके उपाश्रय व धर्मशालामें उतरने नहीं देते ऐसे ही अन्यमत वाले मिथ्यात्वी लोगोंमें भी देखने में आता है कि अपने मतके मठ देवलमें या अपने भक्तोंके घरमें पूजन व अनुष्ठानादि कार्य अपने कुटुम्बके आदमीके सिवाय दूसरे आदमीको नहीं करने देते जिस पर भी कोई करने जावे तो उस पर अपनेसे बन सके तब तक मारपीट लड़ाई दङ्गा सिर फोड़ना वगैरह करें परन्तु अपने विरुद्ध दूसरेको नहीं करने देते इसी तरहसे वे चैत्यवासी भी अपने सिवाय दूसरे गच्छ वालेको नहीं करने देते थे उससे उन चैत्य वासीयो भक्तोंने भी श्रीजिन वल्लभ सूरिजीको दूसरे गच्छवाले

जानकर अपने गच्छके मंदिरमें प्रवेश भी नहीं करने दिया और मन्दिरके आडि गिर गई सो तो उनकी अज्ञानताका कदाग्रह समझना चाहिये परन्तु इन महाराजका कथन तो शास्त्रोक्त सत्य ही मानना चाहिये—

तथा तीसरा और भी सुनो—जब चीतोड़ नगरमें जिस समय श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराज विहार करते हुए पधारे उस समय वहांके जैनी नाम धराने वाले चैत्यवासियोंके दृष्टिरागी भक्तोंने नगर भरमें महाराजका ठहरनेके लिये कोई भी स्थान न दिया तब महाराज चामुंडा देवीके मन्दिरमें ठहरे और वहां धर्मोपदेश द्वारा चैत्यवासियोंकी अविधिको निषेध करके विधि मार्ग जिनाज्ञाको प्रगट करने लगे तब वहांके चैत्यवासी लोग इन महाराज पर द्वेष करके पांच सौ (५००) आदमी एकट्ठे होकर लाठी लेके महाराजको मारनेके लिये आये यह बातके इतिहास छपे हुए संघपटकमें तथा श्रीगणधर सार्द्ध शतक वृत्ति प्रकरणादिमे प्रसिद्ध है इस पर भी विचार करना चाहिये कि—जब वे चैत्यवासी लोग नगरमें ठहरनेकी जगह तक भी नहीं देने देवे तथा अपनी खराब आचरणके अवगुणों को देखे बिना उनको मारनेके लिये जावे पूरा द्वेषभाव रक्खे तो फिर उनको अपने मन्दिरमें कैसे प्रवेश करने देवे अपितु कभी नहीं इस लिये उन चैत्यवासीनी जतनीने द्वेष बुद्धिसे अपने मन्दिरमें महाराजको प्रवेश तक भी नहीं करने दिया यह तो द्वेषका कारण प्रत्यक्ष दिखता है और उनहीं अज्ञानी कदाग्रही चैत्यवासिनीका अनुकरण करके सत्यासत्यकी परीक्षा किये बिना आगमोक्त छठे कल्याणकका निषेध करनेके लिये श्री जिनवल्लभ सूरिजी महाराज पर कल्पित प्ररूपणका दूषण लगाने वाले उन चैत्यवासीनी जैसे ही गच्छ कदाग्रही जिनाज्ञाके और

पूर्वाचार्यों के अत्र अज्ञानी समझना चाहिये इस बातको विशेष रूपसे तत्वज्ञ सज्जन स्वय विचार सकते है—

और भी गणधर सार्द्धशतकको १२२ वी गाथाकीटीका का विशेष निर्णय इस ग्रन्थके पृष्ठ ६१० से ६३१ तक छपचुका है वहांसे समझ लेना इस लिये इस गाथाको टीकासे भी छठा कल्याणक आगमोक्त गणधरादि महाराजोका कथन किया हुआ उसके अनुसार इन महाराजने भी कहा है—

अब पाठकवर्गसे मेरा यही कहना है कि-धर्मसागरजीने श्रीगणधर सार्द्धशतकको वृत्तिकारके अभिप्रायको तथा इस पाठके पूर्वापर सम्बन्ध के भावार्थको समझे बिना या अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे माया वृत्ति करके बीचमेंसे थोड़ासा अधूरा पाठ बालजीवोंको दिखाके अपनी कल्पनासे छठे कल्याणक की नवीन प्ररूपणा करनेका उद्यम किया सो गच्छ कदाग्रह अन्ध परपरा वालोंको और भोले जीवोको मिथ्यात्वमें गेरने वाला होनेसे ससार वृद्धिका हेतु है इस बातका निर्णय इस ग्रन्थके पढने वाले ऊपरके लेखसे विवेकी पाठकगण स्वय कर लेवेंगे—

और चैत्यवासीयोंका क्रोधयुक्त अनुचित वर्तावको देख कर मन्दिरमें प्रवेश न किया पीछे लौट कर स्वस्थान आगये सो तो बहुत ही अच्छा किया क्योंकि आत्मार्थी जिनाज्ञा राधक शात स्वभावी महात्माजन क्लेश झगडेके कारण कर्म बधके हेतुसे दूर रहते हैं इस लिये यद्यपि महाराज श्रावकों के साथमें मन्दिरजीमें देव वन्दन करनेको जाते थे सो महाराज का कर्तव्य सत्य था तिस पर भी उन चैत्यवासिनोंका गच्छ कदाग्रह देख कर पीछे लोट आये उससे इन महाराजका कथन शास्त्र विरुद्ध कदापि नही हो सकता इस बातको

विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं क्योंकि देखो वर्तमानमें तुम्हारे तप गच्छके मुनि श्रीआनन्द सागरजी मुम्बई बन्दर से श्रीसंघके साथमें श्रीअन्तरिक्ष पार्श्वनाथजीकी यात्रा करने के लिये वहां गये थे तब साथमें भगवानकी प्रतिमा भी थी इस लिये जब तक सन्घ वहां दर्शनके लिये ठहरे तब उन प्रतिमाजी को भी अन्तरीक्ष पार्श्वनाथजी महाराजके मंदिर में बिराजमान करनेके लिये संघवाले गये सो बात उचित थी तिस पर भी वहांके दिगम्बर लोगोंने कितने दिन तक मंदिर में प्रतिमाजी को विराजमान करनेका विरोध किया बिराज मान नहीं करने देने लगे तब आपसमें खींचातान होनेसे श्वेतांबर दिगम्बर श्रावकोंके आपसमें मारपीट लड़ाई दङ्गा हो गया कोर्ट कचेरीमें हजारोंका खर्चा हुआ लोगों को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी साथवाले साधुओंको भी कोर्टमें खड़ा रहना पड़ा इत्यादि बहुत नुकशान हुआ सो जैनमें प्रगट है और श्रीजिनवल्लभ सूरिजी तो कलेशका कारण देख कर पीछे लौट आये सो बहुत अच्छा किया किसी तरह का नुकशान नहीं हुआ परन्तु उससे महाराजका कथन शास्त्र बिरुद्ध नहीं समझना चाहिये जिस पर भी कोई इस बातको विरुद्ध समझे तो उनकी अज्ञानता है इसको विवेकी जन स्वयं बिचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी धर्म सागरजीने पूयई सूरुपडिसंपि साविआ चिई निवासी सम्मंतं "गर्भापहार कल्याणगंपिनहु होई वीरस्स॥ १॥" इस गाथाको लिख कर छठे कल्याणक को निषेध करनेके लिये बाल जीवोंको अपनी चतुराई दिखाई परन्तु विवेकी विद्वानोंके आगे तो बाल बुद्धिकी वाचालता दिखाकर अपनी हांसी करानेका कारण किया है क्योंकि

देखो ऊपरकी गाथासे छठा कल्याणक निषेध नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रोक्त सिद्ध होता है क्योंकि देखो श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजने "उत्सूत्रपदोद् घाटण कुलक" में ऊपरकी गाथा कथन करी है इस गाथाका भावार्थ ऐसा है कि इन महाराजके समयमें चैत्यवासी लोग शिथिला चारमें पड़कर अनेक तरहकी शास्त्रोक्त विधि मार्गकी सत्य बातोंको छोड़ बैठे थे और शास्त्र विरुद्ध अविधिकी कितनी ही बातें करने लग गये थे उसमें श्रीवीर प्रभुके गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको माननेका निषेध करते थे तथा मन्दिरमें रात्रिको स्नात्र पूजा प्रतिष्ठा बलि विधान स्त्रियोंका आगमन दीवा बत्तियोंकी धूमधाम और सधवा सयोवना अनियमीत रजस्वला होनेवाली अविवेकी तरुण स्त्रियोंको नगरका श्री संघके मन्दिरमें चमत्कारी प्रभावक मूल नायककी प्रतिमाकी केशर चन्दनादिसे अङ्ग पूजा करनेका और अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेका निषेध वगैरह कितनी ही विरुद्धा चरणके वर्तावकी अनुचित बातोंकी प्रवृत्ति करने लग गये थे और आत्मार्थी आज्ञाके आराधक शुद्ध संयमी विधि मार्गमें चलने वाले बहुत थोड़े रह गये थे उन्होंका मन्तव्य तो वीर प्रभुके गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनको कल्याणकस्वपने से माननेका तथा मन्दिरमें रात्रिको स्नात्रादि करनेका दीवा बत्तीयोंकी धूम धाम स्त्रियोंका रात्रिमें मन्दिरमें आगमन और अनियमीत रजस्वलाके कारण अविवेकी सयोवना सधवा स्त्रीको संघके मन्दिरमें मूलनायककी प्रतिमाकी अङ्ग पूजा नहीं करनेका था इस लिये आगमानुसार तथा आत्मार्थी पूर्वा चार्योंकी कालानुसार लाभालाभके विचारकी आचरणानुसार श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजने "उत्सूत्रपदोद् घाटनकुलक"

में ऊपरकी गाथा कथन करी है उससे यह बात प्रगटपने दिखती है कि वर्तमान कालमें कलयुगी श्राविका नाम धारण करने वाली स्त्री मूलनायकको अङ्ग पूजा करनी और वीरप्रभुके गर्भ हरणको कल्याणक नहीं मानना यह मन्तव्य उन चैत्यवासियों के सम्मत हैं ऊपरकी दो बातें चैत्यवासी मानते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि वे ऊपरकी दो बातें पूर्वाचार्योंको सम्मत नहीं है अर्थात् भ्रष्टाचारी चैत्यवासी वैसा मानते हैं परन्तु आज्ञा आराधक पूर्वाचार्य तो वीरप्रभुके गर्भहरणको दूसरे च्यवन रूप कल्याण कत्वपनेमें माननेका तथा नगरके संघके मन्दिरमें चमत्कारी प्रभावक मूलनायककी प्रतिमाजी का प्रभाव चमत्कार आशातनासे कम न होनेके लिये तथा आशातनासे अधिष्ठायक देवके न चले जानेके लिये और शासन की वृद्धि होती रहनेके लिये सधवा सयोवना अविचारवान् तरुण स्त्री मूलनायककी केसर चंदनादिसे अङ्ग पूजा न करे एसा मानते हैं इस मूजब उपरकी गाथासे सिद्ध होता है इस लिये ऊपरकी गाथासे चैत्यवासियोंका मन्तव्य इन महाराजने दिखाया है परन्तु गर्भापहारको कल्याणकत्वपने में निषेध नहीं किया हैं इस लिये धर्मसागरजीनें ऊपरकी गाथासे छठे कल्याणकका निषेध किया सो अपनी अज्ञानतासे हासीका कारण किया है इस बातको विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे—

और यद्यपि पूर्वकालमें विवेकी द्रौपदी वगैरह सतीयोंने मूलनायककी अङ्ग पूजा करी थी ऐसे शास्त्रोंमें बहुत प्रमाण मिलते हैं तोभी कालानुभावसे वर्तमानमें वो बात मुख्यतया नहीं रही और बाल कुमारिका तथा रजस्वलाके रोध वा वृद्ध स्त्रीयें मूलनायककी अङ्ग पूजा करैं किन्तु अकालरितु श्राव (रजस्वला) होनेके कारण मूलनायककी महान् आशातनासे उनका चमत्कार

प्रभाव कम हो जावे उनके अधिष्ठायक देव वहासे चले जावे तथा सन्घकी प्रवृती वृथा होवे और रजस्वलासे आशातना करनेवालीका ससार परिभ्रमण करनेका कर्म बंध होवे इत्यादि कारणोसे पूर्वाचार्य्यो ने मूल नायककी अङ्ग पूजाका निषेध किया है इसलिये पूर्वकालकी सती श्राविकाओंके दृष्टान्त बतलाके उन सतियोके जैसी महाभक्ति, शुद्धशीयल और पतिव्रता धर्मकी दृढता शरीरकी निरोगता मजबूत सहयनसे नियमित रजस्वला होनेवाली, वगैरह पूर्ण उपयोगयुक्त शुद्ध श्राविकाओके विवेकादि गुणोका विचार किये बिना वर्तमानमें अनियमित रजस्वला होनेवाली अविवेकी कलयुगी स्त्रियोको मूलनायकजी अङ्ग पूजा करनेकी बातको स्थापन करनेका आग्रह करके रजस्वला वगैरहसे मूल नायककी आशातनासे पूर्वोक्तादि अनेक तरहके नुकसानका कारण करना और उससे भगवानकी आशातनाके भागी होकर लाभके बदले हानि करके अपने ससारका कारण रूप ऐसा आग्रह करना उचित नहीं है इस बातमें समुद्र जैसी बुद्धिवाले गीतार्थ लाभालाभके जानने वाले पूर्वाचार्य्यो ने जो आचरण मान्य करा है उन्हींके कथन को और आचरणको जिनाज्ञाके आराधन करनेवाले आत्मार्थी सज्जनोको मान्य करना चाहिये और इस बातका आचरण श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके पहिलेके पूर्वाचार्य्यो से चली आती है देखो श्रीपार्श्वनाथजी सतानीये श्रीरत्नप्रभ सूरिजीकृत समाचारीमें ऋतुवतीका जिन पूजा निषेध लिखा है जब तो गछकदाग्रहो का थाहा नहीं था इसलिये वर्तमानमें कितने ही गच्छकदाग्रही अज्ञानी धर्मसागरजी वगैरह और इनकी अधपरंपरामें चलनेवाले श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजको स्त्री पूजा निषेध करनेका दूषण लगाते है सो व्यर्थही युगप्रधान

शासन प्रभावक परमोपकारी महाराजकी प्रत्यक्ष झूठी निन्दा करके पापसे दुर्लभ बोधिपनेका और संसार भ्रमण करनेका हेतु करके भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके कारण करते हैं क्योंकि कालानुभावसे अनियमित अकालसे अकस्मात ऋतुभाव के दूषणसे पूर्वोक्तादि अनेक बातोंकी हानि न होनेके लिये तरुण स्त्री मूलनायककी अङ्ग पूजा न करे और कुमारि वृद्ध कर सकती हैं यह आचरण इन महाराजके पहिले पूर्वाचार्य्योंका है और यद्यपि चौवीश (२४) ही तीर्थंकर महाराजकी प्रतिमा पूज्यभावमें तो सभी बरोबर है। परन्तु राज्यगद्दीकी तरह मन्दिर तथा अधिष्ठायक मूलनायकके नामसे होते हैं उसके चमत्कार प्रभावसे जैन शासनकी विशेष उन्नति होती है इसलिये यदि पूजा करनेके समय अकालसे अकस्मात् ऋतुभाव हो जावे तो मूलनायकका तेज कांति प्रभाव हट जावे अव्यवस्थीत प्रतिमाजोहो जाति है तथा महा मलीन अशुद्धताकी बड़ीआशातनासे अधिष्ठायकके कोपसे आशातना करनेवालों को तो जो शिक्षा मिले सो मिले ही परन्तु शासनकी प्रभावना उन्नति होनेमें बाधा पहुचे बड़ीभारी हानि होवे और संघमेंभी रोगमारी जन हानि दलिद्रता वगैरह भयङ्कर उपद्रव होनेका भय रहता है यह बातें तो वर्तमानमें बहुत जगह बनी हुई है उसके प्रत्यक्षमें बहुत दृष्टान्त है इसलिये लाभके बदले विशेष हानिके कारण इस प्रवृत्तिको पूर्वाचार्य्यों ने नियत करो है परन्तु जिस स्त्रीके अङ्गपूजा ही करनेका विशेष भाव होवे तो वो अपने शरीरकी व्यवस्था देखकर पूरण उपयोग युक्त पवित्रतासे श्रीपञ्चतीर्थकी नवपदजीका तथा मूलनायकके बिना आजुबाजुकी अन्य प्रतिमाजीकी अङ्ग पूजा करके अपनी भावना पूरण कर लेवें उसमें कदाचित् अकस्मात्से आशातना

भी हो जावे तो उसके विपाक वोही इस भव पर भवमें भोगेगी परन्तु मूलनायकके प्रभावमें तथा अधिष्ठायकके कोपसे शासनकी उन्नतिकी बाधा और संघमें भयंकर उपद्रवकी तो सम्भावना न होगी, और तरुण स्त्री मूलनायककी अङ्ग पूजा न करे परन्तु अग्रपूजा पुष्प प्रकरको रचना धूप दीपादि और भावपूजा चैत्य वदन स्तवन गीतगान नाटकादि करके अपनी भावनानुसार अपनी आत्माको पवित्र करें इसका खुलासा श्रीमान् समय सुन्दरजी उपाध्यायजी विरचित श्री'समाचारीशतक'नामा ग्रन्थसे तथा श्रीमज्जिनयशस्सूरिजी महाराजके आज्ञाके अनुयायी श्रीमान् प० केशर मुनिजी रचित "प्रश्नोत्तर विचार" नामा पुस्तकके देखनेसे हो जावेगा और विस्तार पूर्वक विशेष निर्णय इसी ग्रन्थकारका बनाया श्रीधर्मात्मा तिमिरोच्छेदन भास्कर 'अपरनाम "प्रवचन परीक्षा निर्णय" नामा ग्रन्थके अवलोकनसे अच्छी तरहसे हो जावेगा यह ग्रन्थ थोड़े समयमें प्रकाशित होनेका सम्भव है इसलिये स्त्रीपूजा निषेध सम्बन्धी श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजको धर्मसागर जी वगैरह दूषण लगाते हैं सो मिथ्यात्वकी वृद्धि करनेवाला प्रत्यक्ष मिथ्या है इस बातको निष्पक्षपाती पाठकगण ऊपरके लेखसे स्वय विचार लेवेंगे।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने 'श्री हरिभद्रसूरिजी श्रीअभयदेवसूरिजी आदि पांच कल्याणकवादियोंकी अज्ञानता करके उत् सूत्र भाषणसे तुलना करते हुए पूर्वोक्त चैत्य वासिनी जननीने निवारण किये जिसपर अपना मत प्रगट करनेके लिये छलसे छठे कल्याणककी व्यवस्था स्थापन करनेका लिखा सो श्रीहरिभद्र सूरिजी श्रीअभयदेव सूरिजी श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महाराजके सामान्य विशेषरूप कथनके भावार्थको समझे

विना श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज पर व्यर्थका झूठा दूषण लगाके प्रभाविक आचार्योंके अवर्ण वादसे निज परके दुर्लभ बोधिका कारण किया है क्योंकि सामान्यता से सर्व तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे २४ ही तीर्थंकर महाराजोंके पांच पांच कल्याणक कहे जाते हैं उसी अपेक्षासे श्री अभय देव सूरिजीने पचाशकमें पांच कल्याणक कथन किये हैं तैसे ही श्री जिनवल्लभ सूरिजीने भी चौवीस जिनस्तवनाधिकारे सामान्यतासे वहां पांच कल्याणक कहे हैं वैसे हम लोग भी सब तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे सामान्यता करके पांच ही मानते हैं परन्तु जैसे श्री अभयदेव सूरिजीने ही खास श्री स्थानांग सूत्र की टीका करते हुए सूत्रके मूलपाठानुसार श्री पद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर महाराजोंके सामान्यतासे पांच पांच कल्याणक बतलाये और विशेष रूपसे श्री पद्म प्रभुजी आदि १३ तीर्थंकरोंकी तरह ही २४ वें वीर प्रभुके पांच कल्याणक हस्तोत्तर नक्षत्रमें और छठा निर्वाण कार्त्तिक अमावस्याको स्वाति नक्षत्रमें खुलासा दिखाके विशेष रूपसे छ कल्याणक कथन किये उसी तरहसे श्री जिनवल्लभ सूरिजीने भी श्री कल्प सूत्र और आचारांग सूत्रादिके मूल सूत्र पाठके अनुसार विशेष रूपसे वीरप्रभुके छ कल्याणक कथन किये हैं वैसे हम लोग तथा जिनाज्ञा आराधक आत्मार्थी सब कोई विशेषतासे छ कहते हैं इसलिये सामान्य विशेषके भेदसे पांच छ दोनों बातें माननेमें और कथन करनेमें किसी तरहका मत भेद अज्ञानता उत्सूत्रता हीलना न समझना चाहिये जिस जगह जैसा प्रसंग हो वे वहां वैसा ही कथन करनेमें आता है इस सामान्य बातमें विशेष बात न दिखावे और विशेष बातमें सामान्य बात न दिखावे तो भी किसी तरहका हरजा की

बात नहीं है कुतर्क करना ही अज्ञानताका कारण है और शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझे बिना एकांत पक्षपाती होकर गच्छ कदाग्रहसे पांच कल्याणककी सामान्य बातको माननेका आग्रह करके स्थानांग आचारांग कल्प सूत्रादि मूल आगमोंमें लिखो हुई छ कल्याणककी विशेष बातको निषेध करनेका हठवाद करनेवाले तीर्थंकर गणधर पूर्वाचार्यों की और जैनागमोंकी आशातना हीलना करने वाले अज्ञानी उत्सूत्र भाषी ठहरते हैं परन्तु आत्मार्थियोंको तो दोनों बातें माननी चाहिये इस बातको विशेष विवेकी तत्वज्ञ सज्जन गण स्वय विचार सकते हैं।

और श्रीजिन वल्लभ सूरिजो महाराजने हठसे अपना मत स्थापन करनेके लिये नहीं आगमोक्त सत्य बातको प्रगट करी है इस लिये छठे कल्याणकका कथन करनेमें किसी तरहका दूषण नहीं किन्तु हठवादसे निषेध करनेसे आगम पाठउत्थापनका दोष लगता है तथा उन चैत्यवासिनी ललनीने तो आगमार्थको और महाराजके कथन को विवेक बुद्धिसे समझे बिना गच्छममत्वसे व्यर्थ हठ किया था जिसका निर्णय ऊपर में लिखा गया है परन्तु उस अज्ञानी चैत्यवासिनी ललनीकी स्त्री जातिकी तुच्छ बुद्धि गच्छ कदाग्रहकी मूर्खताके अन्ध परंपरामें पड़कर विवेक शून्यतासे धर्मसागरजी वगैरहोंने भी उनी ललनीका अनुकरण करके छठे कल्याणकको निषेध करनेके लिये उसका दृष्टान्त दिखाते हैं और अनेक तरहकी कुयुक्तियोंसे आगमोक्त सत्य बातको झूठा ठहरानेके लिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजी महान् प्रभावक युग प्रधान उत्तम पुरुषको झूठा दूषण लगाने वाले वर्तमानिक विद्वान् नाम धराने वाले कदाग्रहियोंको लज्जित होकर ऐसा कदाग्रह छोड़ना चाहिये और

अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको त्यागके सत्य बात अङ्गीकार करनी चाहिये—ज्यादा क्या लिखें—

और हम लोग शक्रेन्द्रने गर्भहरण करवाया उससे शक्रइन्द्र कर्तव्य मानकर गर्भहरणको कल्याणकत्वपना नहीं कहते किन्तु श्रीसमवायांग सूत्र वृत्तिके अनुसार गर्भहरणको दूसरे भवमें गिनकरके श्रीस्थानांग आचारांग कल्प सूत्रादि शास्त्रोंके पाठ प्रमाणसे और त्रिशला माताने १४ स्वप्न आकाशसे उतरते हुए देखे वगैरह कारणोंसे गर्भहरणको दूसरे भवमें गिनकर दूसरा च्यवन रूप कल्याणक मानते हैं इस लिये इन्द्रकृत राज्याभिषेकके दृष्टान्तसे वीरप्रभुके छठे कल्याणकको निशेध करनेके लिये इन्द्रकृतकी समानता संबन्धी अपनी कल्पना मुजब शङ्का समाधान करके धर्म सागरजीने भोले जीवोंको भ्रममें गिरानेका कारण किया है सो सब व्यर्थ है।

और आगे फिर भी धर्मसागरजीने भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेर अपनी अंध परंपराकी माया जालमें फंसानेके लिये अपने संसार बढ़नेका भय न करते हुए श्रीजिनवल्लभ सूरिजी तथा श्रीजिनदत्त सूरिजी और उन्होंके परंपरा वालोंको अनेक तरहके दूषण लगानेके लिये अनेक तरहसे कुयुक्तियोंके विकल्प करके मन मानी कल्पनासे पूर्वपक्ष लिखके उसके उत्तरमें अपनी धर्मठगाईकी वाचालता प्रगट करी है जैसे चौथ (४) का पर्युषण करना आगममे नहीं लिखा सो भी प्रवचन पूजाकी अभि वृद्धिके लिये कालिकाचार्यजीने ४ को पर्युषणा वार्षिक पर्व किया सो उन्होंके अनुयायी परंपरा वालोंको प्रमाण है तैसे ही गर्भापहार कल्याणक शास्त्रोंमें नहीं कहा सो भी जिनवल्लभ वाचना चार्यने प्रवचन पूजाकी अभि वृद्धिके लिये गर्भापहारको कल्याणक ठहराया

तो उनके परम्परा वालोंको माननेमें कौन निवारण कर० सकता है" इस प्रकार पूर्वपक्ष लिखके उसके उत्तरमें धर्म सागर जीने अपनी माया वृत्तिकी ठगाईसे भोले जीवोंको भरममें गेरनेका कारण किया सो सब अज्ञानतासे प्रत्यक्ष मिथ्या और व्यर्थ ही परिश्रम किया है क्योंकि श्रीकालिकाचार्यजीने तो देश कालानुसार राजाके आग्रहसे विशेष लाभ जानकर चतुर्थीका पर्युषणा किया था और श्री जिनवल्लभ सूरिजीने तो कालिकाचार्यजीकी तरह देश कालको देखकर किसीके कहने से गर्भापहारको कल्याणक नहीं ठहराया किन्तु इन महाराजने तो आगमोंके मूल पाठानुसार शास्त्रोक्त रीतिसे गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकको आश्विन मासके कृष्णपक्ष की त्रयोदशी (आसोज वदी १३) के दिन आराधन करने का उपदेश दिया था सो गर्भापहार रूप दूसरे च्यवन कल्याणकके मास पक्ष तिथिका वर्णन आचारांग सूत्र कल्पसूत्र तथा इनकी व्याख्यायोंमें और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रमें आवश्यक व्याख्यायोंमें प्राकृत वीर चरित्रादि अनेक शास्त्रोंमें कथन किया है उसी दिन उसके आराधन सम्बन्धी देव वन्दना दिके लिये कहांसे इन महाराजका कथन आगमानुसार युक्ति युक्त है शास्त्रानुसार बातको कोई प्राणी नहीं जानते होवें तो उनोंके सामने उस बातका उपदेश देनेमें किसी तरहका हरजा नहीं है इस लिये धर्मसागरजी का ऊपर मुजब पूर्व पक्ष लिखना और उसके उत्तरमें अपनी मनो कल्पित कुयुक्तियें लिखना सब व्यर्थ है तथा और भी धर्मसागरजीकी धर्म ठगाई की कुयुक्तियोंका विशेष निर्णय इस ग्रन्थको पढने वाले विवेकी सत्य ग्राही सज्जन विद्वानजन स्वय कर लेवेंगे अब विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है आगमोक्त छ कल्याणक

माननेका निषेध करने वालोंकी कुयुक्तियों विकल्पोंकी सब शङ्काओंको निवारण करनेमें यह ग्रन्थ समर्थ ही है इसलिये तत्वाभिलाषी जन स्वयं समझ लेवेंगे—

और श्रीजिनवल्लभ वाचनाचार्यने चैत्यवासी अपने गुरूकी आज्ञा लेकर श्रीनवांगी वृत्ति कारक श्री अभयदेव सूरीजी महाराजके पासमें जैनागमोका अध्ययन किया और क्रिया उद्धार तप संपत् पुनर्दिक्षा लिया है इस बातका उल्लेख इसी ग्रन्थमें पहले होगया है तथा श्रीगणधर सार्द्धशतक बृहद्-वृत्ति लघु वृत्ति गणधर सार्द्धशतकांतरगत प्रकरण, खरतर गच्छ पट्टावली और इतिहासिक ग्रन्थ समाचारी शतकादि देख लेना इसलिये श्रीजिनवल्लभ सूरिजीके क्रिया उद्धार संबन्धी झूठी कल्पना करके वैश्या सतीकी निन्दा करे उसी तरहसे बड़े पुरुषोंकी निन्दासे धर्मसागरजी को भी संसार भ्रमणका भय रखना उचित था खैर इस बातका विशेष निर्णय धर्मसागरजीके तथा इनके साथ वाले और इनके पिछाड़ीके अनुयाइयोंकी मिथ्यात्वके तिमिरच्छेदन करनेके लिये "हीर धर्मात्मा मिथ्यात्वतिमिरोच्छेदन भास्कर" अपर नाम "प्रवचन परीक्षा निर्णयमें लिखा जावेगा ॥ इति ॥

और भी श्रीज्ञान विमल सूरिजीने 'पर्युषण महात्म्य' में छ कल्याणकका निषेध सम्बन्धी लिखा उसका भी प्रसंगवशसे थोड़ा सा निर्णय लिखना उचित समझ कर लिखता हूं सो उनका लेख नीचे मुजब है "श्रीमहावीर स्वामीने पांच कल्याणक कह्या छे अहीयां कोई एक छ कल्याणक कहे छे ते निःकेवल भ्रान्ति छे अने तेमनी मोटी भूल छे केमके चोवीश तीर्थं करना एकशोने बीस कल्याणक शास्त्र मां कह्या छे पण एक शौने एक बीस कल्याणक तो कोई शास्त्र मां देखाता नथि पछीतो श्री गुरु

महाराज जाणे घणा एकने कल्याणक सम्बन्धी सन्देह छे ते सदेह तो भी केवली भगवान् टालीशके परतु महारु सामर्थ्य न थी" इस प्रकारका श्रीज्ञान विमल सूरिजीका लेख देखकर हमको बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होता है क्योंकि बहुत लोगोंको कल्याणक सम्बन्धी सदेह है सो वो सन्देह केवलि भगवान् निवारण कर सके परन्तु ज्ञान विमल सूरिजीकी सामर्थ्य नही है शास्त्र में १२१ कल्याणक देखाते नहीं हैं "पछीतो श्रीगुरुजी महाराज जाणे" इन अक्षरोंसे ज्ञान विमल सूरिजीके भी छ कल्याणक संबन्धी संदेह है इसलिये इसका निर्णय गुरुपर गेर दिया आज इस जगह विचार करना चाहिये कि छ कल्याणक सम्बन्धी आप सन्देहमें पड़े हैं और दूसरोका सन्देह मिटानेकी शक्ति नहीं तो फिर कल्याणकोंके मानने वालोंकी नि केवल भ्रांति और बड़ीभूल कह देना यह गच्छ कदाग्रहका दृष्टि रागके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी तत्वज्ञ जन स्वय विचार सकते हैं।

और शास्त्रमें १२१ कल्याणक देखाते नहीं हैं इसपर तो मुझे सिर्फ इतना कहना है कि-शास्त्रमें पुरुष तीर्थंकर होवे परन्तु स्त्री नही होवे ऐसा लिखा है तिस पर भी इस अवसर्पिणीमें कालानुभावसे कर्मानुसार १९ वें मल्लीनाथ स्त्रीपनेमें हुए सो मानते हैं तथा तीर्थंकर उत्तम कुलमें अवतरे परन्तु भिक्षारी दलिद्री के कुलमें अवतरे नहीं ऐसा शास्त्रमें लिखा है तिस पर भी वर्तमान चौवीसीमें कर्मानुसार २४ वें वीर प्रभु भगवान् ब्राह्मणके कुलमें अवतरे सो मानते हैं और सर्व तीर्थंकर महाराजोंके एक एक माता एक एक पिता होवे परन्तु दो दो माता तथा दो दो पिता न होवे ऐसा शास्त्रमें लिखा है तिस पर भी २४ वें भगवान् के दो माता दो पिता दो भव दो

च्यवन हुए सो आचारांग, आवश्यक वृत्ति भगवती समवायांग वीर चरित्र और कल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोंमें लिखा है सो इस बातको सब कोई मानते हैं इसी तरहसे १२० कल्याणक लिखे हैं तिसपर भी दो भव दो च्यवन दो वार माताओंने स्वप्न देखे दो माता दो पिता इत्यादि कारणसे वीरके दो च्यवन कल्याणकके हिसाब से १२१ होते हैं सो न्यायानुसार मानने ही पड़ेंगे इस लिये ज्ञान विमल सूरिजी का १२१ कल्याणक तो शास्त्रमें देखते नहीं लिखा यह तर्क व्यर्थ है इस बातको भी निस्पक्षपाती विवेकी तत्वज्ञजन स्वयं विचार सकते हैं।

और आगे फिर भी भगवानके पांच कल्याणक दिखानेके लिये उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे देवतानुं शरीर छोड़ी माताने उदर मां अवतरयां १ "उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे जन्म कल्याणक थयूं २, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे दीक्षा लिधी ३, उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र मां केवल ज्ञान पाम्यां ४, स्वाति नक्षत्रमां मोक्ष पहोच्या ५ इस तरहसे वीर प्रभुका चरित्रकी आदिमें कल्पसूत्रकी व्याख्या लिखते हुए पांच दिखाये परन्तु मूलसूत्रमें और उसकी व्याख्या ओंमें तथा आचारांग स्थानांगादि अनेक शास्त्रोंमें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमे" गब्भाओ गब्भंसाहरिए इस पाठसे गर्भापहार रूप दूसरा च्यवन खुलासा पूर्वक मासादि तिथि सहित लिखा है इसलिये मूलसूत्र पाठकी बातको उठा देना या तस्कर वृत्ति करके गच्छ कदाग्रहसे छुपा देना ज्ञान विमल सूरिजी को उचित नहीं था खैर आत्म हितार्थी पाठकगण से मेरा यही कहना है कि मूल आगमोंमें भी वीर प्रभुके चरित्राधिकारे सर्वत्र छ कल्याणक खुलासा स्पष्ट लिखे हुए हैं इस लिये इस बातको निषेध करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ज्यादा क्या लिखूं।

प्रश्न-अजी आप आगमोक्त प्रमाणोंसे और युक्तियोंके अनुसार श्री वीरप्रभुके छ कल्याणक दिखाते हो परन्तु तीर्थंकर महाराजके च्यवन जन्म दीक्षादि पांचो कल्याणकोंमें तीन जगतमें उद्योत होता है सब संसारी जीवोंको क्षणमात्र सुखकी प्राप्ति होती है तथा इन्द्र महाराज उसी समय नमोत्थुण से नमस्कार करते हैं और ६४ इन्द्रादि अनेक कोटाकोटी देवता देवी नंदीश्वर नामा आठमें द्वीपमें जाकर वहां शाश्वते मन्दिरोंमें अठाई उच्छव करते हैं इस लिये उनोंको कल्याणक मानते हैं परन्तु श्री वीर प्रभुके गर्भ हरणमें तो ऊपरकी 'बातें होनेका देखनेमें नहीं' आता तो फिर गर्भ हरणको कल्याणक कैसे माना जावे।

उत्तर—भो देवानुप्रिये! अतीव गम्भीरार्थयुक्त नय गर्भित अपेक्षावाले स्याद्वाद शैलीके जैनागम शास्त्रोंको विनय पूर्वक गुरु गम्यतासे पढते तथा विवेक बुद्धिसे आगमोंके भावार्थको हृदयमें धारण करते और गच्छके पक्षपात कदाग्रह रहित होते तो वीर प्रभुके गर्भहरण रूप दूसरे च्यवन कल्याणक में नमोत्थुण वगैरह न होनेका कदापि न कहते और गीतार्थ सुगुरु से इस बातका निर्णय किये बिना अपनी कल्पना मुजब मान लेना आत्मार्थियोंको उचित नहीं है क्योंकि देखो अनादिकालसे उसीको च्यवन कल्याणक कहते है तीर्थंकर देवलोकसे च्यव करके माताकी कूक्षिमें उत्पन्न होते हैं उसमें जो जो कर्त्तव्य बनते हैं सो वे ही सब कर्त्तव्य श्रीवीरप्रभुके गर्भहरण रूप दूसरे च्यवन कल्याणकमें भी होनेका समझना चाहिये जिस पर भी कोई कहेगा, कि गर्भहरण तो एक आश्चर्य रूप हुआ है उस आश्चर्यमें नमोत्थुण वगैरह होनेका कैसे सम्भव हो सके तो इसके उत्तरमें हमको सिर्फ इतना ही

कहना पड़ता है कि—मिथिलानगरीमें कुम्भ राजाकी प्रभावती रानीकी कूक्षिमें १९ वें भगवान श्रीमल्लीनाथ स्वामी स्त्रीपनेमें आकर उत्पन्न हुए सो भी आश्चर्य रूप हुआ उसमें तो नमोत्थुणं वगैरह आप लोग भी मानते हों तो फिर श्री वीर प्रभुके गर्भ हरण दूसरे च्यवन कल्याणक रूप आश्चर्यमें नमोत्थुणं नहीं मानना यह तो प्रत्यक्ष अन्याय आत्मार्थियोंको नहीं करना चाहिये अर्थात श्रीमल्लीनाथजी के स्त्रीपनेमें उत्पन्न होने रूप आश्चर्यमें जैसे नमोत्थुणं मानते हों वैसे ही श्रीवीर प्रभुके दूसरे च्यवन रूप आश्चर्यमें भी नमोत्थुण मानना न्यायानुसार आत्मार्थियोंको उचित है।

और जब श्री ऋषभादि २३ तीर्थंकर महाराजोंने गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने आगमादि अनेक शास्त्रोंमें गर्भापहार रूप दूसरे च्यवनको कल्याणकपनेमें गिन कर वीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी खुलासा व्याख्या करी है उससे ही उसमें नमोत्थुणं तथा तीन जगतमें उद्योत और संसारी सब जीवों को सुखकी प्राप्ति वगैरह तो स्वयं सिद्ध ही है इस लिये इस बातमें शङ्का रखना अपने सम्य कत्वको मलिनताका कारण है आत्मार्थियोंको करना उचित नहीं है।

और "णखलुएयंभूयं णभव्वं णभविस्सं जणणं अरिहन्ता वा चक्कवट्टीवा बलदेवा वा वासुदेवावा अंतकुले सुवा इत्यादि श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठके और उसकी अनेक व्याख्यायोंके अनुसार भगवान् कुलमदके कारणसे ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें देवानन्दा ब्राह्मणिकी कूक्षिमें आकर उत्पन्न हुए उसको आश्चर्य कहा है सो उस आश्चर्यमें आप लोग नमोत्थुणं वगैरह होने का मानते हो इसलिये आश्चर्यमें नमुत्थुणं वगैरह होनेका कैसे सम्भवे ऐसी शङ्का करना व्यर्थ है कहना ही व्यर्थ है इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

और जिस समय तीर्थंकर महाराज देवलोकसे च्यव करके मनुष्य लोकमें अपनी माताकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न होते हैं उस समय माता १४ स्वप्न देखे और तीन जगतमें उद्योत तथा सब संसारी जीवोको क्षण भर सुखकी प्राप्ति होती है और उसी समय तीर्थंकर महाराजके अनन्त पुण्यराशी रूपी हलकारेकी ठोकरसे सौधर्म देव लोकमें इन्द्रका आसन चलाय मान होता है तब अवधि ज्ञानसे भगवानका अवतरना जानकर हर्षयुक्त आ-पैर भगवान् सवधि दिशा तरफ सामने जाके विधि पूर्वक नमस्कार याने नमोत्थुणं करे और अपने कुबेर भण्डारीको आदेश देकरके देवताओंके द्वारा तीर्थंकर भगवानके माता पिताके राज्यभुवनमें स्वर्ण रत्नादि धनधान्य वगैरहकी वृद्धि करावे कुल राज्यकी भाण्डारकी वृद्धि वगैरह होवें पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव होवे यह सब तीर्थंकरो संबधी च्यवन कल्याणक का अनादि नियम है परन्तु जब वीर प्रभु भवान्तरका उपार्जीत नीच गोत्रके उदयसे ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुए तब इन्द्रका आसन चलायमान नहीं हुआ क्योंकि जब भगवान देवानन्दाकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुए तब देवा नन्दाने १८ स्वप्न देखे सो अपने पतिको कहे उसने उत्तम लक्षण वाला पुत्र होनेको कहा उसको सुनकर "ते सुमिणो सम्म पडिच्छई सम्म पडिछि त्ता उसमदत्तें माहणेणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग भोगाइं भुंजमाणा विहरइ' कल्पसूत्रके इस मूल पाठानुसार तथा इसकी ९ व्याख्याओ के और ४ वीर चरित्रोंके अनुसार ऋषभदत्त ब्राह्मणके मुखसे स्वप्नोंका अर्थ सुनकर ऋषभदत्त ब्राह्मणके साथ मनुष्य सम्बन्धी उत्तम प्रकारके संसारी भोग भोगती हुई विचरने लगी, ऐसा उपरोक्त सूत्र पाठ वगैरह

शास्त्र प्रमाणोंसे सिद्ध होता है परन्तु जब भगवान देवानन्दाके गर्भमें आकर उत्पन्न हुए उस समय इन्द्रका आशन चलायमान हुआ और इन्द्रने उसी समय नमस्कार याने नमोत्थुणं किया ऐसा तो किसी शास्त्र में देखनेमें आता नहीं है परन्तु "महापुरुष चरित्र" जोकि प्राचीन पूर्वधराचार्योंके समय श्रीमान देव सूरिजी के शिष्य श्रीशीलायरिय (शीलाचार्य) जी कृत प्राकृत में है उसमें २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्त्ती वगैरह उत्तम पुरुषोंके चरित्र हैं उसमें श्रीवीरप्रभुके चरित्रमें कलिकाल और इतिहास सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी कृत "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र"के दशवें पर्वमें वीर चरित्राधिकारे दूसरे सर्गमें वीर प्रभु भगवान ८२ दिन तक देवा नन्दाके गर्भमें रहे ८२ दिन व्यतीत हुए बाद इन्द्र महाराजका आशन चलायमान हुआ तब इन्द्रने भगवानको अवधि ज्ञानसे देखा और नमस्कार याने नमोत्थुणं किया ऐसा खुलासा कथन किया है जिसका पाठ पाठक वर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये नीचे दिखाता हूं सो प्रथम—श्री प्राचीन पूर्वधराचार्यों के समय श्री मानदेव सूरिजी के शिष्य श्रीशीलाचार्यजी कृत "महा पुरुष चरित्र" में वीर चरित्राधिकारे तथाहि

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहण कुंडग्गामा णाम गामो तत्थ कोडालसगोत्तो बंभणो तस्स देवाणंदा भारिया तीए सह जहा सुहं वसंतस्स गच्छंति दियहाइओयतओ पुप्फुत्तर विमाणाओ आसाढ सुद्ध छट्ठीए हत्थुत्तराहिं चइऊण अणेय भवाई य मरीइ जीवसुरवरो अहोत्तमं महाकुलंतिदु-रुत्तवायावइयं आवज्जियकम्म किंचावसेसत्तणाओ समुप्पण्णेसो एवं भणीए उदरंमि दिट्ठा यणाए सुहपसुत्ताए ताएचेव रयणीए पहाय समयम्मिंगय वसहाइणो चोद्दसमहा सुमिणा पुणो ।

पडिणियत्तमाणा दट्ठुण ससम्भमा वि उट्ठाइ साहियं इन्द-पहस्स सो वि हु अवणाइयाण ठिओ तुरियं को एवं च पवड्ढमाणम्मि गब्भे गएसु बासीदिराइंदियासु ताव चलियासणो हि पओएण सुराहिवइणो मुणिओ भयवओ गब्भ सम्भवो चिंतियं च तायओ एवंविहा महाणुहावा ण तुच्छकुलेसु जायन्ति चिंतिऊण अवहरिउ यमणीओ गब्भाओ भयव पक्खित्तो इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे उत्तर ग धवलपायारसिहरोवसोहिए तीए णगराहिहाणे पुरवरे जहिंच मलिणत्तण महाणसधूमेसु ण सुचरीसु कुहराओ भवणकलहंसेसु चवलत्तणा कयलीदलेसु ण माणेसु वक्कुराओ परहुआसु ययरकलरोसु यणकंसो वेणुयासु ण परमहिलासु पवसवाओ तं च चुलेसु णिववाएसु मुहभंगो जराए ण घणाहिमाणेण जणस्स जि तत्थ दिन यरोव्व पठममाणोदओ सुरकरिव्व अणवरयपयत्तदाणोज्झियकरोणिय-पयायावज्जिय णमंतसामंतमउलिमालच्चियचलणजुयलो इक्खा-यवसपव्वयोरायामामेण सिद्धत्थो त्ति णायआगओ गुणगणाणं कुलभवणं कलाविसेसाणं आसओ सव्वसत्थाणं उप्पत्ती सत्तरियाणं तस्स सव्वहरस्सेव रोहणी सयलंतेउरप्पहाणा तिसलादेवी णाम पणाइणी अन्नंतदइयत्तणओ य जेमुमेसु-रुज्जाणकीलाविसेसु वसइ णराहिवोतहिं तपोणोद्वत्ति अवयाया य गामाणुगाम गच्छमाणो कीलानिमित्तमागओ णियभुत्तिपरिसंट्ठिय कुंडपुरवर नाम नयर जहाविहोवयारेण पविट्ठो णियपमंदिरं आगओ सयम्भोवि पुरजणावमो दसवा तथं बुमाणियं विसज्जियम्मि पत्तलीए विमिट्ठविणोएण अद्धवा-हिजया दिणाहिव पसुणो वासभवणम्मि निवण्णातथ तिए देवी समागया सुहेण निद्दा तओ पहायाए रयणीए चउद्द सुमहासुमिणाणुक्कमममूइओ समुप्पन्नो आमोयतेरसीए

हत्थुत्तराहिं तिसिलादेवीएगब्भम्मि पहारयसमयम्मि पडिबुद्धाए य साहिओ राइणो सिविणवइयए तेणावि भणियं सुन्दरी सयलते-लोकलरकणवखं भभूओ पुत्तो ते भविस्सइत्ति ॥ बहुमन्नियं च तीए इमीएपहरिसुल्लसंततगुया गया णिययावासं एवं चपस्स इदि-ण संपज्जंतस विसेससुहपरिभोयाए वड्डिउमाढलो ॥ गब्भोकेरिसा यदेवी दीसिउ पयत्ता साहाणमइ-सुया वहिपसरपडिक्कुजियदो-सपब्भारो घणपडलंतट्टियदिणयरोव्व पडिहाइ दिणलछी अ-च्छियरं परिउब्भडलायणा मलपसाहियावयवा आसण्णोदयससि-बिंबभूसिया उदयदभित्ति व्व पडप्पाइउण वरिय विसायमा-वण्णाए चिंतियं जणणीए णूणमेसो मह मंदभायाए उदराओ-च्चेय केणावि अवहरिओ अहवा विलीणो अण्णहा कह मणयं पिणफंदइण य परिवुड्ढिं यावेइता जणणीसन्द भारत्तण ओग-ब्भविवत्तीससुप्पइता अवस्स महन्नप्पणापाणेण धारसिलि एत्थावसरम्मि य सुणिय चिंतियत्थेण भयवया करुणाप-रत्तण ओ पालिओ एक्कोणिययसरीरावयवोतओधरइ समासत्थोचित्तेण भयवई ताव य चिंतियं भयवया अहो एरिसो वएपाणिधम्मोजेण पेच्छ एक्क मुहुत्तं तरम्मि चे: यहरिसविसा-याणपयरिसो ता अवस्संमए जीवमाणाणं पि इमाई या आणा-खंडणं ण कायव्वं वि सयचित्तविरत्तचित्तणावि गिहेवासे चेयचिट्ठ अव्वं दियलोयगएसु जणणिजणएसु नियमाणट्ठाणं कायव्वं ति एवंच संकप्पिए भयवया जहा सुहेणंसमागओ पसूइसम ओ तओ वासवदि सव्वससिनंडवं समुज्जोइय सयल जियलोयं चेत्तस्स सुधत्तेरसीए हत्थुत्तराय पसूया भयवई जिणवरं ति णवरिय चलियासणतिय-सणाहप मुह सुरासुरगणेहिं चलियं—इत्यादि इसके आगे जन्मोत्सवादि का वर्णन है दूसरा और भी कहि

काल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीमान् हेमचन्द्राचार्यजी कृत "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र" के दशवे पर्वमें श्रीवीर चरित्राधिकार दूसरे सर्गका पाठ नीचे मुजब है यथा—

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रेऽस्ति भरताभिधे ॥ ब्राह्मणकुण्ड ग्रामाख्य संनिवेशो द्विजात्मनाम् ॥ १ ॥ तत्र चर्षभदत्तोऽभूत् कोडालसकुलो द्विज । देवानन्दा च तद्भार्या, जालन्धरकुलोद्भवा ॥ २ ॥ च्युत्वा च नन्दनो हस्तोत्तरस्थे निशाकरे । आषाढस्य श्वेतषष्ठया तस्याकुक्षा ववातरत् ॥ ३ ॥ देवानन्दा सुखसुप्ता महास्वप्नां चतुर्द्दशा ददर्श प्रातराख्यत्त पत्येसोऽपि व्यचारयत् ॥ ४ ॥ चतुर्णां छंदसां पारदृश्वा परमनैष्ठिक । सूनुर्भवत्यभविता स्वप्नै रेभिर्न संशय ॥ ५ ॥ देवानन्दा गर्भगते प्रभोस्तस्य द्विजन्मन । बभूव महती ऋद्धि कल्पद्रु म इवागते ॥ ६ ॥ तस्यागर्भस्थिते नाथे द्व्यशीतिदिवसात्यये । सौधर्मकल्पाधिपतेः सिंहासनमकंपत ॥ ७ ॥ ज्ञात्वा चावधिना देवानन्दागर्भगत प्रभुम् । सिंहासनात्समुत्थाय शक्रो नत्वेत्यचिन्तयत् ॥ ८ ॥ त्रिजद्गुरवोऽर्हन्तो नोत्पद्यन्ते कदाचन । तुच्छकुले रोरकुले भिक्षाचरिकुलेऽपिवा ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुवंश प्रभृतिक्षत्र वंशेषु कि स्वमी । जायन्ते पुरुषसिंहा मुक्ता शुक्त्यादिकेष्विव ॥ १० ॥ तदसंगतमापन्न जन्म नीचकुले प्रभोः । प्राज्य कर्मान्यथा कर्तु यद्वार्हन्तोऽपि नेशते ॥ ११ ॥ मरीचिजन्मनि कुलमदं नाथेन कुर्वता । अर्जितं नीचकैर्गोत्र कर्माद्यापि ह्युपस्थितम् ॥ १२ ॥ कर्मवशान्नीचकुले पृत्पन्नामर्हतोऽन्यत । संक्रमं महाकुलेऽस्माकमधिकारोऽस्ति सर्वदा ॥ १३ ॥ कोऽधुनास्ति महावंश्योराजा राज्ञी च भारते । यत्र संचार्यते स्वामी कुन्दाद्रु म इवाम्बुजे ॥ १४ ॥ ज्ञातमस्तीह भरते मही मण्डल मण्डनम् । क्षत्रियकुण्डग्रामाख्यंपुरमत्पुरसोदरम् ॥ १५ ॥ स्थान विविध चैत्यानां धर्मस्यैक निबन्धनम् ।

अन्यायैरपरिस्पृष्टं पवित्रं तच्च साधुभिः ॥ १६ ॥ मृगया मद्य-
पानादि व्यसनास्पृष्टनागरम्। तदेव भरत क्षेत्र पावनं तीर्थं-
घद्भवः ॥ १७ ॥ तत्रैक्ष्वाको ज्ञातवंश्यः सिद्धार्थोऽस्ति महीपतिः।
धर्मेणैव हि सिद्धार्थं सदात्मानममंस्त यः ॥१८॥ जीवाजीवादित-
त्वज्ञो न्यायवर्त्मसहाध्वगः। प्रजाः पथि स्थापयिता हितकामी
पितेव सः ॥ १९ ॥ दीनानाथादि लोकानां समुद्धरण बांधवः।
शरण्यः शरणेच्छूनां स क्षत्रियशिरोमणिः ॥ २० ॥ तस्याऽस्ति
त्रिशला नाम सतीजनमतल्लिका। पुण्य भूरग्रमहिषी महनीय
गुणाकृतिः ॥ २१ ॥ निसर्गतो निर्मलया तत्त्वाद्गुणतरङ्गया।
तया पवित्र्यते धात्री मन्दाकिन्येव संप्रति ॥ २२ ॥ मायया स्त्री
जन्म सहचारिण्याप्य कलंकिता। सा निसर्गऋजुर्देवी सुगृही-
ताभिधाभुवि ॥ २३ ॥ सा चास्तिसांप्रतं गुर्वीकार्यः संचारणाद्
द्रुतम्। तस्यादेवानन्दायाश्चगर्भयोर्व्यत्ययो नया ॥२४॥ विमृश्यै
वंशतमखः समाहूय झटित्यपि। आदिदेश तथा कर्तुं सेनान्यं
नैगमेषिणम् ॥ २५ ॥ विदधे नैगमेषी च तथैव स्वामिशासनम्।
देवानन्दा त्रिशलयोर्गर्भव्यत्ययलक्षणाम् ॥ २६ ॥ देवानन्दाब्रा-
ह्मणी सा शयिता पूर्ववीक्षितान्। मुखान्निः सरतोऽद्राक्षी-
न्महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ २७ ॥ उत्थाय वक्ष आघ्नाना निः स्थामा
ज्वरजर्जरा। केनापि जह्ने मे गर्भ इति चुक्रोश सा चिरम् ॥२८॥
कृष्णाश्विन त्रयोदश्यां चन्द्रे हस्तोत्तरास्थिते। सदेव स्त्रिशला-
गर्भे स्वामिनं निभृतं न्यधात् ॥ २९ ॥ गजो वृषो हरिः साभि-
षेक श्रीः स्रक् शशी रविः। महाध्वजः पूर्णकुम्भः पद्मसर
सरित्पतिः ॥ ३० ॥ विमानं रत्नपुञ्जश्च निर्धूमोग्निरितिक्रमात्।
ददर्श स्वामिनी स्वप्नान्मुखे प्रविशतस्तदा ॥ ३१ ॥
चन्द्रैः पत्याच तज्ज्ञैश्च तीर्थंकृज्जन्मलक्षणे। उदीरिते स्वप्नफले
त्रिशला देव्यमोदत ॥ ३२ ॥ दधार त्रिशलादेवी मुदितागर्भं

मद्ध्रुतम्। अप्रमत्तं विहरन्ती लीला सदन मूष्वपि ॥ ३३ ॥
गर्भस्थेऽथ प्रभो शक्राज्ञया जृम्भकनाकिनः भूयो भूयो निधानानि
न्यधुः सिद्धार्थवेश्मनि ॥ ३४ ॥ सर्वं ज्ञातकुलं भूरि धनधान्यादि
ऋद्धिभिः गर्भावतीर्णं भगवत्प्रभावाद्ववृधेत राम्‌॥३५॥ सिद्धार्थ
स्यापिनृपतेर्द्‌पादणता पुरा। प्रणेमुम्रभुजोऽभ्येत्य स्वयं प्राभृत
पाणयः ॥ ३६ ॥ मयिपस्पन्दमाऽनेत्र मातुर्मा वेदना स्नभूत।
इत्यस्थाप्निभृतः स्वामी गर्भवासेऽपि योगिवत् ३७ ॥ स्वामी
संवृत सर्वाङ्ग व्यापारो स्थारायोदरे। नालक्ष्यत यथामात्राप्यन्त
स्तिष्ठति वान वा ॥ ३८ ॥ तदाथ त्रिशला दध्यौ किं गर्भो
गलितोमम। केनाप्यहृत किंवा विनष्ट स्तंभितोऽथवा ॥ ३९ ॥
यद्येतदपि सञ्जात तदलं जीवितेनमे। सह्य हि मृत्युज दुःखं
गर्भभ्रंशभवनतु ॥ ४० ॥ इत्यार्त्तध्यान भाग्देवी रुदती लुलि-
तालका। त्यक्ताङ्गरागा हस्ताब्जविन्यस्तमुखपंकजा ॥ ४१ ॥
त्यक्ता भरण संभारा निःश्वास विधुराधरा। सखीष्वपि हि तू-
ष्णीका नाशीत बुभुजेनच ॥ ४२ ॥ तत्तु विज्ञाय सिद्धार्थमही-
पतिरखिद्यत। तत्पुत्रभाडे च नन्दिवर्धनोऽथ सुदर्शना ॥४३॥
पित्रोर्विज्ञाय तद्दुःख ज्ञानत्रयधर प्रभुः। अङ्गुलिं चालयामास
गर्भज्ञापनहेतवे ॥ ४४ ॥ मद्गर्भोऽक्षतएवेति ज्ञात्वा स्वामिन्य
मोदत। अमोदयच्च सिद्धार्थं गर्भस्पन्दन शंसनात् ॥ ४५ ॥
अचिंतयच्च भगवान्मय्यदृष्टेऽपिको प्यहो। मातापित्रोर्महान्
स्नेहो जीवतोरनयोर्यदि ॥ ४६ ॥ प्रव्राजिष्याम्यहं स्नेहमोहादे
तौ तदाग्रयम्। आर्त्तध्यान गतौ कर्माशुभं बह्वर्जयिष्यत
युग्म ॥ ४७ ॥ अथैव सप्तमे मासि जग्राहा भिग्रहं प्रभुः। उपा-
दास्ये परिव्रज्यां न पित्रोर्जीवतोरहम् ॥ ४८ ॥ अथ दिक्षु प्रस-
न्नासु स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषुच। प्रदक्षिणेऽनुकूले च भूमि सर्पिणि
मारुते ॥ ४९ ॥ प्रमोद पूर्णे जगति शकुनेषु जयिष्वलम्।

अथाष्टमदिनाग्रे षु मासेषु नवसूचकैः ॥ ५० ॥ शुक्लचैत्र त्रयोदश्यां चन्द्रे हस्तोत्तरागते। सिंहाङ्कं काञ्चनरुचिं स्वामिनी सुषुवे सतं ॥५१॥

॥ त्रिभिर्विशेषकम ॥

षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्योऽभ्येत्य भोगङ्करादयः। स्वामिनः स्वामि मातुश्च सूतकर्माणि चक्रिरे ॥ ५२ ॥ शक्रोप्यासनकंपेन तत्काल सपरिच्छदः। विज्ञाय स्वामिनो जन्म सूतिका गृहमाययौ ॥ ५३॥ अर्हंत मर्हं दम्बा च दूरतोऽपि प्रणम्य सः। उपसृत्यागतो देवा श्चावस्वापनिकां ददौ ॥ ५४ ॥ देव्याःपार्श्वे च भगवत्प्रतिरूपं निधायसः। विचक्रे पंचधात्मान मत्सो भक्तिकर्मणि ॥ ५५॥ एकः शक्रः स्वपाणिभ्यां भगवन्तमुपाददे। उपरि स्वामिनश्छत्रं द्वितीयोकस्तव धारयत॥ ५६ ॥

इत्यादि इसके आगे जन्म उत्सवादिका वर्णन है।

देखिये ऊपरके दोनों पाठो में भगवान् जब देवानन्दाके गर्भमें आकर उत्पन्न हुए तब देवानन्दाने १४ महा स्वप्न देखे सो अपने पतिको कहे पतिने उत्तम पुत्र प्राप्तिको कहा देवानन्दाके गर्भमें रहते हुए भगवानको ८२ दिन व्यतित हुए बाद इन्द्रका आसन चलायमान हुआ जब इन्द्रने अवधि ज्ञानसे भगवानको देखा तब हर्ष सहित सिंहासनसे उठकर विधिपूर्वक नमस्कार याने नमोत्थुणं किया और नीच गौत्रके उदयसे ब्राह्मण कुलमें आये इसलिये सिद्धार्थ राजाकी त्रिशला रानीकी कुक्षिमें हरणेगमेषीदेवताको कहकर स्थापित कराये उस समय आसोज बदी १३ हस्तोत्तरा नक्षत्रमें त्रिशला माताने १४ महा स्वप्न देखे सिद्धार्थ राजाको कहे राजाने महान् गुणवान उत्तम लक्षण युक्त पुत्र होनेका कहा और मारु देवामाताके गर्भमें आदिनाथ आकर उत्पन्न हुए थे तब मारु देवामाताने १४

स्वप्न देखे उसका फल बाद इन्द्रने आकर तीर्थंकर पुत्र होनेको कहा था वैसे ही त्रिशला माताको भी तीर्थंकर पुत्र होनेको इन्द्रने आकर कहा है और १४ स्वप्नका फल इन्द्रकी आज्ञानुसार देवताओंने सिद्धार्थ राजाके राज्य भुवन भण्डारादिमें निधानादिकों को स्थापन किये हैं। यह सब बातें भी हेमचन्द्राचार्यजीने खुलासा लिख दिया है। सो ऊपरके पाठमें प्रत्यक्ष दिख रहा है और श्री हरिभद्रसूरिजी कृत आवश्यक बृहद् वृत्ति २२ हजारी टीकामें भी भगवान्‌को देवानन्दाके गर्भमें ८२ दिन व्यतीत हुए बाद इन्द्रने जाना विचारा और उत्तम कुलमें स्थापन करवाये खुलासा लिखा है और कल्पसूत्रके मूल पाठमें तथा कल्प सूत्रकी सब व्याख्याओंमें भी इन्द्रने भगवान्‌को देवानन्दाके गर्भमें देख सिंहासनसे उठ नमोत्थुणं रूप नमस्कार किया और पूर्व दिशाके सिंहासन पर बैठकर भगवान्‌के पूर्व भवोंका स्वरूप विचारकर देवानन्दाके गर्भमें भगवान्‌के उत्पन्न होनेको आश्चर्य रूप समझ कर उत्तम कुलमें हरिणेगमेषी द्वारा उत्तम कुलमें पधराये और सिद्धार्थ राजाके घरमें देवताओंको आज्ञा करके स्वर्ण रत्नादि निधानोंको स्थापन करवाये खुलासा लिखा है परन्तु नमोत्थुणं करनेके बाद कल्पांतरमें उत्तमकुलमें भगवानको पधराये ऐसा नहीं लिखा है और जब भगवान् देवानन्दाके गर्भमें आये उसी समय इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे इन्द्रने अवधिसे देखके नमोत्थुणं किया ऐसा भी नहीं लिखा है। और उपरोक्त पाठोंमें ८२ दिन व्यतीत हुए बाद आसन चलायमान हुआ अवधिसे भगवान्‌को देख नमस्कार याने नमुत्थुणं किया खुलासा लिखा है इसलिये कल्पसूत्रका नमोत्थुणं सम्बन्धी पाठ भी ८२ दिन बाद समझना चाहिये क्योंकि देवानन्दा अपने पतीके पाससे १४ स्वप्न देखनेसे उत्तम

पुत्रकी प्राप्ति होनेका फल सुनकर मनुष्य संबंधी ऋषभ दत्त ब्राह्मणके साथ उत्तम प्रकारके भोग भोगवती हुई विचरने लगी ऐसा कथन कल्प सूत्रमें करनेके बाद पीछे इन्द्रने नमोत्थुणं करके सिंहाशन पर बैठकर नीच गौत्रका विचार करके उत्तम कुलमें पधराये यह बात नमोत्थुणं की और उत्तम कुलमें पधरानेकी एक ही साथ एक समयमें लिखी है और ऊपरके पाठोंमें ८२ दिन गये का खुलासा लिखा है इसलिये कल्प सूत्रका नमोत्थुणं संबंधी पाठ ८२ दिन गये बाद गर्भहरण समयका प्रत्यक्षपने सिद्ध होता है इसको विशेष विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं देवेन्द्र अनन्त शक्ति वाला होता है नमोत्थुणं करके सिंहासन पर बैठकर नीच गौत्रका विचारके उत्तम कुलमें पधरानेकी आज्ञा करनेमें कुछ भी देरी नहीं लग सकती इससे ८२ दिन इन्द्र को विचार करते चले गये ऐसा नहीं समझना किन्तु ८२ दिन गये बाद गर्भहरणके दिन नमोत्थुणं किया ऐसा समझना चाहिये,— और त्रिशला माताने १४ स्वप्न सैने देवानन्दाके लेलिये हरण कर लिये ऐसा स्वप्न नहीं देखा किन्तु १४ स्वप्न आकाशसे उतरते अपने मुखमें प्रवेश करते देखे हैं इसलिये त्रिशलाके गर्भमें भगवान्‌के आनेसे च्यवन कल्याणक माननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं हो सकती और २४ वें तीर्थंकर उत्पन्न होनेका उस दिनसे प्रगट हुआ पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव हुआ इत्यादि कारणोंसे तथा इस ग्रन्थमें लिखे हुए शास्त्र पाठोंसे और युक्ति प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ८२ दिन गये बाद इन्द्रकाआसन चलायमान होनेसे अवधि ज्ञानसे भगवानको देखके सिंहासनसे उठकर नमस्कार याने नमोत्थुणं किया और आकर त्रिशला माताको १४ स्वप्नोंका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा देवताओं द्वारा स्वर्ण रत्नादि निधान धन धान्यादिकी वृद्धि करी इस लिये

आश्विन वदी १३ को (गुजराती भाद्रव वदी १३ को) वीर प्रभु त्रिशलाकी कुक्षिमें पधारे उसमें तीर्थंकरके च्यवन कल्याणक सबन्धी सब कर्त्तव्य प्रगटपने सिद्ध है इस बातको निष्पक्षपाती विवेकी आत्मार्थी सज्जन पाठकगण स्वय विचार सकते है।

और इस अवसर्पिणीमें कालानुभावसे भगवान् देवानन्दा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आये उसको कल्पसूत्रके मूल पाठमें आश्चर्य कहा है और दश आश्चर्योंका वर्णनमें भी "गर्भहरण" याने देवानन्दाके गर्भमेंसे भगवान्का हरण हुआ उसको आश्चर्य कहा है इसलिये कारणसे तो ब्राह्मण कुलमें भगवान् आये सो आश्चर्य माना तथा कार्यसे ब्राह्मण कुलमेंसे अपहरण हुआ उसको आश्चर्य माना है और आश्चर्यका प्रतिकार करनेके लिये ही इन्द्र महाराजने उत्तम कुलमें भगवान्को पधराया है इस लिये भगवान्के उत्तम कुलमें आनेको भी समवायांगजी सूत्र और लोक प्रकाशमें अलग भव गिना है इस लिये भगवान् त्रिशलाके गर्भमें आये सो च्यवन कल्याणक सिद्ध हो चुका तो फिर उसमें उसके कर्त्तव्य माने जावे इसमें तो किसी तरह की शङ्का भी नहीं हो सकती।

और जब भगवान् ब्राह्मण कुलमें आये उसको आश्चर्य मानते हो तथा उस आश्चर्यमें च्यवन कल्याणक सब कर्त्तव्य मानते हो तो फिर आश्चर्यका प्रतिकारमें दूसरे च्यवन कल्याणकपनेके शास्त्रोंके और युक्तियोंके प्रमाण मौजूद होने पर भी उसको दूसरा च्यवन कल्याणकपना और उसके सब कर्त्तव्य नही मानना यह तो गच्छ कदाग्रहकी अज्ञानता या अभिनिवेशिकके सिवाय और क्या होगा सो तत्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं।

और तीर्थंकरका जन्म जिस माताके उदरसे होवे उस माता के गर्भमें तीर्थंकरके आनेको च्यवन कल्याणक कहते हैं यह

अनादि नियम है इसके अनुसार भी जब भगवान्‌को त्रिशला माताके पुत्र कहते हो तो त्रिशला माताके गर्भ में आनेको च्यवन कल्याणक कहना और उसके कर्तव्य उस समयमें मानने सो तो न्यायानुसार प्रत्यक्षपने सङ्गतिको प्राप्त होता है इसपर भी नहीं माननेवालोंको स्थानांग आचारांग समवायांगादि उपरोक्त शास्त्र पाठोंके उत्थापनका दूषण लगता है इसको भी पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे।

और जब समवायांगादिमें भगवानके देवलोकसे देवानन्दाके गर्भ में आनेको पहिला च्यवन तथा देवानन्दाके गर्भ से निकलने रूप प्रथम जन्म मान कर त्रिशलाके गर्भ में आने रूप दूसरा च्यवन और त्रिशलाके गर्भ से निकलने रूप दूसरा जन्म खुलासा शास्त्रोंमें लिखा है उससे दो भव दो माता दो च्यवन स्वयं सिद्ध है और शास्त्रकार महाराज जिस बातका वर्णन पहिले १ जगह कर देवें उसी बातका वर्णन आगे दूसरी वार पुनरुक्तिके कारणसे नहीं करते हैं और जिस बातका वर्णन आगे करनेका होवे उस बातका वर्णन पहिले भी पुनरुक्तिके कारणसे नहीं करते हैं और वीर प्रभुके तो दो च्यवन होने से दोनों माताओंने अलग अलग १४ महा स्वप्न दो वार देखा है इस लिये दो वार १४ महा स्वप्नोंका वर्णन करना चाहिये और दो वार वर्णन करें तो पुनरुक्ति आवे तथा विस्तार भी ज्यादा विशेष हो जावे इस लिये पहिले च्यवनमें देवानन्दा सम्बन्धी १४ स्वप्नोंका नाम मात्र ही बतलाया और दूसरे च्यवनमें त्रिशला माता सम्बन्धी १४ स्वप्नोंका अच्छी तरहसे सूत्र कारने और उसकी व्याख्याकारोंने विस्तारसे वर्णन किया है और संग्रहणीमें तीर्थंकरके च्यवन जन्मादि कल्याणकोंमें देवताओंका आगमन लिखा है सो भी वीर प्रभुके पहिले च्यवनमें

देवताओंके आगमन सम्बन्धी लेख शास्त्रोंमें देखनेमें नहीं आता और दूसरा च्यवनमें तो खास इन्द्रने आकर १४ महा स्वप्नोंका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा और देवताओंको आज्ञा करके सिद्धार्थ राजाके वहां धन धान्यादिकी वृद्धि करवाया है इसी प्रकार पहिले च्यवनसे भी विशेष कार्य दूसरे च्यवनमें होनेका शास्त्र प्रमाणों द्वारा प्रत्यक्षपने देखनेमें आता है इस लिये पहिले च्यवनसे भी दूसरा च्यवन विशेष अधिक माननीय ठहरता है तो फिर उसको माननेका निषेध करना या उसमें च्यवनके कर्त्तव्य होनेकी शङ्का करना सो सर्वथा अनुचित है क्योंकि दूसरे च्यवनमें भी च्यवन सम्बन्धी सब कर्त्तव्य हुए हैं सो तो ऊपरके लेखसे विवेकी पाठक जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और पार्श्वनाथजी नेमिनाथजी और आदीश्वर भगवान्के च्यवन सम्बन्धी कार्योंको त्रिशला माताकी तरह खान लेनेकी कल्प सूत्रकी तप गच्छादि सब गच्छोंके व्याख्या कारोंने भलामण सूचना करी है परन्तु देवानन्दाकी नहीं करी इसलिये यदि त्रिशलाके गर्भमें भगवान्के आनेको च्यवनके कर्त्तव्य न मानोगे तो पार्श्वनाथ नेमिनाथ आदीश्वरके च्यवन कर्त्तव्यमें मनोरथुण वगैरह नही माननेकी आपत्ति आवेगी इस लिये त्रिशलाके गर्भमें आने सम्बन्धी च्यवनके मनोरथुण वगैरह कर्त्तव्य मानने ही न्यायानुसार उचित है और त्रिशलाको भगवान्‌की जन्म माता कहने पर भी त्रिशलाके गर्भमें आनेका च्यवनको नहीं मानने वालोंको त्रिशलासे जन्म भी नहीं मानना चाहिये क्योंकि च्यवनके विना जन्म नहीं हो सकता यह जगत प्रसिद्ध सर्व मान्य प्रत्यक्ष बात है और देवानन्दासे च्यवन मान कर त्रिशलासे नहीं माने तो नहीं बन सकता क्यों कि इन्द्रकी आज्ञासे हरिणैगमेषी देवताने देवानन्दाकी कुक्षिसे लेकर त्रिश-

उनकी कुक्षिमें पधराये हैं यह बात कल्प सूत्रमें तथा उनकी ९ व्याख्याओंमें और आवश्यक निर्युक्ति भाष्य चूर्णि लघु वृत्ति बृहद्वृत्ति विशेषावश्यक वृत्ति त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र प्राकृत वीर चरित्र वगैरह अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है सो सब पाठ यहां पर लिखनेसे बहुत विस्तार हो जावे इस लिये सिर्फ कल्प सूत्रका मूल पाठ दिखाता हूं तथा हि—

जेणेव जम्बूदीवे दीवे, जेणेव भारहेवासे, जेणेव माहणकुंड-ग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, देवाणंदाए माहणीए सपरि जणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलित्ता असुभे पुग्गले अवहरइ सुभे पुग्गले परिकवइ (२) त्ता, "अणुजाणउमे भयव" तिकट्टु समण भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं करयल संपुडेणं गिण्हइ, समणं भयवं महावीरं (२) त्ता जेणेव खत्तिअकुंडग्गामे नयरे जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे जेणेव तिशला खत्तियाणी, तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिशलाए खत्तियाणीए सपरि जणाए ओसोअणिं दलइ, ओसोअणिं दलित्ता, असुभे पुग्गले अवहरइ, असुभे, त्ता सुभे पुग्गले पक्खिवेइ, सुभे० त्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पिअणं देवाणंदाए माहणीए जालन्धरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए, उक्किठाए तुरिआए चवलाए चण्डाए जवणाए उद्धुआए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए तिरअमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोअणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे (२), जेणामेव सोहम्मे कप्पे सोहम्म वडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे

तेणामेव उवागच्छइ, (२) त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एअ माणत्तिअ खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आवि हुत्था साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, सहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिएमिति जाणइ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे वासाणं तच्चे मासे पञ्चमेपक्खे आसोअबहुले, तस्सणं आसोअबहुलस्स तेरसीपक्खेणं वासीइ राइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसी इमस्स राइंदिअस्स अंतरा वट्टमाणेहिं, आणुकंपएणं देवेण हरिणेगमेसिणा सक्कवयण संदिट्ठेणं माहण कुडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए पुव्वरत्ता वरत्त कालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए ॥

-देखिये ऊपरके पाठमें देवताने ८२ दिन व्यतीत भये बाद ८३ वा दिनको रात्रिमें देवानन्दाके गर्भसे भगवान्‌को लेकर त्रिशला माताकी गर्भमें आश्विन कृष्ण १३ को हस्तोत्तरा नक्षत्रमें पधराये सो भगवान् भी तीन ज्ञानसे मेरेको देवानन्दाके गर्भसे देवता हरण करेगा ऐसा जानते थे परन्तु देवताकी दीव्य शक्तिकी शीघ्रतासे हरण करती समय नहीं जाना बाद मालूम पड़ा कि मेरा हरण हो गया परन्तु श्रीआचाराङ्गजीमें तो वीर चरित्राधिकारे देवताकी देव शक्तिकी शीघ्रता होने पर भी उसमें असंख्याते समय चले जाते हैं इस लिये हरण करनेके समय भी भगवान् जानते थे ऐसा खुलासा लिखा है

और ८२ दिन पर्यन्त भगवान्‌के नीच गौत्र कर्मका उदय था सो क्षय करना पड़ा तथा ८२ दिन गये बाद उच्च गौत्रका उदय हुआ इस लिये देवानन्दाके गर्भसे निकलना हुआ और त्रिशला के गर्भ आना हुआ बीचमें अन्तर मुहुर्त्त असंख्याते समय व्यतीत हुए इस लिये श्रीसमवायांग सूत्र वृत्तिमें अलग भव गिना है जिसका पाठ इसी ग्रन्थके पृष्ठ ५२० में छप चुका है और इसी कारणसे त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवन मान कर कल्याणकत्वपनमें आचारांग स्थानांगादि आगमोंमें तथा उनकी व्याख्या वगैर अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है इस लिये देवानन्दाके च्यवन और त्रिशलाके जन्म माननेसे उपरोक्त आगमादि शास्त्र पाठोंके उत्थापनकी दूषणकी प्राप्ति होवे तथा च्यवनके विना जन्म नहीं हो सकता और च्यवन नहीं माननेसे जन्म माननेमें भी बाधा पड़ती है इस लिये त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवन अलग मानना ही आत्मार्थियोंको परम उचित है उससे उपरोक्त आगमोक्त बातको प्रमाण करनेवे सम्यक्तकी मलिनता दूर होवे और दोनों जगह च्यवन जन्म मानना आगमानुसार युक्ति पूर्वक है जब दोनों च्यवन ठहरे तो उसके कर्त्तव्य तो स्वयं सिद्ध है इस बातको विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और भगवान् देवानन्दाके गर्भमें आये तथा गर्भमेंसे हरण हुआ यह बात आश्चर्य रूप होनेसे प्राण और पर्याप्ति शरीर बदले बिना भी अलग भव गिननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं हो सकती (नहीं बनने योग्य बात आश्चर्यमें बनती है) इस लिये समवायांगमें अलग भव गिना है और कोई साधु आदि इसी क्षेत्रमें चातुर्मास रहे तो वे वहां रोग मारी स्वचक्र पर चक्र भय तथा अप्रीति वगैरह कारणोंसे चौमासामें भी दूसरे

स्थान माना पड़े सो पहिले चौमासाके थोड़े दिनठहरे वो स्थान और कारण विर दूसरी जगह गये सो स्थान साधुजीके निवास स्थान दो कहे जावेंगे परन्तु चौमासाका काल मान तो दोनों जगह का मिलाकर चारमास कहे जाते हैं (जैसे वीर प्रभुके दीक्षा अवस्थाका पहिला चौमासा १५ दिन तापसके आश्रममें और ३॥ महीने शूल पाणी यक्षके मन्दिरमें हुए सो क्षेत्र स्थान दो परन्तु काल मान दोनों स्थानोंका मिलाकर ४ महीनेका गिनते हैं सो यह बात जैनमें प्रसिद्ध है इसी तरहसे वीरप्रभुके नवमहीनों की गर्भस्थितिरूप कालमान तो दोनों माताका मिलाकर है परन्तु कारण वससे आश्चर्यका प्रतिकार करने के लिये त्रिशलाके गर्भमें जाना पड़ा इसलिये च्यवन रूप स्थान दो माने जाते हैं इसीलिये स्थान कल्याणक प्रसगानुसार एकार्थ वाले पर्यायवाची माने जाते हैं यह बात पहिले भी लिख चुके हैं सो शास्त्रानुसार युक्ति युक्त होनेसे सब आत्मार्थियों को मान्य करना चाहिये इस बातको भी विशेष रूपसे विवेकी जन स्वय विचार सकते हैं। और त्रिशला माता सबंधी देवानन्दा भिन्न च्यवन जन्म प्रगट पने दिखानेके लिये ही तो शास्त्रकारोंने ८२ दिन गये बाद त्रिशलाके गर्भमें लानेके दिन आश्विन वदी १३ को और जन्मके दिन चैत्रसुदी १३ को इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे इन्द्रने अवधि ज्ञानसे भगवान्को देखकर सिंहासनसे उठकर नमस्कार नमोत्थुणं किया और चैत्र सुदि १३ को त्रिशलाको तीर्थंकर पुत्र होनेका कहनेको आयो ऐसा खुलासा लिखा है परन्तु देवानन्दा सम्बन्धी आषाढ़ सुदी ६ को वदी १३ जैसी बातें होनेका किसी जगह नहीं लिखा है जिसपर भी सुदी ६ को मानना और वदी १३ में च्यवनके सब कर्त्तव्य होने पर भी नहीं माननेके लिये कुयुक्तियोंसे कुविकल्पों

का सहारा लेना यह गच्छ कदाग्रह का हठवादके सिवाय और क्या होगा इसको पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं।

और भगवान्‌के च्यवन कल्याणकमें इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे अवधिसे भगवान्‌को देखकर नमस्कार करें और आकर माताको १४ महास्वप्नोंका तीर्थंकर पुत्र होने रूप फल कहके अपने स्थानपर पीछा देव लोकमें चला जावे ऐसा तो आवश्यक वृत्तिमें आदीश्वर भगवान्‌के चरित्रसे तथा त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र वगैरह शास्त्रोंसे सिद्ध होता है सो भी किसी तीर्थंकरके च्यवनमें आवे किसीके नहीं भी आवे।

इस बातका नीयत नियम नहीं है और कल्पसूत्रमें तथा उनकी सब व्याख्याओंमें तो भगवान्‌को नमस्कार याने नमोत्थु णं, करके पूर्व दिशाका अपना सिंहासन पर बैठ गया ऐसा खुलासा लिखा है और भी जीवाभिगम सूत्रमें नन्दीश्वर द्वीपाधिकारे नीचे मुजब पाठ है यथा—

“तत्थणं बहवे भवणवइ वाणमंतरा जोयसिय वेमाणिया देवा चउमासिय पडिवएसु संवछरिएसुय अएणेसुय बहुसु जिण जम्म निरकमण णाणुपाय परिणिव्वाण माइसु देवकज्जे सुय देव समुदाये सुय देव समवाए सुय देव पवयणे सुय एगंत तोस हिया समुवगया समाणाय मुदित पकालिया अट्ठाहियाओ महिमाओ कारे माणा पाले माणे सुहं सुहेणं विहरन्ति”

इस पाठके अनुसार भी तीर्थंकर महाराजोंके जन्म, दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति निर्वाण इन कल्याणकोंमें नन्दीश्वर द्वीपमें शाश्वत चैत्योंमें भगवान्‌की प्रतिमाके आगे देव देवी इन्द्रादि मिलकर अठाई उच्छवकरते हैं ऐसा खुलासा लिखा है परन्तु च्यवन कल्याणकमें ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर द्वीपमें अठाई उच्छव करते ऐसा नियत नियमका कोई भी शास्त्र प्रमाण मेरे देखनेमें नहीं

आया इसलिये च्यवनमें ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर उच्छवके लिये जावे अथवा नहीं भी जावे जैसा अवसर परन्तु जन्मादिमें तो नियमसे जाकर उच्छव करते हैं उसको तो आवश्यकवृत्ति कल्पसूत्रकी व्याख्या त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र और उपरोक्त जीवाभिगमादि शास्त्रोंमें देखा जाता है परन्तु च्यवनमें तो विमानमें बैठे हुए ही नमोत्थुणं कर लेते है इसलिये भगवान्‌के त्रिशलाके गर्भमें आनेके दिन भी विमानमें बैठे हुए ही नमोत्थुणं किया समझ लेना परन्तु आश्विन वदी १३ को ६४ इन्द्रादि मिलकर नन्दीश्वर उच्छव करने को जाने सम्बन्धी पाठ न देखनेसे उसको कल्याणकपने रहित नहीं कह सकते क्योंकि आषाढ सुदी ६ को भी नन्दीश्वर उच्छव करनेको इन्द्रादिकके जानेका पाठ देखनेमें नहीं आता इसलिये जैसे सुदी ६ मानोंगे वैसे वदी १३ भी माननि पड़ेगी—और किसी शास्त्रानुसार तीर्थंकरके च्यवनमें भी ६४ इन्द्रादिकके नन्दीश्वर महोत्सवके लिये जानेका नीयत नियम ठहरता होवे तो भी यह बात वदी १३ को भी मान लेनी चाहिये क्योंकि आशन प्रकंप नमोत्थुणं १४ महास्वप्न दर्शन इन्द्रका आगमन वगैरह च्यवन के सब कर्त्तव्य वदी १३ को बने हैं इसलिये नन्दीश्वरका महोत्सव भी उपरोक्त लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये।

और जिस समय तीर्थंकर माताके गर्भमें आवे उसी समय तीन जगतमें उद्योत और सब संसारी जीवोंको सुखकी प्राप्ति होनेका तो अनादि नियम है इसलिये किसी जगह नहीं लिखा होवे तो भी उस बातको मान लेना चाहिये क्योंकि अनादि नियमकी प्रसिद्ध बातको शास्त्रकार लिखे या न लिखे तो भी उसी मुजब माननेका जैनमें प्रसिद्ध है जैसे नवकारमें णमोअरिहंताण इत्यादि

पाटमें कर्म रूपी भाव शत्रु का नाम नहीं लिखा और स्थानांग सूत्रके पांचवे स्थानमें बहुत तीर्थंकर महाराजों के च्यवन जन्म दीक्षा और केवल ज्ञान निर्वाणके नक्षत्र गिनाये हैं परन्तु उसमें कल्याणक शब्द नहीं लिखा तो भी अनादि नियमकी प्रसिद्ध बात होनेसे उन नक्षत्रोंमें कल्याणक कहते हैं मानते हैं इसी तरह वीरप्रभुके आश्विन वदी १३ को च्यवनमें भी तीन जगतमें उद्योत और सब संसारी जीवोंको सुखकी प्राप्ति अनादि नियमके कारणसे उपरोक्त न्यायानुसार होना और मान लेना स्वयं सिद्ध है, इसलिये आत्मार्थियोंको प्रमाण करना चाहिये इस बातका विशेष निर्णय ऊपरमें लिखा गया है उससे आत्मार्थीजन स्वयं समझ लेवेंगे,—

अब सत्य ग्रहण करनेकी अभिलाषा वाले आत्मार्थी सज्जन पाठकगणसे मेरा यही कहना है कि—श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य्य तथा प्राचीन सब कुलगण शाखाके पूर्वाचार्योंने और वृहद्गच्छ कवलागच्छ तपगच्छादि गच्छोंके पूर्वाचार्योंने मूलसूत्र नियुक्ति भाष्य चूर्णि वृत्ति चरित्र प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक खुलासा पूर्वक कथन किये हैं और युक्तियोंके अनुसार भी प्रत्यक्ष सिद्ध है सो इस ग्रंथमें शास्त्र प्रमाण युक्ति पूर्वक ऊपरमें अच्छी तरहसे लिखा गया है इसलिये श्रीजिनवल्लभसूरिजी ने छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा नहीं करी किन्तु इन महाराजके पहिले तीर्थंकरादि महाराजोंने खुलासा किया है सो भी ऊपरमें लिख दिखाया है उससे श्रीजिनवल्लभसूरिजीको नवीन प्ररूपणाका दूषण लगाने वाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी ठहरते हैं और खरतर गच्छवाले छ कल्याणक मानते हैं परन्तु अन्यगच्छ वाले नहीं मानते ऐसा भी नहीं क्योंकि जिनाज्ञाके आराधक

पचांगी प्रमाण करने वाले वीरप्रभुकी भावपरम्परामें चलने वाले प्राचीन गच्छोंके पूर्वाचार्य छ कल्याणक मानने वाले थे और वर्तमानमें भी आत्मार्थी मानते हैं और मूल आगमादिमें इसका कथन होनेसे तपगच्छके भी पूर्वाचार्य छ कल्याणक मानते थे और अपने बनाये कल्पांतरवाच्य, कल्पावचूरि और कल्पसूत्र केछ टबार्थोंमें कुलमण्डन सूरिजी वगैरह लिख गये हैं जिसका खुलासा भी पहिले इस ग्रन्थमें छप गया है और वर्तमानमें भी कितने ही तपगच्छके आत्मार्थी मुनिगण छ कल्याणक मानने वाले हैं इस लिये सिर्फ खरतर गच्छ वाले मानते हैं अन्य नहीं यह भी प्रत्यक्ष मिथ्या है तपगच्छके पूर्वाचार्य तो छ कल्याणक मानने वाले थे परन्तु यह तो वर्तमानमें तपगच्छके खरतर गच्छ के आपसमें जो प्रति वर्ष ग्राम नगर शहरादि में पर्युषण जैसे महा उत्तम पर्वमें आत्म कल्याण संप शांति सबसे क्षमत क्षामणा करने के बदले छ कल्याणकोंका निषेध करने सम्बन्धी खण्डन मण्डन से वाद विवादहोकर कुसपसे निन्दा ईर्षादि बन कर शासनोन्नति के और निज परके आत्मकल्याणमें जो विघ्न हो रहा है और छ कल्याणकोंके निषेध रूप उत्सूत्र प्ररूपणासे निज परके संसार वृद्धिका कारण तथा भद्र जीवोकी श्रद्धा व धर्म कार्यों में हाणी का महान् अनर्थ हो रहा है जिसके मूल कारण मूल अधिष्टायक आगिवान् धर्मसागरजी हुए हैं क्योंकि धर्मसागरजीके पहिले तपगच्छमें आचार्य उपाध्याय साधुजन हजारों हो गये परन्तु किसीने भी शास्त्रोक्त छ कल्याणकोंका निषेध धर्मसागरजीकी तरह किसी ग्रन्थमें नहीं किया इसीलिये इस विषयमें दोनों गच्छोंके आपसमें पहिले बहुत संप रहता था पर्युषण जैसे महा पर्वमें आपसमें किसी तरहका खण्डन मण्डनका झगड़ा नहीं था परन्तु धर्मसागरजीने अपने मिथ्यात्वके उदयसे तीर्थंकर गण

धरादिकोंके और अपने गच्छके पूर्वज पुरुषोंके कथन किये हुए छ कल्याणक सम्बन्धी सूत्रोंके और वृत्तियोंके पाठोंका उत्थापन की उत्सूत्र प्ररूपणासे तीर्थंकरादि महाराजोंकी आशातनासे अपने संसार बढ़नेके भयको छोड़ कर खरतरगच्छके पूर्वाचार्यों से द्वेष बुद्धि रखके महान् उपकारी पुरुषोंकी निन्दा करने लगे और छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये गणधर सार्द्धशतक वृत्ति जम्बूद्वीपपन्नति पञ्चाशकसूत्र वृत्ति पर्युषणाकल्पचूर्णि वगैरह शास्त्र पाठोंका अभिप्राय और उन शास्त्र पाठोंके कर्ताओंके भावार्थके ज्ञानावर्णीय कर्मके उदयसे समझे बिना वस्तु, स्थान, आश्चर्य नीचगोत्रका उदय वगैरह झूठे बहाने निकालकर अपनी कल्पना मुजब शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें अनेक तरहकी कुयुक्तियें लिखकर भद्र जीवोको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये 'कल्प किरणावली' वगैरहमें लिखा तबसे इस झगड़े का मूल खड़ा हुआ और उसी मुजब अन्ध परम्परामें वर्तमानिक कितने ही कदाग्रही चल रहे है जिसमें भी विशेष खेदकी बात यह है कि विनय विजयजी और आत्मारामजी जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् कहलाते हुए भी गच्छ कदाग्रहके पक्षपातसे धर्मसागरजीकी कुयुक्तियोंके मायाजालमें फंस गये और आगमोक्त सत्य बातको झूठ ठहरानेके लिये उसी तरहकी कुयुक्तियें लिखके भोले जीवों को मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये विनय विजयजीने कल्प सूत्र की व्याख्याका सुबोधिका नाम रखके और कुयुक्तियोंसे उत्सूत्रता से भोले जीवोंको दुर्लभ बोधिकी प्राप्तिका कारण किया है और आत्मारामजीने 'जैन सिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकका नाम रखके उत्सूत्रोंके संग्रह माया जाल फैलाई है इसीलिये उन्हींका सब कुयुक्तियोंके विकल्पोंकी समीक्षा समाधान करके शास्त्र पाठोंसे और युक्तियोंके अनुसार सुदृढ़ प्रमाणों सहित

इस ग्रन्थमें श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणकोंका निर्णय अच्छी तरहसे करनेमें आया है जिसको बांचकर गच्छ पक्षपातका दृष्टिराग न रखकर जिनाज्ञा आराधन करनेके लिये सत्य बातको ग्रहण करना और शास्त्रोक्त सत्य बातका उपदेश करके भव्य जीवोंको शुद्ध सम्यक्तकी प्राप्तिके लाभका कारण आत्मार्थी परोपकारी सज्जनोंको करना चाहिये और भवभीरुओंको जिनाज्ञापूर्वक सत्य ग्रहण करके निजपरके आत्मकल्याण के कार्यकी प्रवृति बर्ताव करना परम उचित है इस संसार परिभ्रमणमें मनुष्य भव जैन धर्मके आराधनका योग मिलना अब कठिन है जिस पर भी गच्छके पक्षपातादि तुच्छ कारणोंसे जिनाज्ञाकी विराधना करके खोटे उपदेशसे निजपरके संसारका कारण करना सर्वथा अनुचित है इसलिये गभरीह प्रवाहकी तरह अन्धपरम्पराकी कल्पित रू-ढीको छोड़कर सत्य ग्रहण करनेमें आत्मार्थियोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये और सत्य बात जानने पर भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे यह लोककी पूजा मानताके अभिमानसे बालजीवों के दृष्टिरागमें पड़कर भोले जीवोंको अपने पक्षमें खींचनेके लिये जिनाज्ञा विरुद्ध होकर कुयुक्तियोंसे उत्सूत्र भाषण भी नहीं करना चाहिये मरिची जमालिके दृष्टान्तोंको याद करके संसार भ्रमणमें गर्भावास नरकादि दुखोंसे भयरखके अपने गुरुजनोंका भी पक्षपात छोड़कर इन्द्र भूतिकी तरह और जमालिके शिष्यों की तरह सत्य अङ्गिकार करना चाहिये विवेकी आत्मार्थी सज्जनोंको विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है

और विनय विजयजीने "लोक प्रकाश" नामा ग्रन्थके २६ वें सर्गमें २४ तीर्थंकर महाराजोंके च्यवन जन्मादि पांच पांच कल्याणकोंके मास पक्ष दिन नक्षत्र दिखाये हैं उसमें २४ वीर प्रभुके सबन्धमें जो लिखा है सो यहां पर दिखाताहूं छपा

हुआ लोक प्रकाशके पृष्ठ १४७३ से १४७५ तक सर्ग २९ वें का पाठ नीचे मूजब है यथा—

"भवे ततः सप्तविंशे ग्रामे ब्राह्मण कुण्डके ॥ विप्रस्यर्षभदत्तस्य देवानंदा ह्वयस्त्रियां ॥ ५९ ॥ मरीचिभव बध्धेन, सनीचै र्गोत्रकर्मणा ॥ कुक्षौ प्रभुक्त शेषेण विश्वेशोऽप्युत्पद्यत ॥ ६० ॥ अर्हंतश्चक्रिणश्चैव सीरिणः शार्गिणोऽपिच ॥ तुच्छान्वयेषूत्पद्यंते कदाचित्कर्मदोषतः ॥ ६१ ॥ जायंते तु कदाप्येते तादृग्वंशेषुनोत्तमा ॥ इतिदत्तोपयोगस्या सुरेन्द्रस्यानुशासनात् ॥ ६२ ॥ पुरेक्षत्रियकुंडाख्ये सिध्धार्थस्य महीपतेः । त्रिशलाया महाराज्ञ्या कुक्षावक्षीण संपदः ॥ ६३ ॥ मुक्तोऽद्य श्रीत्यहोरात्रा तिक्रमे नैगमेषिणा । अजायतसुतत्वेन चतुर्विंशो जिनेश्वरः ॥ ६४ ॥ एवंच "उसहससि संति सुविधय नेमीसर पास वीर सेसाणं ॥ तेर सग बार नव नव दस सगवीसाय तिन्निभवा ॥ ६५ ॥ इति समर्थितं ॥ श्रीसमवायांगे कोटिसमवाये 'तित्थकरभवग्गहणा तो छठे पोट्टिलभवग्गहणे इतिसूत्रे श्री वीरस्य देवानंदा गर्भस्थिति स्त्रिशला कुक्ष्यागतिश्चेति भवद्वयं विवक्षितमस्तीतिध्येयं ॥ आषाढ़ै धवलाषष्ठी चैत्रशुक्ला त्रयोदशी । मार्गस्य दशमी कृष्णा वैशाखे दशमीसिता ॥ ६६ ॥ कार्त्तिकस्यामावसीति कल्याणक दिनाः प्रभो अमूत् गर्भापहारेतु त्रयोदश्याश्विनेसिति ॥ ६७ ॥ फाल्गुन्य उत्तराधिष्ण्यं कल्याणक चतुष्टयो तथा गर्भापहारेपि निर्वाणे स्वातिरिष्यते ॥ ६८ ॥"

देखिये ऊपरके लेखमें भगवान्के आश्विन वदी १३ को त्रिशला माताके गर्भमें आनेको श्रीसमवायांग सूत्रके पाठानुसार २१ अलगभव गिन लिया है तथा ६४ वें श्लोकके कथनसे त्रिशलाके गर्भमें गये उसी दिनसे तीर्थंकर पनें प्रगट होनेका खुलासा लिखा है इस लिये देवानंदाका आषाढ़ शुदी ६ का

और त्रिशलाका आश्विन वदी १३ का यह दो च्यवन विनय विजयजीके उपरोक्त कथनसे सिद्ध होता है इस लिये विनय विजयजीके खोलसे ही दो च्यवनोंकी गिनतीसे भी वीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध हो चुके जिस पर भी १ च्यवन मानने वाले को ६४ श्लोकका और उपरोक्त श्रीसमवायाग सूत्रका पाठ उत्थापनका दोषी ठहरना पड़ेगा यह बात प्रगट ही दिखती है और महापुरुष चरित्र त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र आवश्यक आचारांग स्थानाग कल्पसूत्रादि अनेक वृत्ति वगैरहमें आश्विन वदी १३ को च्यवन रूपसे माना है जिसका खुलासा पहिले लिखा गया है इस लिये दो च्यवनका निषेध कोई भव भीरु नहीं कर सक्ता और "कल्याणक चतुष्टय तथा गर्भापहारोपि" इस वाक्यमें चार कल्याणक च्यवन जन्मादि कहके तथा और अपि शब्दसे गर्भापहार रूप त्रिशलाके गर्भमें आनेको प्रायवा भी हस्तोतरा नक्षत्रमें साथ ले लिया और मोक्ष स्वाति नक्षत्रमें लिखा है ऐसा नहीं माननेसे तथा और अपि शब्द व्यर्थ हो जाते हैं और उपरोक्त शास्त्र पाठोंके उत्थापनका भी दूषणकी प्राप्ति होवे और त्रिशलाके गर्भमें आनेको कल्याणक नहीं मानना एसे प्रमाण किसी शास्त्रमें नहीं देखे जाते हैं इस लिये उपरोक्त शास्त्रानुसार मानना ही उचित है विशेष पाठकगण स्वय विचार लेवेंगे।

और पन्यासजी आनन्दसागरजीने सुबोधिकाकी और पंचाशककी प्रस्तावनामें छ कल्याणक निषेध करनेके लिये गणधर सार्धशतकके पाठका भावार्थ समझे बिना श्रीजिनवल्लभ सूरिजी पर और खरतर गच्छ वालों पर उत्सूत्रताका हठवाद का आक्षेप किया और स्थानाङ्ग आचारांग कल्पसूत्रादि अनेक शास्त्रोके श्रीवीरप्रभु संबंधि विशेष अपेक्षाके छ कल्याणक

संबंधी मूल पाठोंको छोड़कर पंचाशकके सब तीर्थंकरों संबंधी सामान्य पाठको आगे किया और उपरोक्त आगमोंके सूत्र पाठोंके अभिप्रायको समझे बिना "अगाराओ अणगारियं पव्वइए तथा अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडि-पुन्ने केवलवरणाणदंसणे समुपन्ने इत्यादि विशेषण युक्त तीर्थंकर महाराजोंको च्यवन जन्म दीक्षा ज्ञानोत्पत्ति कल्याणकोंके पाठका वस्तु अर्थ करके कल्याणक पने रहित ठहरानेका आग्रह किया सो तो धर्मसागरजीका मायाजालमें पड़कर गच्छके पक्ष पातसे अपनी उत्सूत्रताकी मायामे भोले जीवोंको फँसानेके लिये जिनाज्ञानुसार सत्य बातका निषेध करने से आनन्द सागरजीने स्वयं ही अपने संसार वृद्धिका कारण किया है इस बातका निर्णय तो इस ग्रन्थके पढ़ने वाले तत्वज्ञ जन स्वयं कर लेवेंगे विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है।

अब छ कल्याणको संबंधी समीक्षाके लेखके अन्तमें सत्य ग्रहण करने वाले आत्मार्थी सज्जनोंसे मेरा यही कहना है कि—शास्त्रोक्त प्रमाणोंसे श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सिद्ध करके दिखाये और छ कल्याणक निषेध करने सम्बन्धी वर्त्तमानिक सब कुयुक्तियोंकी समीक्षा करके सब शंकाओंका समाधान भी कर दिया है इसलिये धर्मसागरजीकी अंध परम्परा वाले वर्त्तमानमें किसी तरहकी कुयुक्तियें करे तो वे सब शास्त्र विरुद्ध समझना चाहिये।

इति—धर्म सागरोपाध्याय विरचित कल्पकिरणावल्यांषट् कल्याणक निषेध सम्बन्धी लेखस्य श्रीमान् सुमति सागरोपाध्याय स्य लघु शिष्य मणिसागराख्य मुनि कृता समीक्षासंपूर्ण जाता समाप्तेति पर्युषण निर्णय ग्रन्थे षट् कल्याणक निर्णयः॥ श्रीपर्यु-षण निर्णय नामा ग्रन्थ समाप्तः ॥ श्री र स्तु कल्याण मस्तु॥

अथ प्रशस्ति।

अनेक प्रकारके उपसर्गों को सहन करके केवलज्ञान रूपी सूर्यको प्रकाश किया और जगत जीवोंका कल्याण करके अष्ट कर्मोंका क्षय कर मोक्ष पधारे। ऐसे शासन नायक श्री वर्द्धमान् स्वामीको वारवार नमस्कार करके पर्युषण निर्णय ग्रन्थके अन्त मङ्गल रूप में अपने पूर्वाचार्यों को नमस्कार करता हू ॥ १ ॥ भव्य जीवोंके सब प्रकारके वांछीतार्थको पूरण करनेमें कल्पवृक्षके समान श्रीवीरप्रभुके प्रथम गणधर श्रीगौतम स्वामी जगतमें हमारा कल्याण करो ॥ २ ॥ श्री वर्द्धमान् स्वामी के पट्ट परम्परामें श्रीसुधर्मस्वामी जम्बूस्वामी केवली हमको शुद्ध रत्न त्रयीके देने वाले हो ॥ ३ ॥ और भव्य जीवोंके हृदयका अज्ञान रूपी अन्धकारको नाश करने में भास्करके समान तथा मुक्तिमार्गको बतलाने में निरन्तर अप्रमादी प्रभवादि युग प्रधान आचार्य होते भये ॥ ४ ॥ इसी तरह अनुक्रमें कोटीगच्छ चन्द्रकुल और वयरी शाखामें श्रीउद्योतनसूरिजीके शिष्य श्रीवर्द्धमान स्वामीके शासनकी वृद्धि करने वाले और जिन्होंको धरणेन्द्रने आकर महिमा गर्भित सूरिमन्त्रका सब भेद बतलाया ऐसे श्री वर्द्धमान सूरिजी हुए ॥ ५ ॥ और चैत्य वासियोंकी कल्पित प्ररुपणारुप मायाजालको तोडनेमें तीक्ष्ण खड्गके समान तथा गुर्जरभूमि गुजरातमें जिनाज्ञानुसार शुद्धसंयममार्गको प्रकाश करने में सूर्यचन्द्र समान ऐसे श्रीवर्द्धमानसूरिजीके दो शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा बुद्धिसागरसूरिजी हुए ॥ ६ ॥ इन्ही श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने अणहलपुरपट्टणमें दुर्लभ

राजाकी सभामें चैत्यवासियोंको पराजय करके सुविहित (खरतर विरुद प्राप्त किया) जिन्होंके शिष्य संवेगरङ्गसे रङ्गित आत्मावाले तथा चन्द्रकी तरह शीतलता युक्त १८०० प्रमाणे संवेगरङ्गशालाग्रन्थके कर्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हुए ॥ ७ ॥ और जगत जीवोंको अभय दान देने में बड़े उत्साही तथा अल्पज्ञोंके परम उपकारी नवांगी वृत्ति करने वाले और जयति हुअण स्तोत्रसे श्रीस्थंभन पार्श्वनाथजीकी प्राचीन प्रतिमा को प्रगट करके शरीरका रोग शान्त करने वाले श्रीअभयदेव सूरिजी महाराज बड़े प्रभावक हुए ॥ ८ ॥ श्रीनवङ्गी वृत्ति कारक श्रीअभयदेव सूरिजी के पट्टपर भास्कर समान और गच्छक-दाग्रहियोंकी अभिमान रूपी पर्वतको तोड़नेमें वज्रके समान तथा सर्वशास्त्र विशारद संघ पट्टक धर्मशिक्षादि अनेक ग्रन्थ कर्त्ता और जिनको जिनाज्ञा अतीव वल्लभ है ऐसे श्रीजिन वल्लभसूरिजीके पट्टपर जिन्होंके हजारों देव देवी तथा अनेक राजा सेवा करते हैं और एक लाख तीसहजार नवीन जैनो श्रावकोंके कुल बनाकर ओसवाल वंशरूपी कल्पवृक्षको वृद्धिगत करने वाले और हजारों साधु साध्वियोंके समुदायके नायक, लाखों जीवोंके बोधि बीजको देने वाले महान् जैनशासन प्रभावक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हुए जिन्होंके चरण कमलोंकी पूजा सेवा सब देशोंमें होती है ॥ १० ॥ श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजके पट्ट परम्परामें अनुक्रमें श्रीजिनचन्द्रसूरि जी जिनपति सूरिजी वगैरह यावत् श्रीजिनभक्तिसूरिजी पर्यंत वीर शासन प्रभावक अनेक आचार्य महाराज होते भये ॥ ११ ॥ श्रीजिन भक्ति सूरिजी महाराजके शिष्य परम्परामें अनुक्रमें अपने आत्मोद्धारकमें परमप्रीतिवाले श्रीप्रीतिसागरजी हुए तथा भव्य जीवोंको अमृत समान धर्मोपदेश देनेमें बड़े चतुर ऐसे

श्री अमृत धर्मजी हुए और क्षमादि दश प्रकारका यति धर्म आराधन करनेमें बड़े तत्पर प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक आत्म प्रबोध चैत्य वन्दन साधु श्रावक विधि प्रकाश वगैरह अनेक ग्रन्थ करने वाले श्रीक्षमा कल्याणजी गणि हुए यह तीनो महाराज महोपाध्याय पद धारक थे ॥१२॥ श्रीक्षमाकल्याणजी गणि महाराजकी परम्परामें सत्योपदेश करने में मानों सुमतिके सागर मेरे परमोपकारी धर्माचार्य श्रीमान्सुमतिसागरजी गणि उपाध्याय अभी वर्तमानमें विद्यमान हैं ॥ १३ ॥ जिनके प्रथम बड़े शिष्य अपने आत्म कल्याण करने वाले क्षमा तपादि गुणोकीकीर्त्तिको जगतमें फैलानेवाले श्रीकीर्त्तिसागरजी हुए थे सो सं० १९५१ में स्वर्गवास की शोभा करने को वहां चले गये ॥ १४ ॥ और दूसरा लघु शिष्य (मैं) मणि सागरने गुरु कृपासे श्रीपर्युषण निर्णय नामा यह ग्रन्थ उ० श्रीजयचन्द्रजी गणिकी सहायतासे तथा कलकत्ता, मारवाड़, बम्बई वगैरह संघके आग्रहसे कलकत्तामें शुरू किया था सो श्री बम्बई शहर लालबागमें सवत् १९७४ के चौमासामें आश्विन सुदी अष्टमी बुधवार को सम्पूर्ण किया है ॥ १५ ॥ और मारवाड़के तथा पूर्वके श्रीसंघने इस ग्रन्थको यन्त्र द्वारा मुद्रित करवाके वर्तमानिक गच्छ भेदोंकी भिन्न प्ररूपणासे भोले जीवोंके मिथ्यात्वके भ्रमको निवारण करके शुद्ध श्रद्धा रूपी सम्यक्त्व की भव्य जीवोंको प्राप्ति होने के लिये और हठ वादियोंका झूठा आग्रह दूर करके श्रीजिनाज्ञानुसार सत्य बातोंका प्रकाश जगतमें होनेके लिये प्रगट किया है ॥ १६ ॥ पचांगीके प्रमाणो पूर्वक पूर्वाचार्य्योंके कथनानुसार इस ग्रन्थकी रचना मैंने करी है जिसमें कोई बात जिनाज्ञा विरुद्ध लिखी गई होवे तो उसका त्रिकरण शुद्धिसे तीन योग सहित अरिहंतादि छ साक्षियोंसे मिच्छामि दुक्कडं

देता हूं॥ १७ ॥ तथा इस ग्रन्थ संबन्धी भूलोंको जो पाठकगण मेरेको बतलावेंगे या पत्र द्वारा सूचना करेंगे तो उन्होंका उपकार पूर्वक उसका सुधार करनेकी (मैं) प्रतिज्ञा करता हूं॥ १८ ॥ और जिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपण करने वालोंको तथा गच्छोंके पक्षपातसे विरुद्धाचरण करनेवालोंको झूठा आग्रह छोड़कर जिनाज्ञामें प्रवृत्ति करानेके लिये यद्यपि उपकार बुद्धि से हित शिक्षा रूप लिखनेमें आया है तिसपर भी किसीको बुरा लगे तो उसकी क्षमा प्रार्थना करता हूं॥ १९ ॥ श्री कलकत्ता नगरमें श्रीशांतिनाथजीकी शीतल छाया नीचे यह ग्रन्थ शुरु हुआ और बम्बई नगरमें श्रीपार्श्वनाथजीके प्रसादसे परिपूर्ण हुआ है इस लिये जहांतक वीरशासनप्रवृति रहे तबतक भव्यजीवोंको शुद्ध मार्गकी प्रवृत्ति कराने वाला यह ग्रन्थ इस भरत क्षेत्रमें जयवंता वर्त्तो ॥२०॥ जिनागमानुसार गुरु महाराज की और सरस्वतीकी कृपासे सत्य ग्रहणाभिलाषी जीवोंको जिनाज्ञाकी परीक्षा करने वाला वर्तमानिक भेदोंकी भिन्न भिन्न प्ररूपणामें इस ग्रन्थके पूरण होनेमें मेरी आत्माका उद्धार हुआ मैं मानता हूं॥ २१ ॥